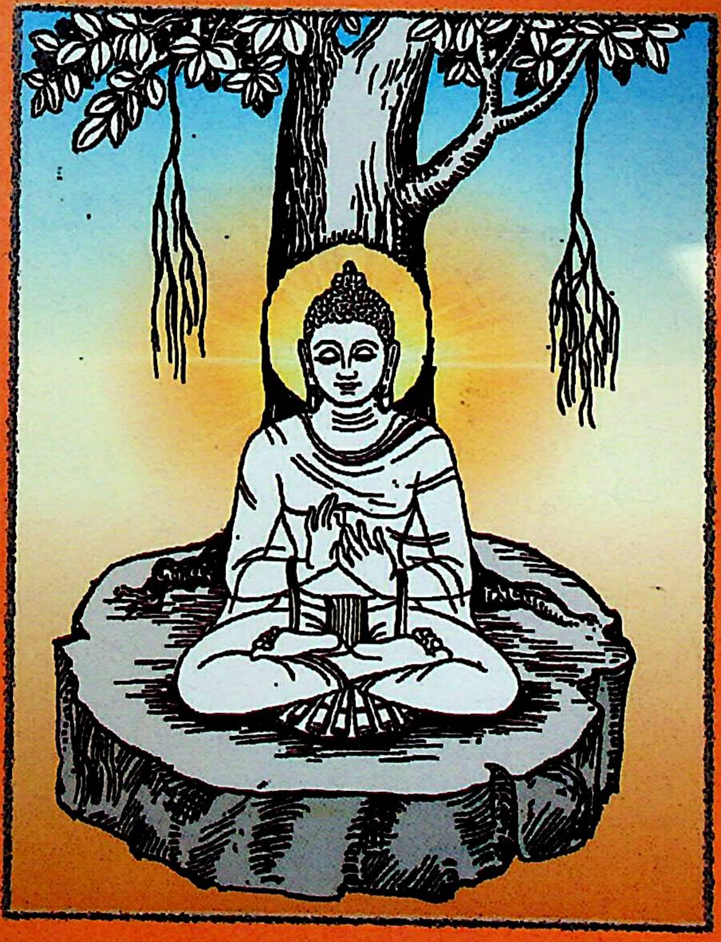
बौद्धभारतीग्रन्थमाला-13

मिलिन्दपञ्हपालि

Questions of Milinda

[मिलिन्द-भिक्षुनागसेनसंवाद]

(हिन्दी-अनुवादसहित)



प्रधानसम्पादक

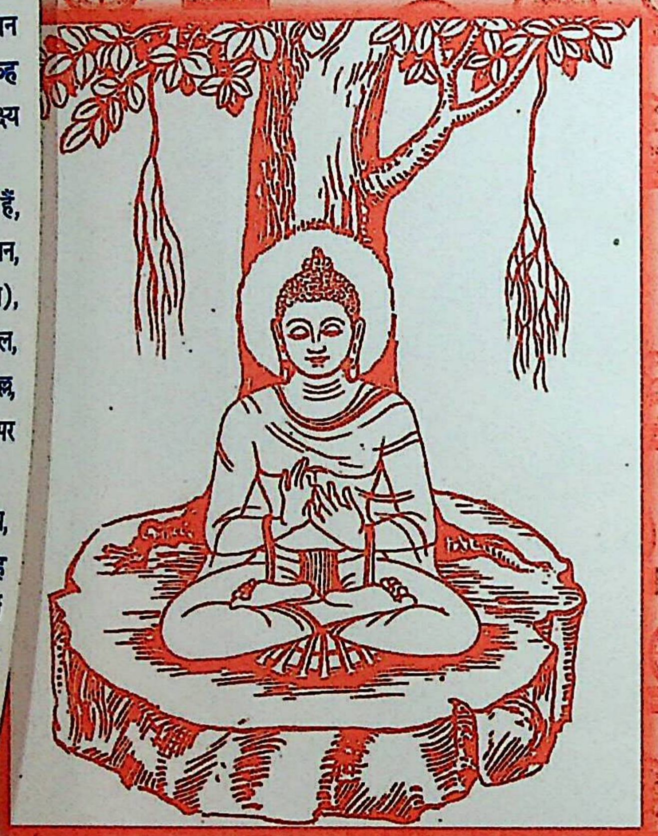
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

ग्रन्थ के विषय में—

इतिहास की दृष्टि से, विशेषतः पालि-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से मिलिन्दपञ्ह का यह महत्त्व है कि उसमें पालि-त्रिपिटक से नाना ग्रन्थों के नाम देकर, पाँच निकायों, अभिधम्मपिटक के सात ग्रन्थों और उनके भिन्न-भिन्न अंगों के निर्देशपूर्वक अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व अपने उसी नामरूप में विद्यमान था, जिसमें वह आज है। इस प्रकार मिलिन्दपञ्ह का साक्ष्य अशोक के अभिलेखों द्वारा प्रदत्त साक्ष्य का समर्थन करता है।

मिलिन्दपञ्ह में अनेक स्थानों के वर्णन हैं, जैसे अलसन्द (अलेक्जेड्रिया), यवन (यूनान, बैक्ट्रिया), भरुकच्छ (भड़ौंच), चीन (चीनदेश), गान्धार, कलिंग, कजंगला, कोसल, मथुरा सागल, साकेत, सौराष्ट्र (सोरट्ठ), वाराणसी, वंग, तक्कोल्ल, उज्जैन आदि। इनसे तत्कालीन भारतीय भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सारांश यह है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल—सभी दृष्टियों से मिलिन्दपञ्ह का भारतीय वाङ्मय के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और पालि अनुपिटक-साहित्य में तो उसके समान महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा स्वतन्त्र ग्रन्थ है ही नहीं—यह तो निर्विवाद ही है।





बौद्धभारतीग्रन्थमाला-१३
Baudddha Bharati Series-13

मिलिन्दपञ्हपालि

(हिन्दीरूपान्तरसहिता)

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-13

MILINDAPAÑHA PĀLI

[Questions of Milinda]

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

BAUDDHA BHĀRATĪ
VĀRĀNASĪ

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-१३

मिलिन्दपञ्हपालि

[मिलिन्द-भिक्षुनागसेनसंवाद]

(समीक्षात्मक भूमिका एवं हिन्दीरूपान्तर सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५५०] सन् २००६ ई० [वि० २०६३

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पञ्चशील एस १०/६ ए-२ए,
मकबूल आलम रोड, (जिला जेल के सामने)
वाराणसी-२२१ ००२
फोन : ०५४२-३२९८०४४,
मो० : ०९३३६९१२५४७
* * * * * * * * * * * *
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher :
Bauddha Bhāratī
S 10/6 A-2A, Maqbool Alam Road,
Opp. Distt. Jail, Varanasi-221 002
Ph. 0542-3298044,
Mo. 09336912547
* * * * * * * * * * * *
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

e-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्त्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

तृतीय संस्करण : २००६ ई०

Third Edition : 2006

मुद्रक :
साधना प्रेस
मकबूल आलम रोड,
वाराणसी-२२१ ००२

Printed By :
SĀDHANĀ PRESS
Maqbool Alam Road,
VARANASI- 221 002

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज से अठारह वर्ष पूर्व सन् १९७९ में, भारतीय विश्वविद्यालयों के परीक्षापाठ्यक्रमों में निर्धारित महत्त्वपूर्ण पालिग्रन्थों की पुन: प्रकाशन–योजना में इस 'मिलिन्दपञ्ह' ग्रन्थ का 'छट्ठ सङ्गायन' के आधार पर शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया गया था।

यद्यपि उस संस्करण के समय भी हमारी मान्यता थी कि इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन ही 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' हो सकता है, परन्तु उस समय हम अपना यह सङ्कल्प पूरा नहीं कर पाये; क्योंकि तब १. आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा कृत इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध था। किन्तु मूल (पालि) पाठ अनुपलब्ध था, अत: उसी का प्रकाशन सर्वप्रथम आवश्यक था। २. इसमें हिन्दी अनुवाद साथ लगाने से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने के कारण इसके मूल्य में विवशत: वृद्धि करनी पड़ती। इसलिये उस समय हम मूलपाठ देकर ही सन्तुष्ट रहे।

परन्तु आज हमारे सामने दो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं— १. हमारा यह संस्करण बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन के आधार पर आधृत था। इन दोनों संस्करणों में स्थान–स्थान पर इतना अन्तर है कि उक्त अनुवाद से जिज्ञासु को ग्रन्थ का सरलतया ज्ञान नहीं हो पाता था। इसलिये हमने यही उचित समझा कि इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी इसी संस्करण के साथ हो। २. दूसरी बात यह है कि स्थान–स्थान पर इस ग्रन्थ के कुछ ऐसे कठिन व दुरूह स्थल हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद तत्काल उपलब्ध होना चाहिये, तभी जिज्ञासु को सन्तोष हो सकता है। इन दोनों कठिनाइयों को दूर करने के लिये हम यह संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर रहे हैं।

'मिलिन्दपञ्हपालि' में प्रसङ्ग–प्रसङ्ग पर आये त्रिपिटक के उद्धरणों के पृष्ठांक भी इसमें उद्धृत कर दिये हैं; जो कि मूल पालि संस्करण में हम नहीं दे पाये थे।

विराम चिह्नों का प्रयोग बौद्धभारती–ग्रन्थमाला के अन्य ग्रन्थों की तरह ही किया गया है।

अथ च, ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं, महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन कृत पालिसाहित्य के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों एवं पूज्य गुरुवर्य भिक्षु जगदीश काश्यप कृत हिन्दी अनुवाद का सहारा लिया गया है। एतदर्थ, हम इन तीनों महामनीषियों के प्रति प्रणतिपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

आशा है, इस ग्रन्थ का यह संस्करण विद्वानों एवं छात्रों के लिये समान रूप से हितावह एवं प्रीति–प्रामोद्योत्पादक होगा।

वाराणसी

गुरुपूर्णिमा, २०५३ वि०
(३० जुलाई, १९९६ ई०) } अध्यक्ष, बौद्धभारती

पूर्वपीठिका

बुद्धं धम्मं च सङ्घं च, तथेव गुरुकस्सपं।
अभिवन्दिय भासिस्सं, अधिगन्थं यथामति॥

समृद्ध पालिसाहित्य

यद्यपि विषय की दृष्टि से पालिसाहित्य उतना विस्तृत या परिपूर्ण नहीं है, जितना संस्कृत साहित्य। संस्कृत की तरह नानाविध ज्ञानशाखाओं पर उसमें साहित्य का अभाव है; क्योंकि वस्तुतः पालिसाहित्य में बौद्ध धर्म, वह भी स्थविरवादी बौद्धधर्म, के अतिरिक्त ज्ञातव्य अत्यन्त स्वल्प है। विभिन्न ज्ञानशाखाओं की वह बहुमूल्य सम्पत्ति इसमें सर्वथा नहीं मिलती, जिससे हम इस साहित्य को समृद्ध कह सकें। तथापि इस साहित्य के दूसरे अनेक महत्त्वपूर्ण आकर्षण हैं, जिनसे परिपूर्ण होने के कारण इस साहित्य को भी समृद्ध कहने में हमें कोई संकोच नहीं होता।

पालिसाहित्य का विकास न केवल भारतवर्ष में ही, अपितु हमारे पड़ोसी देशों लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया आदि में भी अत्यधिक हुआ है। अतः स्वभावतः इस साहित्य ने सुदीर्घकाल तक इन देशों की भाषा एवं विचार-परम्परा को भी प्रभावित किया है। पालि भाषा में साहित्य की रचना बुद्धकाल से लेकर आजतक सतत प्रवाहरूप में होती चली आ रही है। इस तरह इसके विकास का, इसकी समृद्धि का कम से कम २५०० वर्ष का तो इतिहास है ही, अतः यही इसकी समृद्धि का उज्ज्वल प्रमाण है।

पालिसाहित्य का वर्गीकरण

सम्पूर्ण पालिवाङ्मय को कालक्रम या प्रवृत्ति की दृष्टि से विभक्त किया जा सकता है। कालक्रम से यह साहित्य पालिसाहित्य (पिटक-बुद्धवचन) और अनुपालि (अनुपिटक, अट्ठकथा या स्वतन्त्र व्याख्या) साहित्य रूप से द्विधा वर्गीकृत किया जा सकता है। पालि (पिटक) साहित्य का विकास बुद्ध के निर्वाणकाल से प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व तक माना गया है। और अनुपालि (अनुपिटक) साहित्य का विकास प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व से लगाकर अद्यावधि होता चला आ रहा है।

(क) पिटक-साहित्य

(क) इस पालि या पिटकसाहित्य को विद्वानों ने सर्वप्रथम तीन भागों में विभक्त किया है— १. विनयपिटक, २. सुत्तपिटक एवं ३. अभिधम्मपिटक।

१. विनयपिटक— यह पिटक अपने आप में परिपूर्ण है, परन्तु विषयवस्तु की दृष्टि से तीन भागों में यों विभक्त किया जा सकता है— (क) सुत्तविभङ्ग, (ख) खन्धक एवं (ग) परिवार। सुत्तविभङ्ग में दो ग्रन्थ हैं- १. पाराजिक एवं २. पाचित्तिय। खन्धक में भी दो ग्रन्थ हैं— १. महावग्ग एवं २. चुल्लवग्ग। परिवार या परिवारपालि अपने नाम से विख्यात है।

२. सुत्तपिटक— यह पिटक पाँच निकायों में विभाजित किया गया है— १. दीघनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुक्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय एवं ५. खुद्दकनिकाय। अन्तिम खुद्दकनिकाय में १५ छोटे-बड़े ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित किये गये हैं।

३. अभिधम्मपिटक— इस पिटक में सात ग्रन्थ हैं— १. धम्मसङ्गणि, २. विभङ्ग, ३. धातुकथा, ४. पुग्गलपञ्ञत्ति, ५. यमक, ६. पट्ठान एवं ७. कथावत्थु।

(ख) पाँच निकाय— पिटकसाहित्य (त्रिपिटक) का उक्त वर्गीकरण तो प्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी समग्र त्रिपिटिक को पाँच निकायों में भी विभक्त करके दिखाया गया है। इनमें चार निकाय तो पूर्वोक्त दीघनिकायादिक ही हैं, पाँचवें खुद्दकनिकाय में उक्त १५ ग्रन्थों के अतिरिक्त विनयपिटक एवं अभिधम्मपिटक का भी संग्रह कर दिया गया है। परन्तु यह विभाजन स्वाभाविक एवं तर्कसम्मत नहीं लगता।

(ग) नौ अङ्ग— त्रिपिटक (बुद्धवचनों) का एक वर्गीकरण नौ अङ्गों के रूप में भी प्रसिद्ध है। वे नौ अङ्ग हैं— १. सुत्त (भगवान् द्वारा दिये गये वे धार्मिक उपदेश जो गद्यों में संगृहीत हुए हैं), २. गेय्य (भगवान् के वे उपदेश जो पद्यमिश्रित अर्थात् गाने योग्य हैं), ३. वेय्याकरण (व्याकरण, वह व्याख्यापरक साहित्य जो अभिधम्मपिटक आदि में सन्निहित है), ४. गाथा (श्लोक, पद्यबद्ध संग्रह), ५. उदान (भावातिरेक में बुद्ध या बुद्धशिष्यों के श्रीमुख से निकले उद्गार), ६. इतिवुत्तक (इत्युक्तकम्, 'ऐसा कहा गया' इस वाक्यांश के साथ भगवान् की छोटी-छोटी उक्तियों का संग्रह), ७. जातक (बुद्ध के पूर्वजन्मों से सम्बद्ध कथायें), ८. अब्भुतधम्म (अद्भुत धर्म, यौगिक सिद्धियों का वर्णन करने वाले त्रिपिटक के अंश) एवं ९. वेदल्ल (ज्ञानवर्धन के लिये प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये उपदेश, जैसे चूळवेदल्लसुत्त, या महावेदल्लसुत्त)। इसीलिये कहा है— 'नवङ्गं बुद्धसासनं'। यह ध्यान रखना चाहिये कि बुद्धवचनों का यह नौ प्रकार का विभाजन भी विषय की दृष्टि से है, ग्रन्थों की दृष्टि से नहीं।

(घ) बुद्धवचनों का एक और वर्गीकरण ८४००० धर्मस्कन्धों के रूप में भी किया गया है, किन्तु यह बौद्ध विद्वानों की विश्लेषणप्रियता का एक आदर्श (नमूना) है, अतः यह औपचारिक है, व्यवहार में इसका उपयोग कम ही है।

सामान्यतः आज तक त्रिपिटक एवं उसके उपविभागों के रूप में ही बुद्धवचनों के अध्ययन की परिपाटी है।

(ख) अनुपिटक साहित्य

अनुपिटक साहित्य का वर्गीकरण करते समय भी हम कालक्रम को ही प्रधान मानेंगे। जैसा पहले कहा जा चुका है, इस अनुपिटक साहित्य की रचना त्रिपिटक के पूर्ण हो जाने के बाद से प्रारम्भ होकर वर्तमान काल तक होती चली आ रही है। किसी भी विद्वान् के लिये यह आश्चर्य की बात होगी कि इतने सुदीर्घ विकास-काल में भी इस साहित्य में इतनी विभिन्नता नहीं दिखायी देती जितनी कि अन्य किसी भी साहित्य में मिलती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इस साहित्य का सदा एक ही केन्द्रबिन्दु—स्थविरवादी बौद्ध धर्म का अध्ययन एवं विवेचन रहा है। अतः एक लक्ष्य होने के कारण नानारूपता आने का प्रश्न नहीं उठता। फिर भी, कालक्रम और प्रवृत्ति की दृष्टि से इस समग्र साहित्य को तीन युगों में बाँटा जा सकता है।

पहला युग प्रथम शताब्दी ईस्वीपूर्व से लगाकर चौथी शताब्दी ईस्वी तक अर्थात् बुद्धघोष के आविर्भावकाल (५०० वर्ष) तक मानना चाहिये। इस युग में नेत्तिपकरण, पेटकोपदेस, सुत्तसंगह और मिलिन्दपञ्ह, महावंस एवं दीपवंस आदि की रचना हुई। जिनमें मिलिन्दपञ्ह सर्वतोऽधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि यह सारा साहित्य बुद्धघोष की उत्पत्ति से पूर्व लिखा गया, अतः इसको 'पूर्वबुद्धघोष युग का साहित्य' कहा जा सकता है।

दूसरा युग— बुद्धघोष के आविर्भावकाल से प्रारम्भ माना जाता है। बुद्धघोष के प्रसिद्ध ग्रन्थ *विसुद्धिमग्ग* एवं उनकी अट्ठकथाएँ, बुद्धदत्त और धर्मपाल आदि की अट्ठकथाएँ इसी युग में लिखी गयी। प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ *महावंस*, एवं व्याकरण शास्त्र में *कच्चायन व्याकरण* तथा अभिधर्म दर्शन पर *अभिधम्मत्थसंगह* भी इसी युग में लिखा गया। पालित्रिपिटक पर अट्ठकथाओं की रचना इस युग की मुख्य विशेषता है, जिसके प्रेरक आचार्य बुद्धघोष ही हैं। अतः इस युग को 'बुद्धघोष-युग' नाम से इतिहासकारों ने व्यवहृत किया है। इस युग की रचना-पंक्ति पाँचवी शताब्दी से लगाकर बारहवीं शताब्दी तक चलती है।

तीसरा युग— उक्त युग में जो अट्ठकथा-साहित्य लिखा गया, उसी की टीकाएँ, उपटीकाएँ, अनुटीकाएँ आगे की शताब्दियों में लिखी जाती रहीं। यह बारहवीं शताब्दी से आज तक का सुदीर्घ युग है। इस युग में प्रायः बुद्धघोष एवं उनके समकालिक आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट पद्धति पर या उनके ही उपजीव्य साहित्य की रचना होती रही है, अतः इस युग को 'बुद्धघोष युग की परम्परा' अथवा 'टीकाओं का युग' नाम दिया गया है।

मिलिन्दपञ्ह का गौरव

इतने विस्तृत वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि पालिसाहित्य में मिलिन्दपञ्ह का क्या स्थान है। यह ग्रन्थ पूर्वबुद्धघोषयुग की सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण अनुपिटक-साहित्य में इस ग्रन्थ की समता अन्य कोई ग्रन्थ नहीं कर पाया, न तो विषय के वर्णन की दृष्टि से, न ही भाषा की दृष्टि से और न शैली की दृष्टि से। आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ को अपनी अट्ठकथाओं में स्थान-स्थान पर त्रिपिटक के समान ही आदरपूर्वक स्मरण करते हुए उद्धृत किया है। यह इसकी महत्ता का सर्वोत्तम परिचायक है। साहित्य और दर्शन— दोनों ही दृष्टियों से 'मिलिन्दपञ्ह' एक गौरवशाली ग्रन्थ है। ग्रन्थ के इस गौरव पर पाश्चात्त्य विद्वान् इतने मुग्ध हैं कि उन्हें इस पर ग्रीक प्रभाव और प्लेटो के विचार की गन्ध आ गयी; क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतीयों में ऐसा उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखने की क्षमता कहाँ थी!

मिलिन्दपञ्ह का रचनाकाल

इस ग्रन्थ में, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, 'मिलिन्द' के 'प्रश्नों' का विवरण है। ('मिलिन्द' शब्द ग्रीक 'मेनान्डर' नाम का भारतीयकरण है।) कहना यह चाहिये कि इसमें मिलिन्द के प्रश्नों का विवरण ही नहीं, अपितु उसके उन प्रश्नों का समाधान इसका मुख्य विषय है। यह समाधान भदन्त नागसेन नामक बौद्ध भिक्षु ने किया था, अतः मिलिन्द एवं भदन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया।

उक्त संवाद एक ऐतिहासिक तथ्य है। इतिहास में एतद्विषयक प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। मिलिन्द को स्वयं इस ग्रन्थ में ही योनक (=यवनक, यूनान=ग्रीस) देश का राजा कहा गया है और उसकी राजधानी सागल (=स्यालकोट, वर्तमान में पाकिस्तान का एक नगर) बतलायी गयी है। हम इतिहास पढ़ने से जानते हैं कि भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग दूसरी शताब्दी ई०पूर्व में कुछ समय के लिये ग्रीक शासकों के हाथों में चला गया था। ग्रीक शासक 'मेनान्डर' या 'मेनान्ड्रोस' ही 'मिलिन्दपञ्ह' का 'मिलिन्द' है। यह इतिहासवादियों का निश्चित मत है। किन्तु इस मिलिन्द के शासनकाल की निश्चित तिथि के विषय में उनका ऐकमत्य नहीं है। उनमें से कुछ इतिहासकार

मानते हैं कि मिलिन्द ने १५५ ई० पूर्व में भारत पर आक्रमण किया, कुछ का मत है कि मिलिन्द का शासनकाल प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व था, एक विद्वान् कहते हैं कि ९० वर्ष ईस्वी पूर्व से पहले मिलिन्द का समय नहीं माना जा सकता। सब मिलाकर विद्वानों का बहुमत इसी पक्ष में है कि मिलिन्द का शासनकाल प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व है। अत: अपने मूलरूप में 'मिलिन्दपञ्ह' इसी समय लिखा गया— यह निश्चित है।

ग्रन्थ की एतद्विषयक ऐतिहासिकता को प्रमाणित करते हुए इसी ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद की भूमिका (पृष्ठ ५-६) में आदरणीय गुरुदेव भिक्षु श्री जगदीश काश्यप एक और दृढ़तर साक्ष्य उपस्थित करते हैं। वे लिखते हैं—

''मिलिन्दपञ्ह के अन्त में आता है कि राजा मिलिन्द भिक्षु बना और उसने अर्हत्-पद प्राप्त किया। इसमें ऐतिहासिक सत्य कहाँ तक है, कहा नहीं जा सकता। राजा मिलिन्द के विषय में सबसे प्रामाणिक जानकारी हमें प्राप्त होती है उसकी मुद्राओं से।

अभी तक राजा मिलिन्द की लगभग बाईस सुन्दर मुद्राएँ उपलब्ध हैं। अधिक में राजा मिलिन्द का नाम स्पष्टतया पढ़ा जाता है। आठ मुद्राओं में राजा की आकृति भी है। ये मुद्राएँ उत्तर-भारत के सुदूर प्रदेश में प्राप्त हुई हैं— पश्चिम में काबुल तक, पूर्व में मथुरा तक और उत्तर में काश्मीर तक। इससे पता चलता है कि मिलिन्द के राज्य का प्रसार बड़ा था। सिक्कों पर राजा की आकृति बहुत सुन्दर आयी है, लम्बी नाक के साथ मूर्ति बहुत ही सजीव ज्ञात पड़ती है। कुछ सिक्कों की आकृति तरुण अवस्था की है और कुछ की अत्यन्त वृद्धावस्था की। इससे पता चलता है कि मिलिन्द राजा का राज्य-काल भी बड़ा लम्बा रहा होगा। मुद्राओं के एक तरफ ग्रीक भाषा में और दूसरी तरफ उस समय की पालिभाषा में लेख है। इक्कीस सिक्कों पर है :

एक तरफ— **Basileos Soteros Menadrou**

दूसरी तरफ— महरजस तद्रतस मेनन्द्रस

कुछ मुद्राओं पर दौड़ते घोड़े, ऊँट, हाथी, सूअर, चक्र या ताड़ के पत्ते खुदे हैं। चक्र वाले सिक्के से यह प्रमाणित होता है कि राजा के ऊपर बौद्ध धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, क्योंकि चक्र (=धर्मचक्र) बुद्ध-धर्म का एक प्रधान चिह्न है। केवल एक मुद्रा ऐसी है जो दूसरों से सर्वथा भिन्न है और इस बात को बहुत सीमा तक पुष्ट करता है मिलिन्द राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। उसके एक तरफ लिखा है :

एक तरफ— Basileos Dikaiou Menadrou

दूसरी तरफ— महरजस धर्मिकस मेनन्द्रस

यहाँ 'धर्मिकस' का अर्थ है ''धार्मिकस्य''। बौद्ध साहित्य में उपासक राजा के लिये बराबर 'धम्मराज' शब्द का प्रयोग होता है। अशोक का तो नाम ही हो गया था 'धर्माशोक'। अत: इस मुद्रा में जो 'धर्मिकस' पद का प्रयोग आया है उससे सिद्ध होता है कि मिलिन्द अन्त में अवश्य बौद्ध हो गया होगा।

प्लुटार्क भी अपने इतिहास में लिखता है कि मेनाण्डर बहुत न्यायी विद्वान् और जनप्रिय राजा था। उसकी मृत्यु के बाद उसके फूल (= भस्मावशेष) लेने के लिये लोगों में विवाद छिड़ गया था। लोगों ने उसके फूलों पर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। यह कहानी भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण

के समय जो बातें हुई थीं, उनसे बहुत मिलती है। फूलों के ऊपर स्तूप बनवाना बौद्धों की प्रचलित प्रथा थी। इसे भी यह ज्ञात होता है कि मिलिन्द अवश्य बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया होगा।''

'मिलिन्दपञ्हो' के रचयिता : नागसेन

इस तरह ग्रीक राजा मिलिन्द एवं भदन्त नागसेन के संवाद के रूप में इस ग्रन्थ का लिखा जाना एक निश्चित ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध होने पर अभी इन प्रश्नों पर विचार करना है कि इसका रचयिता कौन है ? इसका मूल रूप क्या था, किस भाषा में था ? बाद में एक बार या बार-बार इसमें कब और क्या क्या परिवर्तन-परिवर्धन हुए ?

इसके रचना-स्थान के विषय में यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि मूल रूप में यह ग्रन्थ उत्तर-पश्चिम भारत में द्वितीय या प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में हुए मिलिन्द व नागसेन के संवाद के रूप में उसी समय या कम से कम प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व के निकट काल में, बौद्ध धर्म और दर्शन सम्बन्धी शङ्काओं के निवारणार्थ लिखा गया था।

इस ग्रन्थ के रचयिता के रूप में भदन्त नागसेन को माना जा सकता है। ग्रन्थ के नायक होने के साथ-साथ उनके इस ग्रन्थ का रचयिता होने में कोई विरोध नहीं है; क्योंकि हम भारतीय लेखकों की परम्परा में ऐसे अनेक उदाहरण देखते हैं कि वे ग्रन्थ के लेखक भी हैं और ग्रन्थ में पात्र (संवादक) भी। जैसे रामायणकार वाल्मीकि रामायण के रचयिता भी हैं और राम के उपदेशक के रूप में ग्रन्थ में भी स्थान-स्थान पर चर्चित हैं। इसी तरह महाभारतकार व्यास महाभारत में स्थान-स्थान पर एक विशिष्ट संवादक के रूप में उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में नागसेन भी इस ग्रन्थ के रचयिता होते हुए संवादक भी क्यों नहीं हो सकते! आचार्य बुद्धघोष ने भी, जिनकी प्रामाणिता पालिवाङ्मय में असन्दिग्ध एवं सर्वोपरि है, अपनी अट्ठकथाओं में विशेषत: *अट्ठसालिनी* और *विसुद्धिमग्ग* में स्थान-स्थान भदन्त नागसेन को मिलिन्दपञ्ह के रचयिता के रूप में ही माना है।

श्रीमती रायस डेविस ने 'मिलिन्दपञ्हो' के अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में ग्रन्थ के रचयिता का नाम 'माणव' बतलाया है। परन्तु 'माणव' नामधारी किसी विद्वान् द्वारा 'मिलिन्दपञ्हो' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना के बाद भी उसका नाम उससे पहले या बाद में कोई भी न ले— ऐसा कभी देखा या सुना नहीं गया। अत: इस 'माणव' नाम के पीछे ऐतिहासिकता के अभाव में इसे हम श्रीमती रायस डेविस का कल्पनाप्रसूत ही मानते हैं। विद्वानों को ऐसे भ्रमजाल में नहीं फँसना चाहिये।

मिलिन्दपञ्ह का मूल रूप

मिलिन्दपञ्ह के मूल रूप को लेकर भी पश्चिमी विद्वानों ने एक वाद खड़ा किया है। वे कहते हैं कि यह एक समय में बनी हुई समग्र रचना नहीं हैं। उनके अनुसार इसमें समय-समय पर परिवर्धन होते रहे हैं। परिच्छेदों और विषयवस्तु की भिन्नरूपता का आश्रय लेकर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है! उनकी धारणा है कि मौलिक रूप में यह ग्रन्थ मिलिन्द-नागसेन के संवाद के संक्षिप्त विवरण के रूप में बहुत छोटा था, बाद में स्थविरवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषयों को इसमें समाविष्ट कर दिया गया।

इसमें वे लोग ग्रन्थ के अनेकरूपतामय आन्तरिक साक्ष्य के अतिरिक्त एक प्रभावशाली बाह्य साक्ष्य भी देते हैं। वह साक्ष्य है ३१७ और ४२० ई० के मध्य हुआ इस ग्रन्थ का चीनी भाषा

रूपान्तर, इसमें प्रारम्भ के केवल तीन परिच्छेदों (१. पूर्वयोग, २. लक्खणपञ्ह एवं ३. विमतिच्छेदनपञ्ह) का ही अनुवाद मिलता है। इस अनुवाद का नाम चीन में *नागसेन-सूत्र* है। इसमें चतुर्थ परिच्छेद (मेण्डकपञ्ह) से षष्ठ (ओपम्मकथापञ्ह) परिच्छेद तक का अनुवाद नहीं है। इस साक्ष्य के आधार पर सेनार्ट, बार्थ, गायगर और विन्टरनित्ज आदि विद्वान् इस ग्रन्थ का मौलिक रूप तृतीय परिच्छेद तक ही मानते हैं।

इस मत के समर्थन में वे अन्य कारण भी देते हैं।

१. सबसे बड़ा कारण है इस ग्रन्थ के तृतीय परिच्छेद के अन्त में ही ग्रन्थ-समाप्तिसूचक वाक्य लिख दिया गया है— 'मिलिन्दपञ्हपुच्छाविसज्जना निट्ठिता।' फिर चतुर्थ परिच्छेद के प्रारम्भ में नये क्रम से लिखा है—

"भस्सप्पवेदी वेतण्डी, अतिबुद्धि विचक्खणो।
मिलिन्दो ञाणभेदाय, नागसेनमुपागमि॥"

एक ही ग्रन्थ था तो जब पहले मिलिन्द के प्रश्न समाप्त कर दिये गये, तब पुन: इस तरह दोबारा विषयोत्थान करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी?

२. दूसरा कारण देते हुए वे कहते हैं कि कितने आश्चर्य की बात है कि आचार्य बुद्धघोष भी मिलिन्दपञ्ह के जिन उद्धरणों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत करते हैं, वे सब प्राय: प्रथम के तीन परिच्छेदों में से ही हैं। अत: निष्पक्ष समालोचक होने के कारण प्रथम तीन परिच्छेदों को ही प्रामाणिक (मूलरूप) मानना पड़ता है। यों, इन बाह्य और आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर पाश्चात्त्य विद्वानों ने मिलिन्दपञ्ह का मूलरूप प्रथम तीन परिच्छेद तक ही माना, उसके अवशिष्ट परिच्छेदों को वे बाद में मिलाया हुआ मानते हैं।

संक्षेप में इन विद्वानों ने ग्रन्थ के मौलिक रूप के उपर्युक्त निर्णय में चार हेतु दिये हैं— १. विषयवस्तु की भिन्नरूपता, २. ग्रन्थ का चीनी भाषान्तर, ३. बुद्धघोष द्वारा उद्धृत इस ग्रन्थ के उद्धरण एवं ४. ग्रन्थ के चौथे परिच्छेद से नये रूप में विषयावतरण।

पाश्चात्त्यमतखण्डन— हमारा इस वाद में इतना ही कहना है कि पाश्चात्त्य विद्वान् ग्रन्थ को सूक्ष्मेक्षिकया न पढ़ने के कारण और भारतीय लेखकों की शैली एवं भारतीय संस्कारों से अपरिचित होने के कारण ऐसी भूल कर बैठे! प्रत्येक ग्रन्थ की रचना के अनुबन्ध-चतुष्टय होते हैं— १. विषय, २. प्रयोजन, ३. अधिकारी एवं ४. सम्बन्ध। मिलिन्दपञ्ह के भी अनुबन्ध-चतुष्टय हैं। इसका साक्षात् अधिकारी है— मिलिन्द और प्रयोजन है मिलिन्द के बौद्ध दर्शन एवं धर्म के विषय में सञ्जात भ्रमों का निराकरण।

१. हम इतिहास से इस साक्षात् अधिकारी मिलिन्द के विषय में जानते हैं कि यह विद्वान् था, तार्किक था, परन्तु अभारतीय था। इसे भारतीय धर्म, दर्शन एवं शास्त्र के विषय में कोई श्रद्धा नहीं थी। वह अपने देश के विद्वानों, भारत और यूनान के बीच में पड़ने वाले देश के अन्य विद्वानों को अपनी तर्कबुद्धि से परास्त करा चुका था। भारत में भी यह नागसेन से संवाद होने से पूर्व पूरण काश्यप आदि अन्य भारतीय धर्मपीठाधीशों एवं दर्शनाचार्यों को, आयुपाल जैसे बौद्धों को अपनी अनुपम तर्कशक्ति से चुप कर चुका था। इस कारण इसे अपने तर्कबल का बहुत दम्भ हो गया था। वह कह बैठा— "तुच्छो बत, भो, जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा, यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं"। (समग्र जम्बुद्वीप आज विद्याविहीन हो चुका है, इसमें ऐसा

कोई श्रमण या ब्राह्मण विद्वान् नहीं दिखायी देता, जो मेरे सामने आने का साहस कर सके! मेरे प्रश्नों का उत्तर देना तो बहुत दूर की बात है!) ऐसी परिस्थिति में वह नागसेन से मिला है। मिलते ही उसने यहाँ भी, पूर्व के विद्वानों की तरह नागसेन के सामने भी, वितण्डावाद के सहारे तत्त्वचर्चा प्रारम्भ की थी। परन्तु नागसेन जैसे सिद्ध विद्वान् के सामने उसकी एक युक्ति न चली और जब उसके सभी छोटे-बड़े प्रश्नों का शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत उत्तर मिलता गया, तब जीवन में पहली बार उसके दम्भ, दर्प व अभिमान विगलित हुए और वह हृदय से एक वास्तविक विद्वान् के सामने नतमस्तक हुआ। उसके मुख से अकस्मात् ये नम्रतामय उद्गार निकले— ''आम, भणे, पण्डितो थेरो। एदिसो आचरियो भवेय्य, मादिसो च अन्तेवासी, नचिरस्सेव पण्डितो धम्मं आजानेय्या'' ति। (योनकदेशवासियो! तुम ठीक ही कह रहे हो, भदन्त नागसेन विद्वान् हैं! ऐसा (नागसेन जैसा) आचार्य (उपदेष्टा) हो, और मेरे जैसा अन्तेवासी (शिष्य) जिज्ञासु, तभी वह धर्म की गुत्थियों को इतना शीघ्र सुलझा सकता है)। और वह भदन्त नागसेन का वस्तुतः अन्तेवासी बन गया।

अन्तेवासी बनकर उसने त्रिपिटक एवं स्थविरवाद दर्शन का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। अध्ययन करने के बाद उसकी जन्मजात तर्कबुद्धि से त्रिपिटक में जो बातें उसे द्विविधापूर्ण (दुतरफा) लगीं, उनके विषय में भदन्त नागसेन से प्रश्न करके अपने भ्रम का निराकरण किया। 'मेण्डकपञ्ह' में ऐसे ही भ्रमात्मक प्रश्नों का उत्तर है।

इस तरह त्रिपिटक का सर्वथा विनीत अध्येता बनने पर भी मिलिन्द की पुरानी भावना प्रच्छन्न रूप से काम कर रही थी, उसी के आधार पर उसके द्वारा बाद में जो प्रश्न किये गये उनका अनुमान (तर्क, युक्ति) के बल पर भदन्त नागसेन द्वारा उत्तर दिया गया। 'अनुमानपञ्ह' में ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर है।

उन्हीं में से कुछ प्रश्नों का उत्तर तर्क के आधार पर उपमा (उदाहरण) के सहारे 'ओपम्मकथापञ्ह' में दिया है, क्योंकि उपमा द्वारा कठिन से कठिन बात भी शीघ्र समझ में आ जाती है।

इस तरह साधारण पाठक ग्रन्थ के विषय की भिन्नरूपता का कारण समझ सकते हैं। इस वस्तुस्थिति के रहते यह कैसे माना जा सकता है, ग्रन्थ बार-बार कई व्यक्तियों द्वारा लिखा गया है!

२. अब चीनी भाषान्तर को लें। चीनी भाषान्तर तीन ही परिच्छेद तक मिलता है तो हम क्या करें! फिर हमारे पिछले तर्क के आधार पर हो सकता है चीनियों ने जितने अंश में सीधे शास्त्र पर प्रश्न किये गये थे, उतने का अनुवाद कर लिया। अवशिष्ट जिस अंश में स्थविरवादी दर्शन की चर्चा है उसका महायानवादी चीनी विद्वान् अनुवाद न करें तो इसमें ग्रन्थ का क्या दोष है? अथ च, यह भी हो सकता है, प्रारम्भ में पूरे ग्रन्थ का चीनी अनुवाद किया गया हो, बाद में किसी कारण से आगे का अंश लुप्त हो गया हो और फिर अनुवाद में भिन्नरूपता आ जाने के भय से या स्थविरवाद के प्रति उपेक्षा के कारण, वहाँ पुनः (दुबारा) अनुवाद न किया गया हो। अतः केवल चीनी भाषान्तर के दुर्बल साक्ष्य पर हम यह मानने को सन्नद्ध नहीं हैं कि मूलरूप में ग्रन्थ प्रारम्भ में तीन परिच्छेद तक ही लिखा गया था।

३. रह गयी बात आचार्य बुद्धघोष द्वारा उद्धृत उद्धरणांशों की। इस विषय में हमारा यह मत है कि ग्रन्थ में विमतिच्छेदपञ्हपर्यन्त एक विदेशी तर्कशास्त्री से शास्त्र के मुद्दों पर ही प्रधानतः चर्चा है। उधर बुद्धघोष को शास्त्र की अपनी व्याख्या (अट्ठकथा) में जहाँ-जहाँ अपने से अधिक

उद्भट विद्वान् के आश्रय की आवश्यकता पड़ी वहाँ उन्होंने त्रिपिटिक में उद्धरण न मिलने पर मिलिन्दपञ्ह से उद्धरण दिये। मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह में शास्त्रप्रधान-चर्चा नहीं है, अतः उन्होंने उन प्रकरणों से उद्धरण नहीं दिये। परन्तु यह इससे यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि मिलिन्दपञ्ह की, मूल रूप में, तीन ही परिच्छेद तक रचना हुई थी!

४. रही बात चतुर्थ परिच्छेद से नये रूप में विषयावतरण की, इसमें भी पाश्चात्त्यों को क्या उद्वेग है? हमारे भारतीय संस्कारों में ग्रन्थों के प्रत्येक परिच्छेद के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण की परिपाटी देखी गयी है। जब कि मिलिन्दपञ्ह में तो चतुर्थ परिच्छेद नये परिवेश में प्रारम्भ किया जा रहा है, वहाँ पुनः मङ्गलाचरण करना स्वभाविक है। हम पीछे कह ही आये हैं कि तृतीय परिच्छेद तक भदन्त नागसेन के साथ उस मिलिन्द के संवाद हैं जो धृष्ट, उद्धत, वितण्डावादी एवं अभारतीय है। अब चतुर्थ परिच्छेद में वही भस्सप्पवेदी, वेतण्डी मिलिन्द भदन्त नागसेन का अन्तेवासी, उपासक, भारतीय दर्शन तथा बौद्ध धर्म के प्रति विनीत एवं श्रद्धालु बन चुका है, पाठकों को यह दिखाने के लिये ही नये रूप में विषय प्रारम्भ किया गया है। इससे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि यहाँ से यह ग्रन्थ शताब्दियों बाद किसी दूसरे रचनाकार ने लिखा है!

इन सब युक्तियों के आधार पर हम तो यह मानते हैं कि यह ग्रन्थ 'एक साथ, एक ही समय, एक ही लेखक द्वारा' लिखा गया है।

ग्रन्थ के कई पाठभेद मिलने की बात भी ऐसी ही है! जर्मन विद्वान् श्रेडर ने तो इस ग्रन्थ के सात पाठ-भेद खोज निकाले हैं, एक दो की बात कौन कहे! सचाई यह है कि इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के विषय में साधनाभाव में ऐसी ही सब कपोलकल्पनायें हुआ करती हैं।

क्या मिलिन्दपञ्ह मूलरूप में संस्कृत में था?

मिलिन्दपञ्ह की उत्कृष्ट रचना-शैली, जो कि उस काल के संस्कृत ग्रन्थों से मिलती-जुलती है, उसे देखकर गायगर जैसे कुछ पाश्चात्त्य मनीषियों ने और उनकी देखा-देखी यहाँ के विद्वानों ने मिलिन्दपञ्ह के विषय में यह धारणा फैलायी कि यह ग्रन्थ मूल रूप में संस्कृत में लिखा गया था, अनागत काल में किसी विद्वान् ने पालि भाषा में उसका अनुवाद कर दिया।

परन्तु यदि शैलीमात्र से हम इस ग्रन्थ के वर्तमान रूप को संस्कृत से अनूदित मानें तो भगवान् बुद्ध से लगाकर आचार्य बुद्धघोष तक का बहुत सा पालिसाहित्य संस्कृत से अनूदित मानना पड़ेगा। क्या दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय और विसुद्धिमग्ग की भाषा और शैली मिलिन्दपञ्ह से कहीं भी दुर्बल है? यदि वे सब ग्रन्थ मूल रूप में पालि में ही लिखे गये माने जा सकते हैं तो मिलिन्दपञ्ह के विषय में यह विवाद किस तर्क के आधार पर खड़ा किया जा सकता है!

वस्तुसत्य यह हैं कि तीन शताब्दी ईस्वी पूर्व से प्रारम्भकर पाँचवीं, छठीं शताब्दी तक लिखित समग्र भारतीय साहित्य, फिर वह भले ही संस्कृत में लिखा गया हो, या पालि में या प्राकृत में, सबकी शैली समानतया उत्कृष्ट रही है। क्योंकि उस समय संस्कृत अधिक समृद्ध थी, अतः उसके नाम पर किसी भी ग्रन्थ के लिये यह भ्रम फैलाना सरल होता है कि वह मूलरूप में संस्कृत में लिखा गया होगा। वस्तुतः मिलिन्दपञ्ह मूलरूप में पालि में ही लिखा गया है।

एक बात और! स्थविरवाद का प्रतिपादन जिस सम्पन्नता एवं समृद्धि के साथ पालि भाषा में किया जा सकता था उतना संस्कृत में नहीं; क्योंकि उस समय तक संस्कृत के विद्वान् पालिभाषा में लिखना अपनी हीनता समझते थे और स्थविरवादी विद्वान् उस समय "अनुजानामि, भिक्खवे,

सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं' भगवान् की इस आज्ञा का उल्लङ्घन करना पाप समझते थे! ऐसी स्थिति में मिलिन्दपञ्ह के संस्कृत में लिखे जाने की कल्पना उस समय की सामाजिक मान्यताओं से अपने आप को अपरिचित घोषित करना है।

अतः हम यही मानने में अपना और पालिसाहित्य का सम्मान समझते हैं कि मिलिन्दपञ्ह मूल रूप में पालिभाषा में ही निबद्ध हुआ है। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० भरतसिंह उपाध्याय भी हमारे इस मत के समर्थक हैं।

मिलिन्दपञ्ह के रचयिता नागसेन

यदि मिलिन्दपञ्ह के रचयिता के रूप में भदन्त नागसेन को ही माना जाता है, तो नागसेन का जीवनचरित्र हम ग्रन्थ की विषयवस्तु लिखते समय प्रारम्भ में ही लिखेंगे। सम्राट् मिलिन्द के विषय में, हमें जो कुछ इतिहास से ज्ञात हुआ, पीछे लिख चुके हैं।

मिलिन्दपञ्ह का त्रुटित अंश

मिलिन्दपञ्ह के अब तक हमको जितने भी संस्करण मिले हैं— रोमन, श्रीलंका, बर्मा या हिन्दी संस्करण— सभी त्रुटित मिले हैं। यहाँ तक कि छट्ठ संगायन (बर्मा) का नवीनतम संस्करण भी उतने अंश में त्रुटित ही है।

षष्ठ *ओपम्मकथापञ्ह* में *कुम्भवग्ग* की ६७वीं मातिका के बाद अवशिष्ट मातिकाओं का व्याख्यान किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं हुआ, विवशतः इस संस्करण में हम भी उतनी मातिकाओं का व्याख्यान नहीं दे पाये। यद्यपि इतने अंश के नष्ट होने से मिलिन्दपञ्ह की पूर्णता पर कोई आंच नहीं आ पायी, क्योंकि उतने अंश की मातिकाएँ तो उपलब्ध हैं ही। इन मातिकाओं से भी जिज्ञासु का बहुत कुछ समाधान हो जाता है।

अनुमान ऐसा होता है कि ग्रन्थ का यह अंश बहुत पहले नष्ट हो गया था, बाद में भाषा में अनेकरूपता आ जाने के भय से किसी विद्वान् ने यह अंश पुनः अपनी भाषा में नहीं लगाया; क्योंकि इन प्राचीन ग्रन्थों के साथ पुण्यपाठ का लाभ भी श्रद्धालु जिज्ञासुओं के साथ जुड़ा हुआ है! भदन्त नागसेन के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा त्रुटित जोड़ देने से यह लाभ मिलना असम्भव था!

ग्रन्थ का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व

इस ग्रन्थ का साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि की दृष्टि से जो महत्त्व हैं, उसके विषय में पालिसाहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० भरतसिंह उपाध्याय अपने ग्रन्थ (पालि साहित्य का इतिहास) में लिखते हैं—

''मिलिन्दपञ्ह का दार्शनिक और धार्मिक दृष्टि से तो महत्त्व है ही, साथ ही इसका साहित्यिक या ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं है। यद्यपि स्थविरवादी बौद्ध धर्म का यह कण्ठहार है, जिसकी प्रतिष्ठा यहाँ बुद्ध-वचनों के समान ही मान्य है, वह भारतीय साहित्य की भी अमूल्य निधि है। यह सत्य है कि लंका, बर्मा और स्याम देशों की तरह भारत में उसकी आधुनिक लोक-भाषाओं में 'मिलिन्दपञ्ह' सम्बन्धी प्रचुर साहित्य नहीं लिखा गया, किन्तु केवल इस कारण उसे उस गौरव से, जो मिलिन्दपञ्ह ने भारतीय साहित्य को दिया है, वञ्चित कर देना ठीक नहीं होगा।

यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व की प्रभावशाली भारतीय गद्य शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। विवेचनात्मक विषयों के लिये उपयुक्त हिन्दी की गद्य शैली का विकास तो हमारे

साहित्य में अभी हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में भी ऐसी परम्परा १००-१५० वर्ष से पहले नहीं जाती। संस्कृत में बाण और दण्डी का गद्य भी निश्चय ही इसके लिये उपयुक्त नहीं था। इस दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्ह' की विचारात्मक गद्यबद्ध शैली कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका सम्यक् अनुमान ही नहीं किया जा सकता। लेखक का शब्दों पर अधिकार, उसकी शैली की प्रवहणशीलता, उसका ओजोमय शब्दचयन, कथन की प्रभावपूर्ण शैली, उपमाओं और युक्तियों द्वारा उसका स्वाभाविक अलंकारविधान, सबसे बढ़कर उसकी सरलता और प्रसाद गुण— ये सब विशेषताएँ उसे साहित्यिक गद्य के निर्माताओं की उस श्रेणी में बैठा देती हैं, जहाँ उसका तेज सर्वोपरि है।

प्राचीन भारतीय गद्यसाहित्य में 'मिलिन्दपञ्ह' के समान अन्य कोई रचना न पाकर ही सम्भवतः कुछ पाश्चात्त्य विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया है कि इस ग्रन्थ की शैली पर ग्रीक प्रभाव उपलक्षित है। परन्तु यह एक बड़ा भ्रम है। सत्य यह है कि भारतीय पराधीनता के युग में अधिकांश पश्चिमी विद्वान् यह विश्वास ही नहीं कर सकते थे कि भारत में भी विश्व-संस्कृति को कुछ मौलिक योगदान किया है। इसी कारण उन्होंने अनेक प्राचीन भारतीय विशेषतापूर्ण बातों पर भी पश्चिमी प्रभाव की कल्पना कर ली है। अफलातूं के संवादों के प्रभाव को 'मिलिन्दपञ्ह' की शैली पर बताने के समान और कोई निरर्थक बात नहीं कही जा सकती। पहले तो ग्रीक भाषा और विचार से नागसेन के परिचित होने का साक्ष्य नहीं दिया जा सकता, फिर उनके सामने प्राचीन उपनिषदों और स्वयं बुद्धवचनों के रूप में गम्भीर संवादों की परम्परा प्रस्तुत थी, तो वे उसे छोड़कर विदेश से उसे ग्रहण करने क्यों जाते? वह समय तो भारतीय संस्कृति के गौरव का था। और हम समझते हैं भारतीय ज्ञान का वह गौरव ही 'मिलिन्दपञ्ह' में प्रतिध्वनित हुआ है, जिससे नत होकर ही बुद्धिवादी मिलिन्द राजा बुद्धधर्म में उपासकत्व ग्रहण कर लेता है। यह भारतीय ज्ञान की उस ग्रीक ज्ञान पर महान् विजय का द्योतक है, जिसका पाश्चात्य जगत् बड़ा गर्व करता है और जिससे ही वास्तव में उसने सारा ज्ञान प्राप्त भी किया है। 'मिलिन्दपञ्ह' उस ज्ञानविजय अथवा धर्मविजय का स्मारक एवं परिचायक है, जिसे भारत ने उस समय के, अपने अतिरिक्त, सबसे अधिक ज्ञानसम्पन्न देश पर प्राप्त किया था। इस दृष्टि से वह भारतीय वाङ्मय के अमर रत्नों में से एक है।

जहाँ तक 'मिलिन्दपञ्ह' की शैली के स्रोतों या उसकी प्रेरणा का प्रश्न है, वह निश्चय ही त्रिपिटक के बुद्धवचनों में ही निहित है। दीघनिकाय के 'पायासिसुत्त' जैसे सुत्तों की जीवित संवाद-शैली उसकी प्रेरणा-स्वरूप मानी जा सकती है। 'कथावत्थु' के अप्रतिम आचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्स के भी भदन्त नागसेन कम ऋणी नहीं है। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन हम यहाँ विस्तार-भय से नहीं कर सकते, किन्तु यह तो निश्चित ही है कि मोग्गलिपुत्त के समाधानों पर ही नागसेन के अधिकांश 'प्रश्न-व्याकरण' (प्रश्नों के उत्तर) आधृत हैं और जिस मन्तव्य को वहाँ 'स्थविरवाद' के रूप में अपनाया गया वही मन्तव्य मिलिन्दपञ्हकार का भी है।

यद्यपि उपनिषदों की शैली का कोई स्पष्ट प्रभाव 'मिलिन्दपञ्ह' पर परिलक्षित नहीं होता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि श्वेतकेतु आरुणेय और प्रवाहण जाबालि (जिनके संवाद छान्दोग्य १,८,३ और बृहदारण्यक ६,२,१ में आते हैं), आरुणि और श्वेतकेतु (छान्दोग्य ६,९) आदि अनेक ऋषियों के संवाद अपनी विचित्र विशेषताएँ रखते हुए भी मिलिन्द और नागसेन के प्रभावशाली संवादों में अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं।

इतिहास की दृष्टि से, विशेषतः पालि-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्ह' का

यह महत्त्व है कि उसमें पालि-त्रिपिटिक से नाना ग्रन्थों के नाम देकर, पाँच निकायों, अभिधम्मपिटक के सात ग्रन्थों और उनके भिन्न-भिन्न अंगों के निर्देशपूर्वक अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व अपने उसी नामरूप में विद्यमान था, जिसमें वह आज है। इस प्रकार 'मिलिन्दपञ्ह' का साक्ष्य अशोक के अभिलेखों द्वारा प्रदत्त साक्ष्य का समर्थन करता है।

'मिलिन्दपञ्ह' में अनेक स्थानों के वर्णन हैं, जैसे अलसन्द (अलेक्जेड्रिया), यवन (यूनान, बैक्ट्रिया), भरुकच्छ (भडौंच), चीन (चीनदेश), गान्धार, कलिंग, कजंगला, कोसल, मथुरा, सागल, साकेत, सौराष्ट्र (सोरट्ठ), वाराणसी, बंग, तक्कोल्ल, उज्जैन आदि। इनसे तत्कालीन भारतीय भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सारांश यह है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल— सभी दृष्टियों से 'मिलिन्दपञ्ह' का भारतीय वाङ्मय के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और पालि अनुपिटक-साहित्य में तो उसके समान महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा स्वतन्त्र ग्रन्थ है ही नहीं— यह तो निर्विवाद ही है।

वर्तमान सम्पादन

१. हमें सम्पादन के समय इस ग्रन्थ के ये चार पूर्व संस्करण मिले हैं—

(क) रोमन लिपि में, वी० ट्रेन्कनर द्वारा सम्पादित एवं लन्दन से प्रकाशित, १८८० ई०।

(ख) श्रीलंका की लिपि में, श्री पियरतन, श्री गुणरतन एवं श्री रत्नसार थेर द्वारा सम्पादित, सीलोन से प्रकाशित, १९२७ ई०।

(ग) देवनागरी लिपि में, श्री आर० डी० वडेकर द्वारा सम्पादित, बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९४० ई०।

(घ) बर्मी लिपि में, छट्ठ संगीति द्वारा संगायित, एवं बुद्ध-सासन-समिति रंगून द्वारा मुद्रापित, १९६० ई०। जिसमें इस ग्रन्थ (मिलिन्दपञ्हपालि) के मुखपृष्ठ पर ही अपनी बात स्पष्ट लिख दी है—

'छट्ठसङ्गीतियं थेरा, सङ्गीतिकारका यथा।
सङ्गायिसु, तथेवायं दुतियं पि सुमुद्दिता'॥

निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो उक्त चारों संस्करणों में अन्तिम चतुर्थ संस्करण ही सर्वोत्तम है— सम्पादन की दृष्टि से भी, प्रामाणिकता की दृष्टि से भी और मुद्रण की दृष्टि से भी।

अतः हमने भी इसी संस्करण को आदर्श माना है। मूलपाठ और विषयविभाजन हमने इसी के आधार पर रखा है। इस तरह हमारा यह संस्करण छट्ठसंगायन-संस्करण पर आधृत होने के कारण नालन्दा-परम्परा में प्रकाशित त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं के समान ही प्रामाणिक माना जाना चाहिये; क्योंकि उक्त 'नालन्दा का समग्र प्रकाशन' भी वर्तमान बौद्ध जगत् में आदर्शभूत छट्ठसंगायन को ही अपना आधार मानता है।

देवनागरी लिपि में प्रकाशित श्री वडेकर द्वारा सम्पादित संस्करण ट्रेन्कनर-संस्करण (रोमन) पर आधृत है। ट्रेन्कनर का संस्करण इतना पुराना और स्वल्प सामग्री पर आधृत था कि उसे कई तरह से अपूर्ण ही कहना चाहिये। उसमें मूलपाठ, विषयविभाजन आदि सब कुछ उस समय में उपलब्ध स्वल्प सामग्री के आधार पर दिया गया है, जो आज छट्ठसंगायन-संस्करण को देखने के बाद बहुत कुछ विद्वज्जनानुमोदित नहीं रह गया। फिर भी श्री वडेकर महोदय के हम भारतीय जन

इस अर्थ में अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि जिस समय भारत में पालि-भाषा के अध्ययन-अध्यापन के साधन नहीं के समान थे, उस समय उन्होंने इतना महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ पालि-अध्येताओं को देवनागरी लिपि में आधुनिक साज-सज्जा के साथ हस्तगत करा दिया।

२. ग्रन्थ का पैराग्राफिंग तथा उसका क्रमाङ्क हमारा अपना है। पैराग्राफिंग के विषय में हम छट्ठसङ्गायन से सहमत हैं, पर क्रमाङ्क के सम्बन्ध में हमारा अपना दृष्टिकोण रहा है, तदनुसार हमने क्रमाङ्क विषयवस्तु के अनुसार प्रश्नोत्तर के रूप में दिये हैं। आशा है, विद्वज्जन इसका समर्थन करेंगे।

३. हम अपने प्रकाशन के अन्य ग्रन्थों की तरह, अनुसन्धाताओं की सुविधा के लिये इस ग्रन्थ में आये त्रिपिटक के उद्धरणों के अन्त में पृष्ठाङ्कसहित सम्बद्ध ग्रन्थों का नाम छात्रों के लिये बहुत अधिक उपयोगी होने के कारण उनको स्थान स्थान पर (   ) में दिया है। त्रिपिटक के ग्रन्थों का नाम भी भिन्न अक्षरों में दिया गया है, ताकि अध्येता की दृष्टि में तत्काल उस ग्रन्थ का नाम आ जाय।

४. पालि भाषा का साधारण पाठकों के लिये भी यह ग्रन्थ सुविधया पठनीय हो सके, इसके लिये हमने अनावश्यक सन्धिवाले पद पृथक् पृथक् रखे हैं, विशेषतः वग्गन्त (परसवर्ण) की सन्धिवाले पद। इससे ग्रन्थ की परम्परा सुरक्षित रहेगी और साधारण पाठकों के लिये भी ग्रन्थ सुग्राह्य होगा।

५. विराम आदि चिह्नों के लिये हमने नालन्दा-परम्परा को आदर्श माना है। उसी के अनुसार समग्र चिह्नों का प्रयोग किया गया है। राजा मिलिन्द और भदन्त नागसेन के प्रश्न-उत्तरों को सर्वत्र पृथक्-पृथक् डबल इन्वर्टेड कामा (" ") में बन्द किया है और उनके अन्तर्भूत अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों को सिंगल इन्वर्टेड (' ') में। इस तरह छात्र सरलता से यह जान सकेंगे कि कितना अंश मिलिन्द के प्रश्न का है और कितना भदन्त नागसेन के उत्तर का। इससे ग्रन्थ को समझने में बहुत सुविधा मिलेगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

६. इस तरह गुरुकृपा से अतीव परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह परिश्रम विद्वज्जन तथा छात्रगण दोनों का ही समान रूप से सुखकर एवं हितकर होगा।

७. इस ग्रन्थ के सम्पादन में जिन-जिन महानुभावों की अनुपम कृतियों का, रचनाओं का, ग्रन्थों का हमने आधार लिया है, उसके लिये हम हृदय से उन सज्जनों के प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते हैं। इसके लिये उनका आभार मानना हम अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं।

बौद्धभारतीभवन
वाराणसी

विद्वज्जनवशंवद
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

उत्तरपीठिका

मिलिन्दपञ्हगन्थस्स, कथेयं रट्ठभासया।
बालानां सुखबोधाय, सङ्खेपेन कथीयति॥

मिलिन्दपञ्ह का विषय-विभाजन

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही 'गन्थकथावत्थु' शीर्षक से सागल नगर का विभूतिवर्णन एवं इस ग्रन्थ का छह प्रकरणों में विस्तार बताया है। यह विस्तार यों है—१. पुब्बयोग (बाहिरकथा), २. मिलिन्दपञ्ह, ३. लक्खणपञ्ह, ४. मेण्डकपञ्ह, ५. अनुमानपञ्ह, एवं ६. ओपम्मकथापञ्ह। वस्तुतः ग्रन्थ देखने से ज्ञात होता है कि लेखक के तीसरे अध्याय मिलिन्दपञ्ह को विषयवर्णन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा है—(क) लक्खणपञ्ह एवं (ख) विमतिच्छेदनपञ्ह। मेण्डकपञ्ह को भी (क) महावग्ग एवं (ख) योगिकथापञ्ह रूप में विभक्त किया गया है।

यद्यपि अन्य संस्करणों में 'धुतङ्गपञ्हो' को भी एक पृथक् प्रकरण माना है, किन्तु हमने इसको इस संस्करण में, छट्ठसंगायन के आधार पर, अनुमानपञ्ह के अन्तर्गत ही रखा है।

१. पूर्वयोग

पूर्वजन्म—इस प्रकरण में सर्वप्रथम नागसेन एवं मिलिन्द की पूर्वजन्मकथा कहते हुए बताया गया कि काश्यप बुद्ध के समय किसी विहार में गुरु-शिष्य के रूप में रहने वाले दो भिक्षु परस्पर विवाद कर यह दृढ़ सङ्कल्प कर बैठे कि आगामी जन्म में हम अर्हत् बनें।

मिलिन्द—उनमें से शिष्य जम्बुद्वीप के सागल नगर में मिलिन्द नाम से राजा बना था जो कि प्रतापी सम्राट् होते हुए श्रुति, स्मृति, सांख्य-योग, राजनीति, न्यायशास्त्र, गणित, सङ्गीत, आयुर्वेद, पुराण, इतिहास, धनुर्वेद आदि शास्त्रों का भी योग्य पण्डित था। इसकी दूसरी मतों के विद्वानों से खोज-खोज कर शास्त्रार्थ करने की प्रवृत्ति थी। कहने का तात्पर्य है कि यह बल एवं विद्या में अपने समान किसी को नहीं समझता था। दूतों के बताने पर इसने उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् एवं धर्मपीठाधीश पूरण एवं मक्खलि गोसाल आदि से उनके धर्म, दर्शन के विषय में विस्तार से चर्चा की, परन्तु उनसे यह सन्तुष्ट नहीं हुआ। अन्त में इसे अपनी विद्या का इतना दम्भ हो गया कि यह विद्वान् लोगों को त्रस्त करने लगा और वे उद्विग्न होकर इसका राज्य छोड़ कर अन्यत्र चले गये।

नागसेन का अवतार—ऐसे समय में बौद्धभिक्षुओं में भी हलचल मचना स्वाभाविक था। आयुष्मान् अश्वगुप्त के नेतृत्व में बौद्धों की सभा हुई। उसमें निश्चय किया गया कि मिलिन्द से शास्त्रार्थ करने के लिये तावतिंसलोकवासी महासेन देवपुत्र से निवेदन किया जाय। अश्वगुप्त ने जाकर इन्द्र को साथ ले महासेन देवपुत्र को इसके लिए सहमत किया।

महासेन हिमालय की तलहटी में बसे कजङ्गल नाम ग्राम में सोणुत्तर ब्राह्मण के घर 'नागसेन' नाम से अवतरित हुए। धीरे धीरे वे सात वर्ष के हो गये। पिता सोणुत्तर ने नागसेन को पहले ब्राह्मणों से वेद, शास्त्र पढ़ाये; बाद में उसे भिक्षु रोहण से पढ़ने के लिये भेजा। भिक्षु रोहण ने नागसेन को दीक्षित कर सम्पूर्ण त्रिपिटक पढ़ाया। वहीं नागसेन ने समग्र बौद्ध दर्शन भी हृदयङ्गम किया। भिक्षुओं द्वारा ली गयी परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ। इससे नागसेन को कुछ दर्प हो गया कि मैं अपने आचार्य (रोहण) से अधिक विद्वान् हूँ। आचार्य रोहण ने उसके मन की बात जान ली, उन्होंने नागसेन को धिक्कारा और दण्डस्वरूप उसे आयुष्मान् अश्वगुप्त के पास भेजा। नागसेन

अश्वगुप्त के विहार में रहकर विनयपूर्वक धर्मोपदेश करने लगे। अन्त में नागसेन के व्यवहार से अश्वगुप्त प्रसन्न हो गये।

नागसेन का पाटलिपुत्रगमन—आयुष्मान् अश्वगुप्त ने नागसेन को बौद्ध दर्शन के गम्भीर अध्ययन के लिये धर्मरक्षित के पास पाटलिपुत्र के अशोकाराम में भेजा। मार्ग में उनको पाटलिपुत्र जाने वाले एक व्यापारी का साथ मिल गया। व्यापारी को नागसेन ने अभिधर्म का उपदेश किया। व्यापारी के ज्ञान-चक्षु खुल गये। इधर नागसेन भी अशोकाराम में पहुँच कर आयुष्मान् धर्मरक्षित के उपदेश से अर्हत्त्व प्राप्त कर गये।

नागसेन को हिमालयवासी भिक्षुओं का सन्देश—इसके बाद हिमालयवासी भिक्षुओं ने नागसेन को सन्देश भेजा कि धर्म के हित में आप से यहाँ बहुत आवश्यक परामर्श करना है, आप तत्काल आइये। नागसेन तत्काल हिमालय की भिक्षु-सभा में पहुँचे। उस सभा ने नागसेन को आदेश दिया कि वे इसी क्षण सागल नगर जाकर मिलिन्द का दर्प विखण्डित करें और उसको बौद्ध धर्म में विनीत करें।

मिलिन्द की बौद्ध धर्म के ज्ञान के प्रति उत्कण्ठा—उधर मिलिन्द ने सागल नगर के सङ्खेय्य परिवेण के महास्थविर आयुपाल से बौद्ध धर्म व दर्शन के प्रति उत्कण्ठा प्रकट की। आयुपाल स्थविर मिलिन्द की जिज्ञासा शान्त नहीं कर सके। तब मिलिन्द के दूतों ने उसको विद्वान् आयुष्मान् नागसेन की हिमालय में उपस्थिति की सूचना दी। कुछ समय बाद आयुष्मान् नागसेन स्वयं सङ्खेय्य परिवेण में पधारे।

मिलिन्द की नागसेन से पहली भेंट—ज्यों ही राजा मिलिन्द को नागसेन के आने का पता लगा, वह स्वयं उनके दर्शन करने के लिये सङ्खेय्य परिवेण में आया। नागसेन उस समय भिक्षु-परिषद् में धर्मोपदेश कर रहे थे। मिलिन्द उस सभा से बहुत प्रभावित हुआ। उसने नागसेन से बौद्धदर्शन पर संवाद करने की इच्छा प्रकट की। नागसेन ने कहा—संवाद हो सकता है, पर वह पण्डितवाद की पद्धति से होगा, न कि राजवाद के ढंग से। राजा ने स्वीकार किया। और उसने यथासमय नीचे आसन पर बैठ कर संवाद प्रारम्भ किया।

२. मिलिन्दपञ्ह

(क) लक्खणपञ्ह

ग्रन्थ में यह प्रकरण सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें बौद्ध धर्म के दो आधारभूत सिद्धान्तों अनात्मवाद और पुनर्जन्म का स्थविरवाद की दृष्टि से शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत विश्लेषण किया गया है।

अनात्मवाद—बात कुछ ऐसी बनी कि परस्पर कुशल-प्रश्न पूछने और परिचय प्राप्त करने में ही मिलिन्द और नागेसन में दार्शनिक संवाद प्रारम्भ हो गया। मिलिन्द नागसेन के सम्मुख बैठ गये, उन्होंने पूछा—"भन्ते, आपका नाम क्या है ?" नागसेन ने उत्तर दिया "मुझे लोक में नागसेन नाम से बुलाया जाता है। पन्तु यह नाम केवल व्यवहार के लिये हैं, तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता।" मिलिन्द—"भन्ते, यदि यथार्थ में नागसेन कोई व्यक्ति नहीं है तो इन ऐन्द्रियिक विषयों का उपभोग, पाप-पुण्य का कर्त्ता यहाँ कौन है ? ध्यान कौन लगाता है ? आर्यमार्ग के फल निर्वाण का प्रत्यक्ष कौन करता है ? तब तो आप का कोई गुरु भी नहीं, न आप उपसम्पन्न हैं ? आप कहते हैं— 'मुझे नागसेन नाम से बुलाया जाता है' अन्ततः यह 'नागसेन' है

क्या? क्या केश, नख, दाँत, त्वचा, मांस आदि से युक्त शरीर 'नागसेन' है, या फिर रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान 'नागसेन' है? या इनसे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु?'' नागसेन ने सब का उत्तर एक 'ना' में दिया। वितण्डावादी मिलिन्द इस संक्षिप्त उत्तर से चकरा गया। उसे त्रस्त देखकर भदन्त नागसेन ने रथ की उपमा देकर अपने उत्तर का स्पष्टीकरण किया।

उन्होंने कहा—''राजन्! आप यहाँ जिस रथ से आये हैं उस रथ के बांस, धुरा, पहिये, जूआ और चाबुक आदि रथ नहीं होते, अपितु इन भिन्न-भिन्न अवयवों पर 'रथ' का अस्तित्व निर्भर है। 'रथ' एक शब्द है जो केवल व्यवहार के लिये है। उसी तरह व्यक्ति 'नागसेन' का अस्तित्व भी रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान, संस्कार इन पांच स्कन्धों पर आधृत है। 'नागसेन' शब्द केवल व्यवहारमात्र है। परमार्थतः 'नागसेन' नामक कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता।'' साथ ही इस सिद्धान्त पर त्रिपिटक का निम्नलिखित प्रमाण दिया—

''यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो 'रथो' इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति 'सत्तो' ति सम्मुती'' ति॥ (संयुत्त ५/१०/६)

पुनर्जन्म—'उपर्युक्त अनात्मवाद का सिद्धान्त मानते हुए भी बौद्ध फिर पुनर्जन्म को कैसे सिद्ध कर पायेंगे?'—यह आशंका मिलिन्द के तर्कवादी मस्तिष्क में उठी। उसने अपना यह सन्देह भदन्त के सम्मुख रखा। उसने पूछा—''भन्ते, कौन उत्पन्न होता है? क्या उत्पन्न होने पर व्यक्ति वही रहता है या अन्य हो जाता है?'' भदन्त ने कहा —''न तो वही, न अन्य ही।'' इस उत्तर से मिलिन्द की बुद्धि में कुछ नहीं पड़ा। वह भदन्त का मुँह देखता रह गया। तब भदन्त ने उदाहरण देते हुए समझाया कि पहले पुरुष बच्चा था, फिर तरुण हुआ, फिर युवा, फिर वृद्ध हुआ, क्या वह बच्चा, तरुण, युवा और वृद्ध एक ही हैं? नहीं, एक नहीं पृथक् पृथक् हैं। हाँ (यह मानने पर) अब यह प्रश्न उठ सकता है कि तब तो न किसी को कोई पिता होगा, न कोई किसी की माता, न कोई आचार्य, न शिष्य, ऐसी स्थिति में लौकिक व्यवहार ही विखण्डित हो जायगा; क्योंकि तब यह लगेगा कि एक ही पुरुष के बचपन की माता दूसरी, युवावस्था की माता दूसरी। पढ़ने वाला विद्यार्थी दूसरा होगा, पढ़-लिख कर निकलने वाला दूसरा। पाप कोई करेगा, उसका फल भोगने वाला कोई अन्य होगा! यह एक ऐसी अनवस्था होगी, जिसका कोई उत्तर नहीं होगा। भदन्त ने इस गुत्थी को यों सुलझाया—''धर्म-सन्तति के निरन्तर प्रवाह से, उनके संघात रूप में आ जाने से एक उत्पन्न होता है, दूसरा निरुद्ध होता है। और यह सब ऐसे होता है जैसे सब कुछ युगपत् हो रहा हो। अतः न तो सर्वथा उसी की तरह, और न सर्वथा अन्य की तरह, वह जीवन की अन्तिम चेतनावस्था में पहुँच जाता है। मिलिन्द इस उत्तर से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने फिर पूछा—''परन्तु भन्ते, वह है क्या, जो जन्म ग्रहण (सन्ततिप्रवाह) करता है?'' भदन्त का उत्तर था —''नाम (सूक्ष्म चित्त चैतसिक धर्म) एवं रूप (पञ्च महाभूत) जन्म ग्रहण करता है।'' मिलिन्द—''क्या यही नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है?'' भदन्त—''महाराज! यही नाम रूप जन्म नहीं ग्रहण करता, अपितु इस नाम-रूप के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न अन्य नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है।'' बात को और स्पष्ट करते हुए भदन्त ने कहा—''यद्यपि मृत्यु के समय जिसका अन्त होता है, वह एक अन्य नाम-रूप होता है और जो पुनर्जन्म ग्रहण करता है वह अन्य है; तो भी यह द्वितीय नाम- रूप उस प्रथम नाम-रूप से ही निकलता है। अतः राजन्! वस्तुसत्य यह है कि धर्मसन्तति ही संसरण करती है, धर्मसन्तति ही जन्म ग्रहण करती है।

इस तरह मिलिन्दपञ्ह में प्रतिपादित पुनर्जन्मवाद का यह संक्षिप्त विवरण हुआ।

इसके बाद इसी प्रकरण के विचारवर्ग में—भूत, भविष्यत् वर्तमान काल का मूल अविद्या है, (२) सृष्टि के आरम्भकाल का पता नहीं है, अर्थात् वह अनादि है, (३) 'आरम्भ' कहते हैं, भूतकाल को। अविद्यामिश्रित आरम्भ का ज्ञान हो सकता है, अविद्यारहित का नहीं, (४) संस्कार की उत्पत्ति और उससे मुक्ति, (५) भाव से भाव की उत्पत्ति, (६) हम लोगों के अन्दर कोई आत्मा नहीं है, (७) मनोविज्ञान के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, वितर्क, विचार-उत्पत्ति, (८) मनोविज्ञान के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, वितर्क, विचार आदि धर्म होते हैं—इन विषयों पर विचार किया गया है।

३. (ख) विमतिच्छेदनपञ्ह

इस प्रकरण को ग्रन्थकार ने चार वर्गों में बाँटा हैं—१. निब्बानवग्ग, २. बुद्धवग्ग, ३. सतिवग्ग एवं ४. अरूपधम्मववत्थानवग्ग। इस प्रकरण में बौद्धदर्शन से सम्बद्ध छोटे-छोटे अनेक विषयों पर हुए राजा मिलिन्द के सन्देहों (विमति) का निराकरण (छेदन) किया गया है। राजा के इन सन्देहों को वर्ग, क्रम से यों विभाजित किया जा सकता है—

१. निब्बानवग्ग—(क) क्या पञ्च आयतन (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा एव त्वक्) नाना कर्मों के फल से हुए हैं या एक कर्म के फल से?, (ख) मनुष्य के नानास्वभाव में कर्म की प्रधानता, (ग) क्या पूर्वजन्म कृत कर्म फलों को भोगने के अतिरिक्त नये कर्म भी करने चाहिये?, (घ) स्वाभाविक अग्नि एवं नरकाग्नि में क्या अन्तर है?, (ङ) पृथ्वी का आधार क्या है?, (च) क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है?, (छ) क्या सभी लोग निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं? एवं (ज) क्या अज्ञानी निर्वाण-सुख को जानते हैं?

२. बुद्धवग्ग—इस वग्ग में (क) बुद्ध हुए थे कि नहीं?, (ख) बुद्ध का अनुत्तर (श्रेष्ठ) भाव, (ग) क्या उनके अनुत्तर भाव का ज्ञान हो सकता है?, (घ) धर्मज्ञान, (ङ) यदि संक्रमण नहीं होता है तो पुनर्जन्म कैसे होगा?, (च) इस शरीर में कोई अतिरिक्त ज्ञाता (आत्मा) है?, (छ) ऐसा कोई जीव है, जो इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है?, (ज) कर्मफल है या नहीं?, (झ) जन्म लेने वाला अपने जन्म के विषय में जानता है?, (ञ) क्या निर्वाण के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है?—इन पर विचार किया है।

३. सतिवग्ग—(क) क्या भिक्षुओं को अपना शरीर प्रिय होता है?, (ख) क्या बुद्ध के कोई गुरु थे?, (ग) बुद्ध में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण थे?, (घ) बुद्ध की प्रव्रज्या हुई थी या नहीं?, (ङ) बुद्ध की उपसम्पदा हुई थी कि नहीं?, (च) अपने सम्बन्धी के वियोग में रुदन या धर्मप्रेम से रुदन में क्या अन्तर है?, (छ) रागी और विरागी में क्या भेद है?, (ज) प्रज्ञा कहाँ रहती है?, (झ) संसार क्या है?, (ञ) बीती हुई बातों को हम कैसे स्मरण करते हैं?, (ट) स्मृतियाँ मन से उत्पन्न होती हैं या बाह्य चीजों से?

४. अरूपधम्मववत्थानवग्ग—(क) स्मृत्युत्पाद के १६ प्रकार, (ख) क्या मृत्यु के समय बुद्ध के स्मरण से देवत्व लाभ हो सकता है?, (ग) क्या भिक्षु अतीत के दुःखों के प्रहाण के लिये प्रयास करते हैं?, (घ) ब्रह्मलोक यहाँ से कितना दूर है?, (ङ) मर कर दूसरी जगह उत्पन्न होने के लिये कितने समय की आवश्यकता है?, (च) बोध्यङ्ग कितने हैं?, (छ) पाप और पुण्य दोनों में कौन अधिक हैं?, (ज) ज्ञात अज्ञात पाप करने वालों में किसका पाप अधिक है?, (झ)

ऐसा कोई है जो इसी शरीर से देवलोक जा सकता हो ?, (ञ) सौ योजन लम्बी हड्डियाँ कैसे हो सकती हैं ?, (ट) श्वास-प्रश्वास का निरोध कैसे होता है ?, (ठ) 'समुद्र' नाम क्यों पड़ा ?, (ड) सम्पूर्ण समुद्र का जल लवणमय क्यों हैं ?, (ढ) क्या सूक्ष्म धर्मों का नाश भी सम्भव है ?, (ण) क्या विज्ञान, प्रज्ञा और जीवात्मा—ये तीनों शब्द अर्थ में पृथक्-पृथक् हैं या एकार्थक हैं ?

भदन्त नागसेन ने राजा के इन सब सन्देहों का बहुत ही मनोरम शैली में शान्ति एवं गम्भीरता के साथ उत्तर दिया है। यहाँ तक आकर प्रश्नकर्त्ता (मिलिन्द) और उत्तरदाता (नागसेन) दोनों ही अपने अपने प्रश्नोत्तरों से सन्तुष्ट हुए दिखायी पड़ते हैं। राजा को ऐसा लगता है कि जो कुछ मैंने पूछा, भदन्त ने उन सबका उत्तर दे दिया। और भदन्त भी ऐसा मानते हैं कि राजा ने जो कुछ पूछा उन सबका मैंने उत्तर दे दिया। इस तरह सन्तुष्ट होकर भदन्त अपने सङ्घाराम चले गये और राजा अपने साथियों के साथ पुनः अपने राजप्रासाद में लौट गया।

४. मेण्डकपञ्ह

शीर्षक का शब्दार्थ—पालि में 'मेण्डक' कहते हैं भेड़ को। जैसे भेड़ के दोनों सींग समानतया पैने (तीखे) होते हैं, इस प्रकरण में आये प्रश्न भी दोनों तरफ से तीखे, एक दूसरे के विरोधी, समानतया आपत्तिग्रस्त अतएव द्विविधात्मक (विरोधाभासात्मक) दिखायी देते हैं। भदन्त नागसेन ने बहुत कुशलता से तर्कपूर्वक स्थविरवादसम्मत इनके उत्तर दिये हैं। तात्पर्य यह है कि ऊपर से विरोधी दिखायी देने वाले त्रिपिटक के विभिन्न विवरणों एवं बुद्धवचनों के विरोध का परिहार और उनमें समन्वयस्थापन इस प्रकरण का लक्ष्य है। इसमें मिलिन्द के प्रश्नों के दो भाग हैं—(क) महावग्ग एवं (ख) योगिकथापञ्ह।

(क) महावग्ग

इस वग्ग में प्रसङ्गवश प्रारम्भ में ही धार्मिक मन्त्रणा के योग्य, अयोग्य व्यक्तियों एवं स्थानों का विवरण है। साथ ही आचार्य शिष्य के एक दूसरे प्रति कर्तव्य बताये गये हैं। इसके बाद—

(१) परिनिर्वृत्त बुद्ध की पूजा के विषय में मिलिन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए भदन्त नागसेन ने अग्नि, आँधी, ढोल, महापृथ्वी, रोग एवं नन्दक यक्ष की उपमा देते हुए बताया कि भगवान् तो मुक्त हो चुके हैं, वे अब किसी की पूजा को स्वीकार या अस्वीकार क्या करेंगे! देवता और मनुष्य भगवान् के कायरत्न की पूजा एवं उनके द्वारा बताये ज्ञानरत्न के अनुकूल आचरण करते हुए विविध सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। फिर (२) क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे ?, (३) भगवान् ने देवदत्त को उसका औद्धत्य ज्ञात रहते हुए भी, दीक्षा क्यों दी ?, (४) बड़े भूकम्प होने के कारण क्या हैं ?, (५) शिवि राजा द्वारा नेत्रदान, (६) गर्भाशय में आने के तीन प्रसिद्ध कारणों के अतिरिक्त शास्त्र में उल्लिखित अन्य कारणों (औपपातिक आदि) का समर्थन कैसे हो ?, (७) बौद्ध धर्म के अन्तर्धान के विषय में भगवान् के परस्पर विरोधी वचनों का समन्वय कैसे हो ?, (८) क्या बुद्ध निष्कलङ्क एवं निष्पाप हैं ?, (९) बुद्ध समाधि क्यों लगाते थे, जब कि वे मुक्त हो चुके थे ?, (१०) ऋद्धिबल का माहात्म्य ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों के नागसेन ने शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत उत्तर दिये हैं, जो ग्रन्थ में यथास्थान विस्तार से देखे जा सकते हैं।

(ख) योगिकथापञ्ह

इस प्रकरण को चार वर्गों में बाँटा गया है—जैसे १. अभेज्जवग्ग, २.पणामितवग्ग, ३.सब्बञ्ञुतञाणवग्ग एवं, ४.सन्थववग्ग।

पहले अभेज्जवग्ग में (क) क्षुद्रानुक्षुद्र विनय-नियम, (ख) सर्वथा त्याग देने योग्य (अव्याकृत) प्रश्न; (ग) मृत्युभय, (घ) मृत्युभय से मुक्ति, (ङ) ऋद्धिबल-सम्पन्न बुद्ध को भी समय-समय पर किस अन्तराय से भिक्षा नहीं मिली ?, (च) विना जाने पापपुण्यों की गति ?, (छ) बुद्ध का भिक्षुओं के प्रति निरपेक्ष भाव, (ज) क्या कोई बौद्ध भिक्षुओं को बहका सकता है ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

दूसरे पणामितवग्ग में (क) उपासक द्वारा भिक्षुओं का आदर करना, (ख) बुद्ध द्वारा सभी प्राणियों का हित, (ग) संयत बुद्ध ने शैल ब्राह्मण को वस्त्रगुह्य का अवलोकन क्यों कराया ? (घ) क्या बुद्ध कटुभाषी थे ?, (ङ) क्या वृक्ष चेतन हैं ?, (च) बुद्ध का अन्तिम भोजन, (छ) बुद्ध (मूर्ति) पूजा भिक्षुओं के लिये भी सम्मत है ?, (ज) देवदत्त द्वारा फेंका गया पत्थर बुद्ध के पैर पर किस कारण लगा ?, (झ) श्रेष्ठ और मध्यम श्रमण कौन है ?, (ञ) क्या बुद्ध आत्मप्रशंसा सुन-सुनकर प्रसन्न होते हैं ?, (ट) अहिंसा द्वारा लौकिक निग्रह कैसे किया जा सकता है ?, (ठ) क्या बुद्ध ने सारिपुत्त-मोग्गल्लान को क्रुद्ध होकर अपनी धर्मपरिषद से निकाल दिया था ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर भदन्त द्वारा दिया गया है।

तीसरे सब्बञ्जुतञाणवग्ग में (क) ऋद्धिबलसम्पन्न होते हुए भी मोग्गल्लान डाकुओं की लाठियों से क्यों मारे गये ?, (ख) भिक्षुजन विनय-उपदेश दूसरों से छिपाकर क्यों करते हैं ?, (ग) मिथ्याभाषण का गौरव-लाघव क्या है ?, (घ) बोधिसत्त्व की धर्मता, (ङ) क्या बुद्ध ने आत्महत्या का अनुमोदन किया था ?, (च) मैत्री-भावना का माहात्म्य, (छ) सभी जन्मों में बुद्ध से देवदत्त के उच्च कुल में उत्पन्न होने पर सन्देह होता है कि कुशल-अकुशल कर्मों का विपाक सम है या विषम ?, (ज) अमरादेवी का पातिव्रत धर्म, (झ) क्या सभी अर्हत् निर्भय होते हैं ?, (ञ) क्या सर्वज्ञ बुद्ध को देवताओं द्वारा की गयी स्तुति में आयी उपमाओं का ज्ञान नहीं था ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

चौथे सन्थववग्ग में (क) घर बनवाना, (ख) भोजन में संयम, (ग) भगवान् का नीरोग होना, (घ) अनुत्पन्न मार्ग को उत्पन्न करना, (ङ) लोमस काश्यप, (च) छद्दन्त, ज्योतिपाल (छ) घटीकार ब्रह्मा के विषय में, (ज) बुद्ध की क्या जाति है—ब्राह्मण या क्षत्रिय (राजा) ?, (झ) धर्मोपदेश के बाद भोजन न करना, (ञ) धर्मदेशना में बुद्ध का अनौत्सुक्य एवं (ट) बुद्ध का कोई आचार्य नहीं था—मिलिन्द के इन प्रश्नों पर भदन्त नागसेन ने गम्भीरता से विचार किया है।

५. अनुमानपञ्ह

इस पाँचवें प्रकरण को भदन्त नागसेन ने चार वर्गों में विभक्त किया है। इन वर्गों के नाम हैं—१. बुद्धवग्ग, २. निप्पपञ्चवग्ग, ३. वेस्सन्तरवग्ग, एवं ४. अनुमानवग्ग। इन सभी वर्गों में भदन्त ने मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर अनुमान (अकाट्य तर्क) के बल पर दिये है, अतः इस प्रकरण का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

१. बुद्धवग्ग—इस वर्ग में मिलिन्द ने (क) दो बुद्धों का एक ही समय में अवतार, (ख) महाप्रजापती गोतमी द्वारा दिये गये वस्त्र को स्वयं न लेकर बुद्ध द्वारा सङ्घ को देने के विषय में अनुज्ञा, (ग) प्रव्रजित की गृहस्थ से विशेषता, (घ) स्वयं बुद्ध द्वारा क्लिष्ट तप से लक्ष्य-प्राप्ति में असफल होने पर भी भिक्षुओं को पुनः क्लिष्टचर्या का उपदेश, (ङ) बुद्धशासन में इतने गुण रहने पर भी अविवेकी भिक्षु द्वारा पुनः गृहस्थ-धर्म स्वीकार करना, (च) अर्हत् को शारीरिक मानसिक

वेदनाओं का अनुभव, (छ) पाराजिक आदि आपत्तियाँ गृहस्थ को भी होती है या नहीं?, (ज) गृहस्थ और परिव्राजक के पापों में अन्तर, (झ) जल में प्राण हैं या नहीं?—ये नौ प्रश्न किये हैं। इन नौ प्रश्नों का उत्तर भदन्त नागसेन ने बहुत ही कुशल तर्कों से दिया है।

२. निप्पपञ्चवग्ग—इस वर्ग में मिलिन्द ने (क) प्रपञ्च से छुटकारा पाने का उपाय, (ख) गृहस्थ की अर्हत्त्वप्राप्ति के बाद की दशा, (ग) अर्हत् के दोष, (घ) लोक में किन तीन चीजों का अभाव है? (ङ) निर्गुण निर्वाण, (च) कर्मज क्या क्या हैं? (छ) यक्षों में प्रेत होते हैं कि नहीं? (ज) समग्र शिक्षापद भगवान् ने एक ही साथ क्यों नहीं कहे? (झ) सूर्य की गर्मी घटती-बढ़ती क्यों है? (ञ) हेमन्त ऋतु में सूर्य ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा क्यों अधिक प्रकाश देता है?—ये प्रश्न किये हैं। भदन्त नागसेन ने इन सभी प्रश्नों का साङ्गोपाङ्ग उत्तर देकर राजा को सन्तुष्ट किया।

३. वेस्सन्तरवग्ग—इस वर्ग में भदन्त नागसेन राजा मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया है—(क) वेस्सन्तर राजा के दान में क्या विशेषता थी? (ख) अन्य बोधिसत्त्वों से गौतम की दुःखचर्या में क्या भेद था? (ग) पाप और पुण्य में कौन बलवान् है? (घ) मरे हुए लोगों को उनके निमित्त किये दान से उनको कोई लाभ होता है? (ङ) स्वप्न क्यों आते हैं, और उन्हें कौन देखता है? (च) कालमृत्यु और अकालमृत्यु क्या है? (छ) किन चैत्यों में अलौकिकता होती है? (ज) ज्ञान किसे होता है, किसे नहीं? (झ) क्या निर्वाण एकान्तसुख ही है या दुःखमिश्रित भी? (ञ) निर्वाण का रूप व संस्थान है? (ट) नीरूप निर्वाण का साक्षात्कार कैसे होता है? (ठ) निर्वाण की पहचान क्या है?

४. अनुमानवग्ग—इस वर्ग में केवल दो प्रश्नों का उत्तर है। पहला प्रश्न मिलिन्द का यह है कि जब आपने बुद्ध को देखा नहीं तो कैसे आपकी बात मान ली जाय कि वे कभी अवतरित हुए थे और उन्होंने अनुपम धर्मोपदेश किया था? भदन्त नागसेन ने मिलिन्द के पूर्वजों का सटीक उदाहरण देकर बुद्ध का अस्तित्व सिद्ध किया और साथ ही उनके द्वारा बसाये गये धर्मनगर का बहुत ही अच्छा काव्यमय वर्णन किया है।

राजा ने दूसरा प्रश्न किया कि यदि गृहस्थ रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तो दुष्कर धुताङ्गव्रत पालन करने से क्या लाभ है? भदन्त नागसेन ने उत्तर दिया कि यद्यपि गृहस्थ भी ज्ञानी हो सकते हैं, तथापि उक्त व्रतों के पालन के २८ गुण हैं, जो इन व्रतपालक तपस्वियों को ज्ञानी गृहस्थ से पृथक् श्रेणी में बैठा देते हैं। फिर इन धुताङ्गव्रतपालकों में १७ विशिष्ट गुण आ जाते हैं। इन कठोर व्रतों का पालन सामान्य जन के वश की बात नहीं, अपितु श्रद्धालु, दृढ़संकल्प वाले, पापकर्म से डरनेवाले आदि दस प्रकार के आध्यात्मिक वीरता वाले व्यक्ति ही इन व्रतों के पालन के अभ्यासी हो सकते हैं। जो व्यक्ति गृहस्थ रहते हुए इस जन्म में निर्वाण पा लेते हैं, उन्होंने भी पूर्वजन्मों में कभी न कभी धुताङ्गव्रतों का पालन अवश्य किया होगा। भदन्त नागसेन ने स्थविर सारिपुत्र का उदाहरण देते हुए निष्कर्ष निकाला है कि सारिपुत्र उक्त व्रतों का कठोरता से पालन करने के कारण ही बुद्ध के 'प्रथम शिष्य' पद पर पहुँचे थे। प्रसङ्गतः नागसेन ने तेरह धुताङ्ग व्रतों के नाम भी गिनाये हैं, जिन्हें ग्रन्थ में देखा जा सकता है। (इन व्रतों के विशेष ज्ञान के लिये *विसुद्धिमग्गो* के द्वितीय परिच्छेद का भी अनुशीलन करना चाहिये।)

६. ओपम्मकथापञ्ह

इस प्रकरण में उपमाओं के बल पर यह सिद्ध किया गया है कि जिज्ञासु को अर्हत्त्व-प्राप्ति

के लिये नाना गुणों का अधिग्रहण किस प्रकार करना चाहिये। भदन्त नागसेन कहते हैं कि इन नाना गुणों को प्राप्त करने में जिज्ञासु को किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करना चाहिये। जिज्ञासु को लोकचारिका करते हुए जहाँ से भी ये गुण मिलें उन्हें लेना चाहिये, यहाँ तक कि जिन पशु-पक्षियों को समाज हीनतम मानता है, जैसे गधा, कछुआ, मुर्गा, कौआ आदि। क्योंकि इन पशु-पक्षियों में भी अच्छाइयाँ हैं, सद्‌गुण हैं अतः उनसे वे अच्छाइयाँ ग्रहण करना, उन अच्छाइयों में उन पशु-पक्षियों का अनुकरण करना जिज्ञासु के लिये पारमिताओं के अभ्यास में नितान्त सहायक होता है।

पशु-पक्षियों तक से अच्छाई (गुण) ग्रहण करना, उन बातों में उन्हें अपना गुरुतुल्य मानना—यह श्रमणपरम्परा (सन्त-परम्परा) की अपनी विशेषता रही है। सन्त-परम्परा में शीलपारमिता की साधना के लिये इसे अत्यावश्यक माना गया है।

राजस्थान के प्रसिद्ध सन्त, महात्मा श्री दादूदयाल ने भी कहा है—

'दादू' सबही गुरु किये, पसु पंखी बनराइ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सबही माँहि खुदाइ॥

कितने सुखद आश्चर्य की बात है कि २५०० वर्ष के सुदीर्घ काल के अन्तराल के बाद भी सन्तों का इस गुणग्राहकता में समान आग्रह है। यही श्रमण-परम्परा का वैशिष्ट्य है।

इस तरह मिलिन्दपञ्ह की विषय-वस्तु को समझाने के लिये हमने प्रत्येक प्रकरण का संक्षेप में यह परिचय दिया है। इन सभी विषयों का विस्तृत ज्ञान तो ग्रन्थ के गम्भीरतया अवगाहन से ही होगा। फिर भी, इस संक्षिप्त परिचय से जिज्ञासु को ग्रन्थ की विषयभूमि का साधारण ज्ञान तो हो ही जायगा।

गन्थागतवत्थुसूची

मिलिन्द-नागसेनानं, पुच्छा विसज्जना तथा।
तासं सूचीध निद्दिट्ठा, यथा गन्थम्हि आगता॥

मिलिन्दपञ्हपालि

(हिन्दीरूपान्तरसहित)

❁ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ❁

मिलिन्दपञ्हपालि

गन्थकथावत्थु

१. मिलिन्दो नाम सो राजा, सागलायं पुरुत्तमे।
उपगञ्छि नागसेनं, गङ्गा व यथ सागरं ॥ १ ॥
आसज्ज राजा चित्रकथिं, उक्काधारं तमोनुदं।
अपुच्छि निपुणे पञ्हे, ठानाठानगते पुथू॥ २ ॥
पुच्छाविसज्जना चेव, गम्भीरत्थूपनिस्सिता।
हदयङ्गमा कण्णसुखा, अब्भुता लोमहंसना॥ ३ ॥
अभिधम्मविनयोगाळ्हा, सुत्तजालसमत्थिता।
नागसेनकथा चित्रा, ओपम्मेहि नयेहि च॥ ४ ॥
तत्थ ञाणं पणिधाय, हासयित्वान मानसं।
सुणाथ निपुणे पञ्हे, कङ्खाठानविदालने ति॥ ५ ॥

२. तं यथानुसूयते—अत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलं नाम नगरं नदीपब्बत-सोभितं रमणीयभूमिप्पदेसभागं आरामुय्यानोपवनतडागपोक्खरणीसम्पन्नं नदीपब्बतवन-रामणेय्यकं सुतवन्तनिम्मितं निहतपच्चत्थिकपच्चामित्तं अनुपपीळितं विविधविचित्रदळ्ह-

---

❁ उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है ❁

मिलिन्दप्रश्न

ग्रन्थावतरण

१. गङ्गा नदी जैसे समुद्र से जा मिलती है, उसी तरह सागल नामक उत्तम नगर में राजा मिलिन्द (यूनानी सम्राट्) स्थविर नागसेन के पास गया।। १।।

(अज्ञानरूपी) अन्धकार के नाशक, (ज्ञानरूपी) प्रकाश को धारण करनेवाले तथा विचित्र वक्ता (स्थविर नागसेन) के पास जाकर, राजा ने अनेक विषयों के सम्बन्ध में गूढ़ प्रश्न पूछे।। २।।

भदन्त नागसेन द्वारा उन प्रश्नों के दिये गये उत्तर गम्भीर अर्थों से युक्त, हृदयग्राह्य, कर्णप्रिय, अद्भुत, अत्यन्त रोमहर्षक, अभिधर्म और विनय के गाम्भीर्य से युक्त, सूत्रों के अनुकूल तथा उपमाओं और युक्तियों से चित्रित हैं।। ३–४।।

शङ्कानाशक–सन्देहनिवारक उन सूक्ष्म प्रश्नोत्तरों को मन लगाकर, प्रसन्नचित्त होकर आप लोग सुनें ।। ५।।

सागल नगर– २. ऐसा सुना जाता है–सागल (वर्तमान स्यालकोट) नामक नगर कभी यवनों के वाणिज्य–व्यवसाय का केन्द्र था। वह नगर नदी और पर्वतों से शोभित, रमणीय भूमिभाग पर बसा, आराम–उद्यान–उपवन–तड़ाग–पुष्करिणियों से सम्पन्न एवं नदी, पर्वत और वनों से अत्यन्त रमणीय था। उस नगर का कुशल कारीगरों ने निर्माण किया था। उसके सभी विरोधी शत्रुओं का दमन हो चुका

मट्टालकोट्ठकं वरगोपुरतोरणं गम्भीरपरिखापण्डरपाकारपरिक्खित्तन्तेपुरं सुविभत्तवीथिचच्चर-चतुक्कसिङ्घाटकं सुप्पसारितानेकविधवरभण्डपरिपूरितन्तरापणं विविधदानग्गसतसमुपसोभितं हिमगिरिसिखरसङ्कासवरभवनसतसहस्सप्पटिमण्डितं गजहयरथपत्तिसमाकुलं अभिरूपनरनारी-गणानुचरितं आकिण्णजनमनुस्सं पुथुखत्तियब्राह्मणवेस्ससुद्दं विविधसमणब्राह्मणसभाजनसङ्घट्टितं बहुविधविज्जावन्तनरवीरनिसेवितं कासिककोटुम्बरकादिनानाविधवत्थापणसम्पन्नं सुप्पसारित-रुचिरबहुविधपुप्फगन्धापणं गन्धगन्धितं आसिंसनियबहुरतनपरिपूरितं दिसामुखसुप्पसारितापणं सिङ्गारवाणिजगणानुचरितं कहापणरजतसुवण्णकंसपत्थरपरिपूरं पज्जोतमाननिधिनिकेतं पहूत-धनधञ्ञवित्तूपकरणं परिपुण्णकोसकोट्ठागारं बह्वन्नपानं बहुविधखज्जभोज्जलेय्यपेय्यसायनीयं उत्तरकुरुसङ्कासं सम्पन्नसस्सं आळकमन्दा विय देवपुरं।

एत्थ ठत्वा तेसं पुब्बकम्मं कथेतब्बं। कथेन्तेन च छद्धा विभजित्वा कथेतब्बं। सेय्यथीदं—१. पुब्बयोगो, २. मिलिन्दपञ्हं, ३. लक्खणपञ्हं, ४. मेण्डकपञ्हं, ५. अनुमानपञ्हं, ६. ओपम्मकथापञ्हं ति।

तत्थ मिलिन्दपञ्हो (क) लक्खणपञ्हो (ख) विमतिच्छेदनपञ्हो ति दुविधो। मेण्डकपञ्हो पि (क) महावग्गो (ख) योगिकथापञ्हो ति दुविधो।

❀

था। प्रजा को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं थी। उसमें अनेक प्रकार की विचित्र दृढ़ अट्टालिकाएँ (पक्के मकान) और कोठियाँ थी। नगर का सिंहद्वार विशाल और सुन्दर था। भीतरी गढ़ (=अन्तःपुर) गहरी खाई और पीले प्राकार से घिरा हुआ था। सड़कों, आँगन और चौराहों से वह अच्छी तरह बँटा था। वहाँ दुकानें अच्छी तरह सजी–सजाई एवं बहुमूल्य सामानों से भरी हुई थीं। स्थान–स्थान पर नाना प्रकार की सैकड़ों सुन्दर दान–शालायें बनी थीं। वहाँ हिमालय पर्वत की चोटियों की तरह सैकड़ों, हजारों ऊँचे–ऊँचे भवन थे। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलने वाले लोगों से वहाँ निरन्तर चहल–पहल रहती थी। सुन्दर–सुन्दर स्त्री–पुरुष समूह रूप में घूमते दिखायी देते थे। वह नगर सभी प्रकार के मनुष्यों से आकीर्ण था। वहाँ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, श्रमण, ब्राह्मण–संन्यासी तथा गणाचार्य सभी रहते थे। वह प्रतिभाशाली विद्वानों का केन्द्र था। वहाँ काशी, कोयम्बटूर आदि स्थानों में बने कपड़ों की बड़ी–बड़ी दुकानें थी। साथ ही अनेक प्रकार के फूल तथा सुगन्धित द्रव्यों की भी दुकानें थीं। मंडियों में अभिलषित रत्न भरे पड़े थे। सभी ओर शृङ्गार–वाणिज्य की दुकानें खुली रहती थीं। कार्षापण, चाँदी, सोना, काँसा और अमूल्य पत्थरों आदि से परिपूर्ण वह नगर मानों बहुमूल्य रत्नों का एक चमकता कोषागार था। भण्डार और कोष सभी प्रकार के धन, धान्य और उपकरणों से पूर्ण थे। वहाँ अनेक प्रकार के खाद्य, भोज्य और पेय उपलब्ध थे। वह नगर उत्तरकुरु के समान उपजाऊ तथा आळकमन्दा देवपुरी के समान शोभा–सम्पन्न था।

इस ग्रन्थ के छह भाग

उस नगर के शोभावर्णन की बात यहीं छोड़कर, उन दोनों (मिलिन्द और स्थविर नागसेन) के पूर्वजन्म की बातें कही जायँ। इस ग्रन्थ को छह भागों में बाँट कर कहना चाहिये। जैसे—१. पूर्वयोग, २. मिलिन्दप्रश्न, ३. लक्षणप्रश्न, ४. मेण्डकप्रश्न, ५. अनुमानप्रश्न तथा ६. उपमाकथाप्रश्न।

इनमें मिलिन्दप्रश्न के दो भाग हैं— (क) लक्षणप्रश्न और (ख) विमतिच्छेदनप्रश्न। इसी तरह मेण्डकप्रश्न के भी दो भाग हैं—(क) महावर्ग और (ख) योगिकथा।

❀

१. पुब्बयोगो

(बाहिरकथा)

१. नागसेनस्स मिलिन्दस्स च पुब्बजातिकथा

३. 'पुब्बयोगो' ति तेसं पुब्बकम्मं।

अतीते किर कस्सपस्स भगवतो सासने वत्तमाने गङ्गाय समीपे एकस्मिं आवासे महाभिक्खुसङ्घो पटिवसति। तत्थ वत्तसीलसम्पन्ना भिक्खू पातो व उट्ठाय यट्ठिसम्मज्जनियो आदाय बुद्धगुणे आवज्जन्ता अङ्गणं सम्मज्जित्वा कचवरब्यूहं करोन्ति। अथेको भिक्खु एकं सामणेरं—"एहि, सामणेर, इमं कचवरं छड्डेही" ति आह। सो असुणन्तो विय गच्छति। सो दुतियं पि ततियं पि आमन्तियमानो असुणन्तो विय गच्छतेव। ततो सो भिक्खू—"दुब्बचो वतायं सामणेरो" ति कुद्धो सम्मज्जनिदण्डेन पहारं अदासि। ततो सो रोदन्तो भयेन कचवरं छड्डेन्तो—"इमिनाहं कचवरछड्डनपुञ्ञकम्मेन यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्त-निब्बत्तट्ठाने मज्झन्हिकसुरियो विय महेसक्खो महातेजो भवेय्यं" ति पठमपत्थनं पट्ठपेसि। कचवरं छड्डेत्वा नहानत्थाय गङ्गातित्थं गतो गङ्गाय ऊमिवेगं गग्गरायमानं दिस्वा-"यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं ऊमिवेगो विय ठानुप्पत्तिकपटिभानो भवेय्यं अक्खयपटिभानो" ति दुतियं पि पत्थनं पट्ठपेसि।

सो पि भिक्खू सम्मज्जनिसालाय सम्मज्जनिं ठपेत्वा नहानत्थाय गङ्गातित्थं गच्छन्तो सामणेरस्स पत्थनं सुत्वा—"एस मया पयोजितो पि ताव एवं पत्थेति, मय्हं किं न

---

१. पूर्वयोग

(बाह्यकथा)

१. नागसेन और मिलिन्द का पूर्वजन्म —३. 'पूर्वयोग' का अर्थ है, उनके पूर्वजन्म में किये गये कर्म।

अतीतकाल में भगवान् काश्यप (तीसरे बुद्ध) के शासन के समय, गङ्गा नदी के समीप एक आश्रम में बड़ा भिक्षुसङ्घ रहता था। उसमें व्रती और शीलसम्पन्न कुछ भिक्षु प्रातःकाल ही उठकर, झाड़ू लेकर, बुद्ध के गुणों का स्मरण करते-करते, आँगन को बुहारते हुए कूड़ा इकट्ठा करते थे।

एक दिन एक भिक्षु ने किसी श्रामणेर से कहा—"यहाँ आओ, इस कूड़े को फेंक दो।" वह श्रामणेर सुनकर भी अनसुनी करने लगा। दूसरी और तीसरी बार बुलाये जाने पर भी वह अनसुनी कर गया। इस पर उस भिक्षु ने—"यह श्रामणेर बड़ा अविनीत है"— यह विचार कर क्रुद्ध हो, उसे झाड़ू के डण्डे से मारा। तब श्रामणेर ने रोते-डरते कूड़ा फेंकते हुए—"इस कूड़ा फेंकने के पुण्यकर्म से जब तक मैं निर्वाण प्राप्त करूँ, इस बीच जहाँ जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी होऊँ"— ऐसा प्रथम सङ्कल्प किया। कूड़ा फेंक कर, वह नहाने के लिये नदी के घाट पर गया। गङ्गा की गरजती तरङ्गों को देख कर उसने फिर दूसरा सङ्कल्प किया-" ....पूर्ववत् .... जहाँ जन्म ग्रहण करूँ वहाँ इन तरङ्गों के वेग के समान प्रत्युत्पन्न-मति और प्रतिभाशाली होऊँ।"

उधर उस भिक्षु ने भी झाड़ू रखने के स्थान पर झाड़ू रखकर, स्नान के लिये गङ्गा घाट की ओर जाते हुए श्रामणेर का वह सङ्कल्प सुना। सुनकर विचारा-"यह (श्रामणेर) मुझ से प्रेरित होने पर

समिज्झिस्सती'' ति चिन्तेत्वा, ''यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं गङ्गाऊमिवेगो विय अक्खयपटिभानो भवेय्यं, इमिना पुच्छितपुच्छितं सब्बं पञ्हपटिभानं विजटेतुं निब्बेठेतुं समत्थो भवेय्यं'' ति पत्थनं पट्ठपेसि।

ते उभो पि देवेसु च मनुस्सेसु च संसरन्ता एकं बुद्धन्तरं खेपेसुं। अथ अम्हाकं भगवता पि ''यथा मोग्गलिपुत्ततिस्सत्थेरो दिस्सति, एवमेते पि दिस्सन्ति, मम परिनिब्बानतो पञ्चवस्ससते अतिक्कन्ते एते उप्पज्जिस्सन्ति। यं मया सुखुमं कत्वा देसितं धम्मविनयं, तं एते पञ्हपुच्छनओपम्मयुत्तिवसेन निज्जटं निग्गुम्बं कत्वा विभजिस्सन्ती'' ति निद्दिट्ठा।

४. तेसु सामणेरो जम्बुदीपे सागलनगरे मिलिन्दो नाम राजा अहोसि पण्डितो व्यत्तो मेधावी पटिबलो; अतीतानागतपच्चुप्पन्नानं मन्तयोगविधानकिरियानं करणकाले निसम्मकारी होति; बहूनि चस्स सत्थानि उग्गहितानि होन्ति; सेय्यथीदं—सुति, सम्मुति, संख्या, योगो, नीति, विसेसिका, गणिका, गन्धब्बा, तिकिच्छा, चतुब्बेदा, पुराणा, इतिहासा, जोतिसा, माया, केतु, मन्तना, युद्धा, छन्दसा, बुद्धवचनेन एकूनवीसति; वितण्डवादी दुरासदो दुप्पसहो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति। सकलजम्बुदीपे मिलिन्देन रञ्ञा समो कोचि नाहोसि यदिदं थामेन जवेन सूरेन पञ्ञाय, अड्ढो महद्धनो महाभोगो अनन्तबलवाहनो।

५. अथेकदिवसं मिलिन्दो राजा अनन्तबलवाहनं चतुरङ्गिनिं बलग्गसेनाब्यूहं दस्सनकम्यताय नगरा निक्खमित्वा बहिनगरे सेनङ्गदस्सनं कत्वा सारेत्वा सो राजा

यदि ऐसा सङ्कल्प करता है तो क्या मुझे इसका फल नहीं होगा?'' ऐसा विचार कर उसने भी सङ्कल्प किया—''जहाँ जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ गङ्गा की इन तरङ्गों के वेग के समान प्रतिभाशाली होऊँ और इसके पूछे सभी प्रश्नों की गुत्थियाँ सुलझाने में समर्थ होऊँ!''

इस तरह देवलोक तथा मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करते हुए उन दोनों ने एक बुद्धान्तर बिता दिया। तब हमारे भगवान् बुद्ध ने भी उन लोगों को देखा और मोग्गलिपुत्त तिष्य स्थविर के समान उनके विषय में भविष्यवाणी की—''मेरे महापरिनिर्वाण के पाँच सौ वर्ष बाद ये दोनों जन्म ग्रहण करेंगे और जिस धर्मविनय का मैंने सूक्ष्मरूप से उपदेश किया है उसे ये प्रश्नोत्तर, उपमा और युक्तियों के सहारे असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट करेंगे।''

४. उनमें वह श्रामणेर जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा हुआ। वह बड़ा पण्डित, चतुर, बुद्धिमान् और योग्य था। भूत, भविष्यत् और वर्तमान के सभी मन्त्र तथा योग–विधान में सावधान रहता था। उसने अनेक शास्त्र पढ़े थे, जैसे—(१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) सांख्य, (४) योग, (५) न्याय, (६) वैशेषिक, (७) गणित, (८) सङ्गीत, (९) वैद्यक, (१०) चारों वेद, (११) सभी पुराण, (१२) इतिहास, (१३) ज्योतिष, (१४) मन्त्रविद्या (माया), (१५) तर्क, (१६) तन्त्र–मन्त्र, (१७) युद्धविद्या, (१८) छन्द और (१९) बुद्धवचन। इन १९ विद्याओं में वह पारङ्गत था, वितण्डावाद में अद्वितीय और अजेय था। वह सभी तीर्थङ्करों, आचार्य एवं मण्डलेश्वरों में जिसे श्रेष्ठ समझता उसके पास जाता था। प्रज्ञा, बल, वेग, वीरता, धन, भोग किसी में भी मिलिन्द राजा के समान समग्र जम्बूद्वीप में दूसरा नहीं था। वह महासम्पत्तिशाली, उन्नतिशील था। तथा उसकी सेनाओं और वाहनों का कोई अन्त नहीं था।

५. तब एक दिन राजा मिलिन्द अपनी अनन्त चतुरङ्गिणी सेना के सैन्यकर्म देखने के लिये

भस्सप्पवादको लोकायतवितण्डजनसल्लापप्लवचित्तकोतूहलो विसारदो विजम्भको सूरियं ओलोकेत्वा अमच्चे आमन्तेसि-"बहु भणे, ताव दिवसावसेसो, किं करिस्साम इदानेव नगरं पविसित्वा! अत्थि को पि पण्डितो समणो वा ब्राह्मणो वा सङ्घी गणी गणाचरियो, अपि अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं पटिजानमानो, यो मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं? तं उपसङ्कमित्वा पञ्हं पुच्छिस्साम, कङ्खं पटिविनयिस्सामा" ति।

एवं वुत्ते पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं- "अत्थि, महाराज, छ सत्थारो— पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो, अजितो केसकम्बलो, पकुधो कच्चायनो। ते सङ्घिनो गणिनो गणाचरियका ञाता यसस्सिनो तित्थकरा, साधुसम्मता बहुजनस्स। गच्छ त्वं, महाराज, ते पञ्हं पुच्छस्सु, कङ्खं पटिविनयस्सू" ति।

२. पूरणेन कस्सपेन रञ्ञो समागमो

६. अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चहि योनकसतेहि परिवुतो भद्रवाहनं रथवरमारुय्ह येन पूरणो कस्सपो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पूरणेन कस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा पूरणं कस्सपं एतदवोच— "को, भन्ते कस्सप, लोकं पालेती" ति। "पथवी, महाराज, लोकं पालेती" ति । "यदि, भन्ते कस्सप, पथवी लोकं पालेति, अथ कस्मा अवीचिनिरयं गच्छन्ता सत्ता पथविं अतिक्कमित्वा गच्छन्ती" ति ? एवं वुत्ते पूरणो कस्सपो नेव सक्खि ओगिलितुं, नेव सक्खि उग्गिलितुं। अधोमुखो पत्तक्खन्धो तुण्हीभूतो पज्झायन्तो निसीदि।

नगर से बाहर गया। सेनाओं की व्यवस्था देखने के बाद उस वाद–प्रिय राजा ने लोकायत (जड़वादी) और वितण्डावादियों (सभा में दूसरे की कुछ भी न सुनकर अपनी ही कहने वाले) से तर्क करने की उत्सुकता से ऊपर आकाश में सूर्य की ओर देखा और अपने अमात्यों को सम्बोधित किया—"अभी बहुत समय बाकी है। नगर में लौट कर अभी क्या करेंगे? तब तक क्या करना चाहिए! क्या स्वयं को सम्यक्सम्बुद्ध मानने वाला ऐसा कोई पण्डित, श्रमण, ब्राह्मण–संन्यासी, मण्डलेश्वर या गणाचार्य है, जिसके साथ मैं जाकर वार्तालाप करूँ, जो मेरी शङ्काएँ दूर कर सके?"

ऐसा कहने पर पाँच सौ यवनों ने उससे कहा—"हाँ महाराज! ऐसे छह तीर्थङ्कर[1] हैं— १. पूरण कस्सप, २. मक्खलि गोसाल, ३. निगण्ठ नाटपुत्त, ४. सञ्जय वेलट्ठिपुत्त, ५. अजित केसकम्बली और ६. प्रकुध कच्चायन। वे सङ्घनायक, गणनायक, गणाचार्य, प्राज्ञ और तीर्थङ्कर हैं। लोगों में उनका बड़ा सम्मान है। महाराज! आप उनके पास जाँय, उनसे प्रश्न पूछे और अपनी शङ्काओं का निराकरण करें।"

२. पूरण कस्सप के साथ मिलिन्द की भेंट— ६. तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, सुन्दर रथ पर सवार हो, जहाँ पूरण कस्सप था वहाँ पहुँचा, पहुँच कर पूरण कस्सप से कुशल–प्रश्न पूछा। कुशल–प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर, वह पूरण कस्सप से यों बोला—"भन्ते कस्सप! संसार का पालन कौन करता है?" "पृथ्वी संसार का पालन करती है।" "भन्ते कस्सप! यदि पृथ्वी संसार का पालन करती है तो अवीचि नरक में जाने वाले जीव पृथ्वी का अतिक्रमण कर क्यों चले जाते हैं?" राजा के ऐसा कहने पर पूरण कस्सप इस विषय में न कुछ उगल सका, न निगल सका; मुख नीचा कर, कन्धों को गिरा कर, चुपचाप हतबुद्धि होकर बैठा रहा।

---

१. इन छह तीर्थङ्करों के विषय में विशेष ज्ञान के लिये द्रष्टव्य है— दीघनिकाय का सामञ्ञफलसुत्त (बौद्धभारतीसंस्करण)

३. मक्खलिगोसालेन मिलिन्दस्स समागमो

७. अथ खो मिलिन्दो राजा मक्खलिं गोसालं एतदवोच–"अत्थि, भन्ते गोसाल, कुसलाकुसलानि कम्मानि? अत्थि सुकतदुक्कटानं फलं विपाको" ति?

"नत्थि, महाराज, कुसलाकुसलानि कम्मानि। नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। ये ते, महाराज, इध लोके खत्तिया, ते परलोकं गन्त्वापि पुन खत्तिया व भविस्सन्ति। ये ते ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा ते परलोकं गन्त्वापि पुन ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा व भविस्सन्ति। किं कुसलाकुसलेहि कम्मेही" ति!

"यदि, भन्ते गोसाल, इध लोके खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा ते परलोकं गन्त्वा पि पुन खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा व भविस्सन्ति, नत्थि कुसलाकुसलेहि कम्मेहि करणीयं; तेन हि, भन्ते गोसाल, ये ते इध लोके हत्थच्छिन्ना ते परलोकं गन्त्वा पि पुन हत्थच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये पादच्छिन्ना ते पादच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये हत्थपादच्छिन्ना ते हत्थपादच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये कण्णच्छिन्ना ते कण्णच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये नासच्छिन्ना ते नासच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये कण्णनासच्छिन्ना ते कण्णनासच्छिन्ना व भविस्सन्ती" ति! एवं वुत्ते गोसालो तुण्ही अहोसि।

अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि–" तुच्छो बत भो जम्बुदीपो, पलापो बत भो जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा, यो मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं" ति। अथ खो मिलिन्दो राजा अमच्चे आमन्तेसि–"रमणीया बत, भो, दोसिना रत्ति। कं नु ख्वज्ज समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमेय्याम पञ्हं पुच्छितुं? को मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं" ति? एवं वुत्ते अमच्चा तुण्हीभूता रञ्ञो मुखं ओलोकयमाना अट्ठंसु।

---

३. मक्खलि गोसाल के साथ राजा मिलिन्द की भेंट– ७. इसके बाद राजा मिलिन्द ने मक्खलि गोसाल के पास जा कर पूछा–"भन्ते गोसाल! क्या पाप और पुण्य कर्म हैं? क्या अच्छे और बुरे कर्मों के फल होते हैं?"

"नहीं, महाराज! पाप और पुण्य कर्म कुछ नहीं हैं। अच्छे और बुरे कर्मों के कोई फल नहीं होते। महाराज! जो यहाँ क्षत्रिय हैं, वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होंगे; जो यहाँ ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस (वर्णसंकर) हैं, वे परलोक जाकर भी ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल और पुक्कुस ही होंगे। पाप और पुण्य कर्मों से क्या होता है?"

"यदि, भन्ते गोसाल! जो यहाँ क्षत्रिय हैं, वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होवेंगे और पाप–पुण्य कर्मों से कुछ होने–जाने का नहीं है तो जो इस लोक में लूले हैं वे परलोक जा कर भी लूले ही होंगे, जो लंगड़े हैं वे लंगड़े ही होंगे, जो कनकटे और नकटे हैं, वे कनकटे और नकटे ही होंगे?" राजा के ऐसा कहने पर गोसाल चुप हो गया।

तब राजा मिलिन्द के मन में ऐसा हुआ– "अरे, यह जम्बूद्वीप तो तुच्छ है! वृथा ही इसका इतना नाम है! यहाँ कोई भी श्रमण या ब्राह्मण ऐसा नहीं है, जो मेरे साथ बातचीत कर सके और मेरी शङ्काओं को दूर कर सके।" तब राजा मिलिन्द ने अमात्यों को सम्बोधित किया–"आज की रात बड़ी रमणीय है! ऐसे में किस श्रमण या ब्राह्मण के पास जा कर प्रश्न पूछूँ? कौन मेरे साथ बातचीत कर

तेन खो पन समयेन सागलनगरं द्वादसवस्सानि सुञ्ञं अहोसि समणब्राह्मणगहपतिपण्डितेहि। यत्थ समणब्राह्मणगहपतिपण्डिता पटिवसन्ती ति सुणाति, तत्थ गन्त्वा राजा ते पञ्हं पुच्छति। ते सब्बे पि पञ्हाविस्सज्जनेन राजानं आराधेतुं असक्कोन्ता येन वा तेन वा पक्कमन्ति। ये अञ्ञं दिसं न पक्कमन्ति ते सब्बे तुण्हीभूता अच्छन्ति। भिक्खू पन येभुय्येन हिमवन्तमेव गच्छन्ति।

४. आयस्मतो अस्सगुत्तस्स पुच्छा

८. तेन खो पन समयेन कोटिसता अरहन्तो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले पटिवसन्ति। अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो दिब्बाय सोतधातुया मिलिन्दस्स रञ्ञो वचनं सुत्वा युगन्धरमत्थके भिक्खुसङ्घं सन्निपातेत्वा भिक्खू पुच्छि—"अत्थावुसो, कोचि भिक्खू पटिबलो मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं" ति? एवं वुत्ते कोटिसता अरहन्तो तुण्ही अहेसुं। दुतियं पि ततियं पि खो पुट्ठा तुण्ही अहेसुं।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भिक्खुसङ्घं एतदवोच—"अत्थावुसो, तावतिंसभवने वेजयन्तस्स प्राचीनतो केतुमती नाम विमानं, तत्थ महासेनो नाम देवपुत्तो पटिवसति। सो पटिबलो तेन मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं" ति।

५. सो महासेनं देवपुत्तं याचेसि

९. अथ खो कोटिसता अरहन्तो युगन्धरपब्बते अन्तरहिता तावतिंसभवने पातुरहेसुं। अद्दसा खो सक्को देवानमिन्दो ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते। दिस्वान येन आयस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं

सकता है? कौन मेरी शङ्काओं को दूर करेगा?" राजा के ऐसा कहने पर सभी अमात्य चुप हो, राजा के मुख की ओर देखते हुए खड़े रहे।

उस समय सागल नगर बारह वर्षों से श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डितों से खाली सा हो गया था। जहाँ राजा सुनता कि कोई श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डित वास करता है, वहाँ जाकर उनसे प्रश्न पूछता। वे राजा मिलिन्द को प्रश्नोत्तर से सन्तुष्ट न कर सकने पर जहाँ-तहाँ भाग जाते थे। जो किसी दूसरी जगह नहीं भाग पाते, वे सब चुप लगाये रहते। प्रायः सभी भिक्षु हिमालय पर्वत पर चले गये थे।

४. आयुष्मान् अस्सगुत्त का भिक्षुसङ्घ को बुलाना— ८. उस समय हिमालय पर्वत के रक्षित-तल में शतकोटि जीवन्मुक्त (ज्ञानी) वास करते थे। तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने अपनी दैवी श्रवण-शक्ति से राजा मिलिन्द की बातें सुनी। सुन कर उसने युगन्धर नामक पर्वत पर भिक्षुसङ्घ की एक बैठक की और भिक्षुओं से पूछा—"आयुष्मानो! क्या कोई भिक्षु ऐसा समर्थ है, जो राजा मिलिन्द के साथ बातचीत कर के उसकी शङ्काओं को दूर कर सके?" ऐसा पूछे जाने पर वे चुप ही रहे। दूसरी-तीसरी बार पूछे जाने पर भी वे चुप रहे।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षुसङ्घ से कहा—"आयुष्मानो! तावतिंसभवन (लोकविशेष) में वैजयन्त से पूर्व की ओर केतुमती नाम का एक विमान (प्रासाद) है। वहाँ महासेन नामक एक देवपुत्र रहता है; वह राजा मिलिन्द के साथ बात-चीत करने तथा उसकी शङ्काओं को दूर करने में समर्थ है।"

५. महासेन देवपुत्र से मनुष्यलोक में आने की प्रार्थना— ९. तब वे शतकोटि अर्हत् युगन्धर पर्वत पर अन्तर्हित हो तावतिंस भवन में प्रकट हुए। देवाधिपति शक्र (इन्द्र) ने उन भिक्षुओं को दूर से ही आते देखा। देख कर वह आयुष्मान् अस्सगुत्त के निकट गया और कुशलसमाचार पूछ कर एक ओर खड़ा

ठितो खो सक्को देवानमिन्दो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"महा खो, भन्ते, भिक्खुसङ्घो अनुप्पत्तो! अहं सङ्घस्स आरामिको, केनत्थो? किं मया करणीयं" ति?

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—"अयं खो, महाराज, जम्बुदीपे सागलनगरे मिलिन्दो नाम राजा वितण्डवादी दुरासदो दुप्पसहो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति। सो भिक्खुसङ्घं उपसङ्कमित्वा दिट्ठिवादेन पञ्हं पुच्छित्वा भिक्खुसङ्घं विहेठेती" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"अयं खो, भन्ते, मिलिन्दो राजा इतो चुतो मनुस्सेसु उप्पन्नो। एसो खो, भन्ते, केतुमतीविमाने महासेनो नाम देवपुत्तो पटिवसति। सो तेन मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं पटिबलो सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं। तं देवपुत्तं याचिस्साम मनुस्सलोकूपपत्तिया" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो भिक्खुसङ्घं पुरक्खत्वा केतुमतीविमानं पविसित्वा महासेनं देवपुत्तं आलिङ्गित्वा एतदवोच—"याचति तं, मारिस, भिक्खुसङ्घो मनुस्सलोकूपपत्तिया" ति। "न मे, भन्ते, मनुस्सलोकेनत्थो कम्मबहुलेन। तिब्बो मनुस्सलोको! इधेवाहं, भन्ते, देवलोके उपरूपरूपपत्तिको हुत्वा परिनिब्बायिस्सामी" ति। दुतियं पि....ततियं पि खो सक्केन देवानमिन्देन याचितो महासेनो देवपुत्तो एवमाह—"न मे, भन्ते, मनुस्सलोकेनत्थो कम्मबहुलेन। तिब्बो मनुस्सलोको! इधेवाहं, भन्ते, देवलोके उपरूपरूपपत्तिको हुत्वा परिनिब्बायिस्सामी" ति।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो महासेनं देवपुत्तं एतदवोच—"इध मयं, मारिस, सदेवकं लोकं अनुविलोकयमाना अञ्ञत्र तया मिलिन्दस्स रञ्ञो वादं भिन्दित्वा सासनं पग्गहेतुं

हो गया। देवाधिपति शक्र ने आयुष्मान् अस्सगुत्त से कहा—"भन्ते! बहुत बड़ा भिक्षुसङ्घ आया है! मैं सङ्घ की सेवा करने के लिये सन्नद्ध हूँ। किस चीज की आवश्यकता है? कहिये क्या सेवा करूँ?"

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने देवाधिपति शक्र से कहा—"महाराज! जम्बूद्वीप के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा वादी, वाद करने में अद्वितीय और अपराजेय है। वह सभी तीर्थङ्करों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह भिक्षुसङ्घ के पास जा मिथ्यादृष्टिविषयक प्रश्न पूछ कर उन्हें त्रस्त करता है।"

देवाधिपति शक्र ने आयुष्मान् अस्सगुत्त से कहा—"भन्ते! राजा मिलिन्द तो यहीं से उतर कर मनुष्यलोक में उत्पन्न हुआ है। और भन्ते! केतुमती विमान में महासेन नाम का देवपुत्र वास करता है, जो उस मिलिन्द राजा के साथ शास्त्रार्थ करके उसकी शङ्काएँ दूर करने में समर्थ है। उसी देवपुत्र से हम लोग मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना करें।"

तब, देवाधिपति शक्र भिक्षुसङ्घ को आगे कर केतुमती विमान में गया। वहाँ महासेन देवपुत्र को आलिङ्गन कर, यह बोला—"मार्ष! यह भिक्षुसङ्घ आपसे मनुष्यलोक में उत्पन्न होने की प्रार्थना करता है।" "नहीं, भन्ते! मुझे मनुष्यलोक से कोई कार्य नहीं। काम-काज के झंझटों से मनुष्यजीवन में चैन नहीं है। भन्ते! मैं देवलोक में ही क्रमशः ऊपर जन्म ग्रहण करते हुए मुक्त हो जाना चाहता हूँ।" दूसरी और तीसरी बार भी....शक्र के प्रार्थना करने पर महासेन देवपुत्र ने यही कहा—"नहीं, भन्ते....।"

तब, आयुष्मान् अस्सगुत्त महासेन देवपुत्र से यों बोले—"मार्ष! देवलोकसहित इस समग्र ब्रह्माण्ड में खोजने पर भी आपको छोड़ ऐसा कोई दूसरा हमारी दृष्टि में नहीं आता जो राजा मिलिन्द

समत्थं अञ्ञं कञ्चि न पस्साम। याचति तं, मारिस, भिक्खुसङ्घो—'साधु, सप्पुरिस, मनुस्सलोके निब्बत्तित्वा दसबलस्स सासनं पग्गण्हाही' '' ति।

एवं वुत्ते महासेनो देवपुत्तो—''अहं किर मिलिन्दस्स रञ्ञो वादं भिन्दित्वा बुद्धसासनं पग्गहेतुं समत्थो भविस्सामी'' ति हट्ठपहट्ठो उदग्गुदग्गो हुत्वा—''साधु, भन्ते, मनुस्सलोके उप्पज्जिस्सामी'' ति पटिञ्ञं अदासि।

६. रोहणस्स दण्डकम्मं

१०. अथ खो ते भिक्खू देवलोके तं करणीयं तीरेत्वा देवेसु तावतिंसेसु अन्तरहिता हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले पातुरहेसुं।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भिक्खुसङ्घं एतदवोच—''अत्थावुसो, इमस्मिं भिक्खुसङ्घे कोचि भिक्खु सन्निपातं अनागतो'' ति? एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—''अत्थि, भन्ते, आयस्मा रोहणो इतो सत्तमे दिवसे हिमवन्तं पब्बतं पविसित्वा निरोधं समापन्नो''। ''तस्स सन्तिके दूतं पाहेथा'' ति। आयस्मा पि रोहणो तं खणञ्ञेव निरोधा वुट्ठाय—''सङ्घो मं पटिमानेती'' ति हिमवन्ते पब्बते अन्तरहितो रक्खिततले कोटिसतानं अरहन्तानं पुरतो पातुरहोसि।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—''किं नु खो, आवुसो रोहण, बुद्धसासने भिज्जन्ते न पस्ससि सङ्घस्स करणीयानी'' ति? ''अमनसिकारो मे, भन्ते, अहोसी'' ति। ''तेन, हावुसो रोहण, दण्डकम्मं करोही'' ति। ''किं, भन्ते, करोमी'' ति? ''अत्थावुसो रोहण, हिमवन्तपब्बतपस्से कजङ्गलं नाम ब्राह्मणगामो। तत्थ सोणुत्तरो नाम ब्राह्मणो पटिवसति। तस्स पुत्तो उप्पज्जिस्सति नागसेनो नाम दारको। तेन हि त्वं, आवुसो

के तर्कों को काट कर शासन की रक्षा करने में समर्थ हो। भिक्षुसङ्घ आप से याचना करता है कि आप मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण कर दशबल (बुद्ध) के शासन की रक्षा करें।"

यह सुन कर कि 'मैं राजा मिलिन्द के तर्क काट कर शासन की रक्षा कर सकूँगा'—महासेन ने अत्यधिक प्रहृष्ट एवं आनन्दित होकर ऐसा वचन दिया—"बहुत अच्छा, भन्ते! मैं मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करूँगा।"

६. अस्सगुत्त का रोहण को दण्डकर्म — १०. तब, वे भिक्षु देवलोक में यह कार्य कर त्रायस्त्रिंश लोक से अन्तर्धान हो, हिमालय पर्वत के 'रक्षिततल' प्रदेश में प्रकट हुए।

वहाँ आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षुसङ्घ से पूछा—"आयुष्मन्! इस सङ्घ में क्या कोई ऐसा भिक्षु है, जो हम लोगों की बैठक में अनुपस्थित था?" यह पूछे जाने पर किसी भिक्षु ने कहा—"भन्ते! आयुष्मान् रोहण ने आज से सात दिन पहले ही हिमालयपर्वत में प्रवेश कर समाधि लगा ली है।" "उनके पास दूत भेजो।" आयुष्मान् रोहण भी उसी क्षण समाधि से उठे, और यह जान कर कि 'सङ्घ मुझे बुला रहा है' वहाँ से अन्तर्हित होकर रक्षिततल में कोटिशत अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

तब, आयुष्मान् अस्सगुत्त ने आयुष्मान् रोहण से पूछा—"आयुष्मान् रोहण! बुद्धशासन के इस संकट में पड़े होने पर भी आप सङ्घ के कार्य की ओर ध्यान नहीं देते?" "भन्ते! मुझसे यह प्रमाद हुआ!" "आयुष्मान रोहण! हिमालय पर्वत के पास कजङ्गल नाम का एक ब्राह्मणों का ग्राम है। वहाँ सोणुत्तर नामक एक ब्राह्मण वास करता है। उस ब्राह्मण को नागसेन नाम का एक पुत्र उत्पन्न होगा। आप सात

रोहण, दसमासाधिकानि सत्त वस्सानि तं कुलं पिण्डाय पविसित्वा नागसेनं दारकं नीहरित्वा पब्बाजेहि। पब्बजिते व तस्मिं दण्डकम्मतो मुच्चिस्ससी'' ति। आयस्मा पि खो रोहणो ''साधू'' ति सम्पटिच्छि।

७. महासेनस्स मनुस्सलोके पातुभावो

११. महासेनो पि खो देवपुत्तो देवलोका चवित्वा सोणुत्तरब्राह्मणस्स भरियाय कुच्छिस्मिं पटिसन्धिं अग्गहेसि। सह पटिसन्धिग्गहणा तयो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुरहेसुं—आवुधभण्डानि पज्जलिंसु, अग्गसस्सं अभिनिप्फन्नं, महामेघो अभिप्पवस्सि। आयस्मा पि खो रोहणो तस्स पटिसन्धिग्गहणतो पट्ठाय दसमासाधिकानि सत्त वस्सानि तं कुलं पिण्डाय पविसन्तो एकदिवसं पि कटच्छुमत्तं भत्तं वा उळुङ्कमत्तं यागुं वा अभिवादनं वा अञ्जलिकम्मं वा सामीचिकम्मं वा नालत्थ। अथ खो अक्कोसं येव परिभासं येव पटिलभति। ''अतिच्छथ, भन्ते'' ति वचनमत्तं पि वत्ता नाम नाहोसि। दसमासाधिकानं पन सत्तन्नं वस्सानं अच्चयेन एकदिवसं—''अतिच्छथ, भन्ते'' ति वचनमत्तं अलत्थ। तं दिवसमेव ब्राह्मणो पि बहिकम्मन्ता आगच्छन्तो पटिपथे थेरं दिस्वा—''किं, भो पब्बजित, अम्हाकं गेहं अगमित्था?'' ति आह। ''आम, ब्राह्मण, अगमम्हा'' ति। ''अपि किञ्चि लभित्था'' ति? ''आम, ब्राह्मण, लभिम्हा'' ति। सो अनत्तमनो गेहं गन्त्वा पुच्छि— ''तस्स पब्बजितस्स किञ्चि अदत्था'' ति? ''न किञ्चि अदम्हा'' ति। ब्राह्मणो दुतियदिवसे घरद्वारे येव निसीदि-''अज्ज पब्बजितं मुसावादेन निग्गहेस्सामी'' ति। थेरो दुतियदिवसे ब्राह्मणस्स घरद्वारे सम्पत्तो।

ब्राह्मणो थेरं दिस्वा व एवमाह—''तुम्हे हिय्यो अम्हाकं गेहे किञ्चि अलभित्वा व 'लभिम्हा' ति अवोचुत्थ। वट्टति नु खो तुम्हाकं मुसावादो'' ति? थेरो आह—''मयं, ब्राह्मण,

---

वर्ष और दश महीने उसके घर भिक्षाटन के लिये जाँय और नागसेन बालक को लाकर प्रव्रजित करें। जब वह प्रव्रजित हो जायगा, तब आप इस दण्डकर्म से मुक्त हो जाँयगे।'' आयुष्मान् रोहण ने भी-''बहुत अच्छा!'' कह कर, स्वीकार कर लिया।

७. महासेन का मनुष्यलोक में प्रादुर्भाव– ११. महासेन देवपुत्र ने भी देवलोक से उतर कर, सोणुत्तर ब्राह्मण की भार्या की कोंख में प्रतिसन्धि (गर्भ) ग्रहण की। प्रतिसन्धि ग्रहण करने के साथ ही तीन आश्चर्य (अद्भुत धर्म) प्रकट हुए-(१) सभी शस्त्रास्त्र प्रद्योतित हो उठे, (२) नये धान उग आये और (३) भारी वृष्टि होने लगी। आयुष्मान् रोहण भी उस प्रतिसन्धिग्रहण समय से लेकर सात वर्ष एवं दश महीने तक निरन्तर उस ब्राह्मण के घर भिक्षाटन के लिये गये; किन्तु किसी एक दिन भी कलछी भर भात या चम्मच भर कांजी या अभिवादन या नमस्कार या स्वागत के शब्द नहीं पा सके। बल्कि अपमान भरे कटु शब्द ही पाते रहे।''भन्ते! आगे जाँय'' —इतना कहने वाला भी कोई नहीं था! सात वर्ष और दश महीने बीतने पर एक दिन ''भन्ते! आगे जाँय''— ऐसा किसी से सुना। उसी दिन ब्राह्मण भी कोई कार्य कर कहीं बाहर से लौट रहा था। बीच रास्ते में स्थविर को देखकर पूछा—''कहिये साधु जी! क्या मेरे घर गये थे?'' ''हाँ, ब्राह्मण! गया था।'' ''क्या कुछ मिला भी?'' ''हाँ ब्राह्मण, मिला।'' उसने असन्तुष्टमन हो, घर जाकर पूछा—''उस साधु को कुछ दिया था?'' ''नहीं, कुछ नहीं दिया।'' दूसरे दिन ब्राह्मण घर के दरवाजे पर ही बैठा—''आज उस भिक्षु को झूठ बोलने के अपराध में दोषी ठहराऊँगा।''

दूसरे दिन स्थविर ब्राह्मण के घर गये। ब्राह्मण ने स्थविर को देखकर कहा—''कल मेरे घर पर

तुम्हाकं गेहे पविसन्ता दसमासाधिकानि सत्तवस्सानि 'अतिच्छथा' ति वचनमत्तं पि अलभित्वा हिय्यो 'अतिच्छथा' ति वचनमत्तं लभिम्हा। अथेतं वाचापटिसन्थारं उपादाय एवमवोचुम्हा'' ति।

ब्राह्मणो चिन्तेसि—''इमे वाचा पटिसन्थारमत्तं पि लभित्वा जनमज्झे 'लभिम्हा' ति पसंसन्ति, अञ्ञं किञ्चि खादनीयं वा भोजनीयं वा लभित्वा कस्मा नप्पसंसन्ती'' ति पसीदित्वा अत्तनो अत्थाय पटियादितभत्ततो कटच्छुभिक्खं तदुपियं च ब्यञ्जनं दापेत्वा—''इमं भिक्खं सब्बकालं तुम्हे लभिस्सथा'' ति आह।

सो पुन दिवसतो पभुति उपसङ्कमन्तस्स थेरस्स उपसमं दिस्वा भिय्योसो मत्ताय पसीदित्वा थेरं निच्चकालं अत्तनो घरे भत्तविसग्गकरणत्थाय याचि। थेरो तुण्हीभावेन अधिवासेत्वा दिवसे दिवसे भत्तकिच्चं कत्वा गच्छन्तो थोकं थोकं बुद्धवचनं कथेत्वा गच्छति।

सा पि खो ब्राह्मणी दसमासच्चयेन पुत्तं विजायि। 'नागसेनो' त्स नाममकंसु। सो अनुक्कमेन वड्ढन्तो सत्तवस्सिको जातो।

८. नागसेनस्स दारकस्स सज्झायकालो

१२. अथ खो नागसेनस्स दारकस्स पिता नागसेनं दारकं एतदवोच—''इमस्मिं खो, तात नागसेन, ब्राह्मणकुले सिक्खानि सिक्खेय्यासी'' ति। ''कतमानि, तात, इमस्मिं ब्राह्मणकुले सिक्खानि नामा'' ति? ''तयो खो, तात नागसेन, वेदा सिक्खानि नाम, अवसेसानि सिप्पानि सिप्पं नामा'' ति। ''तेन हि, तात, सिक्खिस्सामी'' ति।

आप को कुछ नहीं मिला था, तो भी आपने 'मिला' ऐसा कह दिया। क्या आपको ऐसा झूठ बोलना चाहिये?'' स्थविर ने कहा—''ब्राह्मण, मैं तुम्हारे घर पर मैं सात वर्ष और दश महीने तक बराबर आ रहा हूँ; किन्तु किसी भी दिन 'आगे जाँय' इतना भी किसी ने नहीं कहा। कल 'आगे जाँय' इतना वचन तो मिला। उसी वचन को लक्ष्य कर मैंने वैसा कहा था।''

ब्राह्मण विचारने लगा—''यदि ये आचारवश कहे गये इन वचनों को ही पाकर 'मिला' ऐसी लोगों में प्रशंसा करते हैं, तो कोई दूसरी खाने–पीने की चीज पाकर तो कैसे प्रशंसा नहीं करेंगे!'' अतः, प्रसन्न हो अपने लिये बनाये गए भात में से कलछी भर भात और उसी के बराबर व्यञ्जन भिक्षा दिलवा कर कहा—''इतनी भिक्षा आप प्रतिदिन पाया करेंगे।''

उस दिन के बाद वह ब्राह्मण उन स्थविर के आने पर उनके शान्तभाव को देख बहुत प्रसन्न होता था। उसने स्थविर को सदा के लिये अपने घर पर ही भोजन करने की प्रार्थना की। स्थविर ने चुप रह कर स्वीकार किया। उसके बाद प्रतिदिन भोजन कर वापस जाते समय कुछ न कुछ भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनाकर स्थविर रोहण जाते थे। (उस समय की ऐसी परिपाटी थी कि साधु–सन्त भोजन के बाद उपासक गृहस्थ को कुछ धर्मोपदेश किया करते थे।)

दश महीने बीतने पर उस ब्राह्मणी को पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'नागसेन' पड़ा। वह क्रमशः बढ़ते हुये सात वर्ष का हो गया।

८. बालक नागसेन का स्वाध्यायकाल— १२. तब पिता ने नागसेन से कहा—''प्रिय नागसेन! इस ब्राह्मणकुल की जो शिक्षायें हैं, उन्हें सीखो।'' ''तात! इस ब्राह्मणकुल की कौन सी शिक्षायें हैं?'' ''प्रिय नागसेन! तीनों वेदों के अध्ययन को 'शिक्षा' और अवशिष्ट दूसरे शिल्पों को 'शिल्प' कहते हैं।'' ''तात! तो मैं उन्हें सीखूँगा।''

अथ खो सोणुत्तरो ब्राह्मणो, आचरियब्राह्मणस्स आचरियभागं सहस्सं दत्वा अन्तोपासादे एकस्मिं गब्भे एकतो मञ्चकं पञ्ञपेत्वा, आचरियब्राह्मणं एतदवोच—"सज्झापेहि खो त्वं, ब्राह्मण, इमं दारकं मन्तानी" ति।

"तेन हि, तात दारक, उग्गण्हाहि मन्तानी" ति आचरियब्राह्मणे सज्झायति नागसेनस्स दारकस्स एकेनेव उद्देसेन तयो वेदा हदयङ्गता वाचुग्गता सूपधारिता सुववत्थापिता सुमनसिकता अहेसुं। सकिमेव चक्खुं उदपादि तीसु वेदेसु सनिघण्टु-केटुभेसु साक्खरप्पभेदेसु इतिहासपञ्चमेसु पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो अहोसि।

अथ खो नागसेनो दारको पितरं एतदवोच—"अत्थि नु खो, तात, इमस्मिं ब्राह्मणकुले इतो उत्तरिं पि सिक्खितब्बानि, उदाहु एत्तकानेवा" ति?

"नत्थि, तात नागसेन, इमस्मिं ब्राह्मणकुले इतो उत्तरिं सिक्खितब्बानि, एत्तकानेव सिक्खितब्बानी" ति।

अथ खो नागसेनो दारको आचरियस्स अनुयोगं दत्वा पासादा ओरुय्ह पुब्बवासनाय चोदितहदयो रहोगतो पटिसल्लीनो अत्तनो सिप्पस्स आदिमज्झपरियोसानं ओलोकेन्तो आदिम्हि वा मज्झे वा परियोसाने वा अप्पमत्तकं पि सारं अदिस्वा—"तुच्छा बत, भो इमे वेदा; पलापा बत, भो, इमे वेदा; असारा निस्सारा" ति विप्पटिसारी अनत्तमनो अहोसि।

९. आयस्मता रोहणेन नागसेनदारकस्स समागमो

१३. तेन खो पन समयेन आयस्मा रोहणो वत्तनिये सेनासने निसिन्नो नागसेनस्स दारकस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वत्तनिये सेनासने अन्तरहितो कजङ्गलब्राह्मणगामस्स पुरतो पातुरहोसि।

तब सोणुत्तर ब्राह्मण किसी ब्राह्मण आचार्य को, एक सहस्र मुद्रायें गुरु-दक्षिणा में दे, अपने भवन के एक योग्य स्थान में आसन लगवा कर बोला-"हे ब्राह्मण! आप नागसेन को वेद पढ़ावें।"

आचार्य उसे वेदमन्त्र पढ़ाने लगा। बालक नागसेन ने एक ही आवृत्ति में तीनों वेदों को कण्ठ कर लिया और भलीभाँति समझ भी लिया। तीनों वेदों में स्वयं ही उसे एक प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो गयी। शब्द-ज्ञान, छन्द-ज्ञान, भाषा-ज्ञान तथा इतिहास-इनमें कुछ भी बाकी नहीं बचा। वह पदों को जानने वाला, व्याकरण, लोकायत और महापुरुष-लक्षणशास्त्र में पूरा पण्डित हो गया।

तब नागसेन ने अपने पिता से पूछा-"पिता जी! इस ब्राह्मणकुल में इससे आगे भी कुछ शिक्षायें हैं या इतनी ही?"

"पुत्र नागसेन! .... इसके आगे कोई शिक्षा नहीं हैं; इतना ही सीखना था।"

तब नागसेन आचार्य से विदा ले प्रासाद से नीचे उतरा। वह अपने पूर्व संस्कारों से प्रेरित हो एकान्त में समाधि लगा; अपनी पढ़ी हुई विद्या के आदि मध्य और अवसान पर विचार करने लगा। वहां आदि, मध्य और अवसान में कहीं अल्पमात्र भी सार न पाकर बहुत असन्तुष्ट हुआ-'ये वेद तुच्छ हैं, खोखले हैं। इनमें न कोई सार है, न अर्थ और न तथ्य!'

९. नागसेन से आयुष्मान् रोहण की भेंट- १३. उस समय आयुष्मान् रोहण वत्तनीय आश्रम में बैठे नागसेन के चित्त की बातों को अपने ध्यानबल से जान गये। वे वस्त्र पहन कर पात्र-चीवर ले, वत्तनीय आश्रम में अन्तर्हित हो, कजङ्गल नामक ब्राह्मण ग्राम के सामने प्रकट हुए।

अद्दसा खो नागसेनो दारको अत्तनो द्वारकोट्ठके ठितो आयस्मन्तं रोहणं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान अत्तमनो उदग्गो पमुदितो पीतिसोमनस्सजातो—"अप्पेव नामायं पब्बजितो कञ्चि सारं जानेय्या" ति येनायस्मा रोहणो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—"को नु खो त्वं, मारिस, एदिसो भण्डुकासाववसनो" ति? "पब्बजितो नामाहं, दारका" ति। "केन हि त्वं, मारिस, पब्बजितो नामासि?" "पापकानं मलानं पब्बाजेतुं पब्बजितो, तस्माहं, दारक, पब्बजितो नामा" ति।

"किङ्कारणा, मारिस, ते केसा न यथा अञ्ञेसं" ति? "सोळसिमे, दारक, पलिबोधे दिस्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा पब्बजितो। कतमे सोळस? १. अलङ्कारपलिबोधो, २. मण्डनपलिबोधो, ३. तेलमक्खनपलिबोधो, ४. धोवनपलिबोधो, ५. मालापलिबोधो, ६. गन्धपलिबोधो, ७. वासनपलिबोधो, ८. हरीटकपलिबोधो, ९. आमलकपलिबोधो, १०. रङ्गपलिबोधो, ११. बन्धनपलिबोधो, १२. कोच्छपलिबोधो, १३. कप्पकपलिबोधो, १४. विजटनपलिबोधो, १५. ऊकापलिबोधो, १६. केसेसु विलूनेसु सोचन्ति किलमन्ति परिदेवन्ति उरत्ताळिं कन्दन्ति, सम्मोहं आपज्जन्ति। इमेसु खो, दारक, सोळसपलिबोधेसु पलिगुण्ठिता मनुस्सा सब्बानि अतिसुखुमानि सिप्पानि नासेन्ती" ति।

"किङ्कारणा, मारिस, वत्थानि पि तेन यथा अञ्ञेसं" ति? "कामनिस्सितानि खो, दारक, वत्थानि कमनीयानि गिहिब्यञ्जनानि। यानि कानिचि खो भयानि वत्थतो उप्पज्जन्ति, तानि कासाववसनस्स न होन्ति। तस्मा वत्थानि पि मे न यथा अञ्ञेसं" ति।

"जानासि खो त्वं, मारिस, सिप्पानि नामा" ति? "आम, दारक, जानामहं सिप्पानि।

बालक नागसेन ने अपने घर के दरवाजे पर खड़े–खड़े उन्हें दूर ही से आते देखा। उन्हें देख कर वह बहुत सन्तुष्ट, प्रमुदित और प्रीतिसौमनस्ययुक्त हो उठा। यह विचार कर कि शायद यह भिक्षु कुछ सार जानता होगा, वह उनके पास गया और बोला– "मार्ष! इस तरह सिर मुड़ाये और काषाय वस्त्र धारण किये आप कौन है?" "बालक! मैं भिक्षु हूँ।" "मार्ष ! आप भिक्षु क्यों हुए हैं?" "पापरूपी मलों को दूर करने के लिये मैं भिक्षु हुआ हूँ।"

"मार्ष! क्या कारण है कि आप के केश वैसे नहीं हैं जैसे दूसरे लोगों के?" " बालक उनमें सोलह बाधायें देखकर भिक्षु सिर और दाढ़ी मुड़वा लेता है।" "कौन सी सोलह?" "केश और दाढ़ी रखने से उसे (१) सँवारना होता है, (२) सजाना होता है, (३) तेल लगाना पड़ता है, (४) धोना पड़ता है, (५) माला पहनना होता है, (६) गन्ध लगाना पड़ता है, (७) सुगन्धित रखना होता है, (८) हर्रे का व्यवहार करना होता है, (९) आँवले का व्यवहार करना होता है, (१०) रंगना होता है, (११) बाँधना होता है, (१२) कंघी फेरना होता है, (१३) बार–बार नाई को बुलाना पड़ता है, (१४) जटाओं को सुलझाना पड़ता है, (१५) जूं पड़ जाती हैं और (१६) जब केश झड़ने लगते हैं तो लोग चिन्तित होते हैं, दु:खी होते हैं, पश्चात्ताप करते हैं, छाती पीट–पीट कर रोते हैं और मोह को प्राप्त होते हैं। बालक! इन सोलह बाधाओं में उलझे हुए मनुष्य विचारणीय सूक्ष्म बातों को भूल जाते हैं। "

"मार्ष! क्या करण है कि आपके वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के?" "बालक! गृहस्थों के सुन्दर वस्त्रों में कामवासनायें लगी रहती हैं। वस्त्र के कारण जिस भय की सम्भावना है, वह काषाय वस्त्र पहनने वाले को नहीं होता। इसीलिये मेरे वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के।"

"मार्ष! क्या आप ज्ञान की बातें जानते हैं?" "बालक! हाँ, मैं यथार्थ ज्ञान को जानता हूँ और

यं लोके उत्तमं मन्तं तं पि जानामी'' ति। ''मय्हं पि तं, मारिस, दातुं सक्का'' ति? ''आम, दारक, सक्का'' ति। ''तेन हि मे देही'' ति। ''अकालो खो, दारक; अन्तरघरं पिण्डाय पविट्ठम्हा'' ति।

अथ खो नागसेनो दारको आयस्मतो रोहणस्स हत्थतो पत्तं गहेत्वा घरं पवेसेत्वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा आयस्मन्तं रोहणं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एतदवोच—''देहि मे दानि, मारिस, मन्तं'' ति!

''यदा खो त्वं, दारक, निप्पलिबोधो हुत्वा मातापितरो अनुजानापेत्वा मया गहितं पब्बजितवेसं गण्हिस्ससि तदा दस्सामी'' ति आह।

अथ खो नागसेनो दारको मातापितरो उपसङ्कमित्वा आह—''अम्म, तात, अयं पब्बजितो 'यं लोके उत्तमं मन्तं तं जानामी' ति वदति। न च अत्तनो सन्तिके अपब्बजितस्स देति। अहमेतस्स सन्तिके पब्बजित्वा तं मन्तं उगण्हिस्सामी'' ति। अथस्स मातापितरो—''पब्बजित्वापि नो पुत्तो मन्तं गण्हतु। गहेत्वा पुन आगच्छिस्सती'' ति मञ्ञमाना ''गण्ह, पुत्ता'' ति अनुजानिंसु।

१०. नागसेनस्स पब्बज्जा

१४. अथ खो आयस्मा रोहणो नागसेनं दारकं आदाय येन वत्तनियं सेनासनं येन विजम्भवत्थु तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा विजम्भवत्थुस्मि सेनासने एकरत्तं वसित्वा येन रक्खित-तलं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा कोटिसतानं अरहन्तानं मज्झे नागसेनं दारकं पब्बाजेसि।

पब्बजितो च पनायस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—''गहितो मे, भन्ते, तव वेसो, देथ मे दानि मन्तं'' ति। अथ खो आयस्मा रोहणो ''किम्हि नु खोहं नागसेनं

जो संसार में सबसे उत्तम मन्त्र है, उसे भी जानता हूँ।'' ''मार्ष! क्या मुझे भी सिखा सकते हैं?'' ''हाँ, सिखा सकता हूँ।'' ''तो मुझे सिखावें।'' ''बालक ! उसके लिये यह उचित समय नहीं है। अभी मैं तुम्हारे घर भिक्षाटन के लिये आया हूँ।''

तब नागसेन आयुष्मान् रोहण के हाथ से पात्र ले, उन्हें घर के भीतर ले गया। वहाँ अपने हाथों से उत्तम-उत्तम भोजन परोस कर, उन्हें तृप्त किया, सन्तुष्ट किया। आयुष्मान् रोहण के भोजन कर चुकने और पात्र से हाथ हटा लेने पर उसने कहा—''मार्ष! अब आप मुझे मन्त्र सिखावें।''

आयुष्मान् रोहण बोले— ''बालक! जब तुम सभी बाधाओं से रहित हो, माँ—बाप की अनुमति ले, मेरे भिक्षुवेश को धारण कर लोगे तब मैं तुम्हें सिखाऊँगा।''

तब नागसेन अपने माता—पिता के पास जा कर बोला—''माता जी और पिता जी! यह भिक्षु संसार के सबसे उत्तम मन्त्र को जानने की बात कहता है; लेकिन जो भिक्षु नहीं है, उसे नहीं सिखाता। मैं उसके पास प्रव्रज्या ग्रहण कर उस मन्त्र को सीखूँगा।'' उसके माँ—बाप ने समझा— ''हम लोगों का पुत्र प्रव्रजित होकर मन्त्र सीखने के बाद लौट आयगा।'' अत: ''जाओ, सीखो''—ऐसी अनुमति दे दी।

१०. नागसेन की प्रव्रज्या— १४. तब आयुष्मान् रोहण नागसेन को ले वत्तनीय आश्रम में विजम्भवत्थु गये। विजम्भवत्थु में एक रात रह कर, जहाँ रक्षिततल था, वहाँ गये। जाकर कोटिशत अर्हतों के बीच नागसेन को प्रव्रजित किया।

प्रव्रज्या लेने के बाद आयुष्मान् नागसेन ने आयुष्मान् रोहण से कहा—''भन्ते! मैंने आपका वेश

विनेय्यं पठमं? विनये वा, सुत्तन्ते वा, अभिधम्मे वा?'' ति चिन्तेत्वा ''पण्डितो खो अयं नागसेनो, सक्कोति सुखेनेव अभिधम्मं परियापुणितुं'' ति पठमं अभिधम्मे विनेसि। आयस्मा च नागसेनो—'कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अब्याकता धम्मा' ति तिकदुकपटिमण्डितं *धम्मसङ्गणिप्पकरणं*; खन्धविभङ्गादि अट्ठारसविभङ्गपटिमण्डितं *विभङ्गप्पकरणं*; 'सङ्गहो, असङ्गहो' ति आदिना चुद्दसविधेन विभत्तं *धातुकथाप्पकरणं*; 'खन्धपञ्ञत्तिआयतनपञ्ञत्ती' ति आदिना छब्बिधेन विभत्तं *पुग्गलपञ्ञत्तिप्पकरणं*; सकवादे पञ्चसुत्तसतानि, परवादे पञ्चसुत्तसतानी ति सुत्तसहस्सं समोधानेत्वा विभत्तं *कथावत्थुप्पकरणं*; मूलयमकं, खन्धयमकं ति आदिना दसविधेन विभत्तं *यमकप्पकरणं*; 'हेतुपच्चयो, आरम्मणपच्चयो' ति आदिना चतुवीसतिविधेन विभत्तं *पट्ठानप्पकरणं* ति सब्बं तं अभिधम्मपिटकं एकेनेव सज्झायेन पगुणं कत्वा—''तिट्ठथ, भन्ते, न पुन ओसारेथ, एत्तकेनेवाहं सज्झायिस्सामी'' ति आह।

अथ खो आयस्मा नागसेनो येन कोटिसता अरहन्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा कोटिसते अरहन्ते एतदवोच—''अहं खो, भन्ते, 'कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अब्याकता धम्मा' ति इमेसु तीसु पदेसु पक्खिपित्वा सब्बं तं अभिधम्मपिटकं वित्थरेन ओसारेस्सामी'' ति। ''साधु, नागसेन, ओसारेही'' ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो सत्तमासानि सत्तप्पकरणानि वित्थरेन ओसारेसि। पथवी उन्नदि। देवता साधुकारमदंसु। ब्रह्मानो अप्फोटेसुं। दिब्बानि चन्दनचुण्णानि, दिब्बानि च मन्दारवपुप्फानि अभिप्पवस्सिंसु।

११. नागसेनस्स दण्डकम्मं

१५. अथ खो कोटिसता अरहन्तो आयस्मन्तं नागसेनं परिपुण्णवीसतिवस्सं रक्खिततले उपसम्पादेसुं। उपसम्पन्नो च पनायस्मा नागसेनो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा

धारण कर लिया। अब मुझे मन्त्र सिखावें।'' तब आयुष्मान् रोहण ने विचार किया—''इसे पहले क्या पढ़ाऊँ विनय, सूत्र या अभिधर्म?'' फिर यह सोच कर कि ''नागसेन पण्डित है, अभिधर्म आसानी से समझ लेगा''—पहले अभिधर्म ही पढ़ाया। उसमें कुशल, अकुशल और अव्याकृत (पुण्य, पाप और न पाप—न पुण्य) धर्मों को 'तीन प्रकार और दो प्रकार' के भेद से बताने वाली अभिधर्म की पहली पुस्तक *धम्मसङ्गणि*, स्कन्धविभङ्ग इत्यादि अट्ठारह विभङ्गों वाली दूसरी पुस्तक *विभङ्गप्पकरण*; संग्रह—असंग्रह इत्यादि चौदह प्रकार से विभक्त तीसरी पुस्तक *धातुकथाप्पकरण*; स्कन्धप्रज्ञप्ति, आयतनप्रज्ञप्ति इत्यादि छः प्रकार से विभक्त चौथी पुस्तक *पुग्गलपञ्ञत्ति*; अपने पक्ष के पाँच सौ सूत्र और विपक्ष के पाँच सौ सूत्र, इन्हीं एक हजार सूत्रों की पाँचवीं पुस्तक *कथावत्थुप्पकरण*; मूलयमक, स्कन्धयमक इत्यादि दश प्रकार से विभक्त छठी पुस्तक *यमकप्पकरण*; हेतुप्रत्यय इत्यादि चौबीस प्रकार से विभक्त सातवीं पुस्तक *पट्ठानप्पकरण*—इन सातों अभिधर्म की पुस्तकों को नागसेन श्रामणेर ने शीघ्र ही पढ़ डाला और कण्ठ भी कर लिया। फिर कहा—''भन्ते! बस करें! इतने ही से मैं स्वाध्याय करूँगा।''

तब, आयुष्मान् नागसेन ने जहाँ शतकोटि अर्हत् थे, वहाँ जाकर उनसे कहा—''भन्ते! मैं समग्र अभिधर्मपिटक को 'कुशल धर्म, अकुशल धर्म, और अव्याकृत धर्म'—इन्हीं तीन बातों में विभक्त कर विस्तार करूँगा।'' ''बहुत अच्छा नागसेन, विस्तार करो''।

तब आयुष्मान् नागसेन ने सात महीने में इन सातों प्रकरणों को विस्तारपूर्वक समझाया। उस

पत्तचीवरमादाय उपज्झायेन सद्धिं गामं पिण्डाय पविसन्तो एवरूपं परिवितक्कं उप्पादेसि— "तुच्छो बत मे उपज्झायो, बालो बत मे उपज्झायो। ठपेत्वा अवसेसं बुद्धवचनं पठमं मं अभिधम्मे विनेसी" ति।

अथ खो आयस्मा रोहणो आयस्मतो नागसेनस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"अननुच्छविकं खो, नागसेन, परिवितक्कं वितक्केसि। न खो पनेतं, नागसेन, तवानुच्छविकं" ति।

अथ खो आयस्मतो नागसेनस्स एतदहोसि—"अच्छरियं बत भो, अब्भुतं बत भो! यत्र हि नाम मे उपज्झायो चेतसा चेतोपरिवितक्कं जानिस्सति! पण्डितो वत मे उपज्झायो। यन्नूनाहं उपज्झायं खमापेय्यं" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच— "खमथ मे, भन्ते! न पुन एवरूपं वितक्केस्सामी" ति।

अथ खो आयस्मा रोहणो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"न खो त्याहं, नागसेन, एत्तावता खमामि। अत्थि खो, नागसेन, सागलं नाम नगरं। तत्थ मिलिन्दो नाम राजा रज्जं कारेति। सो दिट्ठिवादेन पञ्हं पुच्छित्वा भिक्खुसङ्घं विहेठेति। सचे त्वं तत्थ गन्त्वा तं राजानं दमेत्वा बुद्धसासने पसादेस्ससि, एवाहं तं खमिस्सामी" ति।

"तिट्ठतु, भन्ते, एको मिलिन्दो राजा! सचे, भन्ते, सकलजम्बुदीपे सब्बे राजानो आगन्त्वा मं पञ्हं पुच्छेय्युं, सब्बं तं विसज्जेत्वा सम्पदालेस्सामी ति, खमथ मे, भन्ते" ति

समय पृथ्वी में गर्जन होने लगा, देवताओं ने साधु–साधु कहा, ब्रह्मदेवों ने करतल–ध्वनि की और दिव्य चन्दन–चूर्ण तथा मन्दारपुष्पों की वर्षा होने लगी।

११. नागसेन का दण्डकर्म– १५. बीस साल की आयु हो जाने के बाद उन कोटिशत अर्हतों ने रक्षिततल में आयुष्मान् नागसेन की उपसम्पदा (प्रव्रज्या) की। उसके एक रात्रि बाद प्रातःकाल आयुष्मान् नागसेन पात्र और चीवर ले, अपने उपाध्याय (प्रव्रज्या–गुरु) के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव में गये। उस समय उनके मन में यह बात उठी–"अरे! मेरा यह उपाध्याय तो तुच्छ है, मूर्ख है। भगवान् बुद्ध के अवशिष्ट उपदेशों को छोड़कर, उसने मुझे पहले अभिधर्म ही पढ़ाया!"

तब आयुष्मान् रोहण अपने ध्यान–बल से आयुष्मान् नागसेन के चित्त की बात जान कर बोले–"नागसेन! तुम्हारे मन में अनुचित वितर्क उठ रहा है। तुम्हारा ऐसा विचारना तुम्हारी शोभा के अनुरूप नहीं।"

तब आयुष्मान् नागसेन के मन में यह हुआ–"बहुत आश्चर्य की बात है! बहुत अद्भुत है!! मेरे आचार्य अपने ध्यानबल से दूसरों के मन की बातें भी जान लेते हैं। मेरे उपाध्याय बड़े पण्डित हैं। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।" यह सोच उन्होंने कहा–"भन्ते! क्षमा करें! फिर कभी ऐसी बात मन में नहीं आने दूँगा।"

आयुष्मान् रोहण बोले–"नागसेन! इतने से मैं नहीं क्षमा करता। सुनो! सागल नाम का एक नगर है, वहाँ मिलिन्द नाम का एक राजा राज्य करता है। वह मिथ्यादृष्टिविषयक प्रश्न पूछ कर भिक्षुसङ्घ को उद्विग्न करता है और नीचा दिखाता है। यदि तुम वहाँ जाकर उस राजा का दमन कर उसे सन्तुष्ट करो, तब मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा।"

"भन्ते! एक मिलिन्द राजा की तो बात ही क्या यदि जम्बूद्वीप के सभी राजा आकर एक साथ मुझ से प्रश्न पूछें तो भी मैं उन सब के प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें शान्त कर दूँगा, आप मुझे क्षमा कर

वत्वा "न खमामी" ति वुत्ते "तेन हि, भन्ते, इमं तेमासं कस्स सन्तिके वसिस्सामी" ति आह। "अयं खो, नागसेन, आयस्मा अस्सगुत्तो वत्तनिये सेनासने विहरति। गच्छ त्वं, नागसेन, येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कम। उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो अस्सगुत्तस्स पादे सिरसा वन्द। एवञ्च नं वदेहि—'उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। उपज्झायो मे, भन्ते, इमं तेमासं तुम्हाकं सन्तिके वसितुं मां पहिणी' ति। 'कोनामो ते उपज्झायो?' ति च वुत्ते 'रोहणत्थेरो नाम, भन्ते' ति वदेय्यासि। 'अहं को नामो?' ति वुत्ते एवं वदेय्यासि—'मम उपज्झायो, भन्ते, तुम्हाकं नामं जानाती' " ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पत्तचीवरमादाय अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वत्तनियं सेनासनं येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं पादे सिरसा वन्दति, एवञ्च वदति—अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। उपज्झायो मे, भन्ते, इमं तेमासं तुम्हाकं सन्तिके वसितुं मां पहिणी" ति।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"त्वं किन्नामोसी" ति? "अहं, भन्ते, नागसेनो नामा" ति। "को नामो ते उपज्झायो" ति? "उपज्झायो मे, भन्ते, रोहणो नामा" ति। "अहं कोनामो" ति? "उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं नामं जानाती" ति। "साधु, नागसेन, पत्तचीवरं पटिसामेही" ति।

"साधु, भन्ते" ति पत्तचीवरं पटिसामेत्वा पुनदिवसे परिवेणं सम्मज्जित्वा मुखोदकं दन्तपोणं उपट्ठपेसि। थेरो सम्मज्जितट्ठानं पटिसम्मज्जि। तं उदकं छड्डेत्वा अञ्ञं उदकं आहरि।

दें!" "ऐसे क्षमा नहीं करूँगा।" "तो भन्ते! इन तीन महीनों तक मैं कहाँ रहूँ?" "नागसेन! वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त रहते हैं। तुम वहीं उनके पास जाओ और मेरी ओर से उनके चरणों में वन्दना कर कहो—'भन्ते! मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशल-क्षेम और स्वास्थ्य पूछते हैं। इन तीन महीनों तक आपकी सेवा में रहने के लिये मुझे भेजा है।' 'तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?'— यदि ऐसा पूछें तो कहना—'रोहण स्थविर'। और यदि पूछें— 'मेरा क्या नाम है?' तो कह देना—'भन्ते! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं'।"

"बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् नागसेनं आयुष्मान् रोहण को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, पात्र-चीवर ले, क्रमशः चारिका (रम्मत) करते हुए, वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास पहुँचे। उनके पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये और उनसे यह कहा—"भन्ते! मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशल-मङ्गल पूछते हैं। मेरे उपाध्याय ने मुझे इन तीन महीनों तक आपके पास रहने के लिये भेजा है।"

आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले—"तुम्हारा क्या नाम है?" "भन्ते! मेरा नाम नागसेन है"। "तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?" "भन्ते! मेरे उपाध्याय रोहण स्थविर हैं।" "मेरा क्या नाम है?" "भन्ते! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं।" "नागसेन! बहुत अच्छा, अपने पात्र और चीवर रक्खो।"

"भन्ते! बहुत अच्छा।" पात्र-चीवर रखने के बाद, दूसरे दिन परिवेण में झाड़ू दे, मुँह धोने के

तञ्च दन्तकट्ठं अपनेत्वा अञ्ञं दन्तकट्ठं गण्हि। न आलापसल्लापं अकासि। एवं सत्त दिवसानि कत्वा सत्तमे दिवसे पुन पुच्छित्वा पुन तेन तथेव वुत्ते वस्सावासं अनुजानि।

१२. नागसेनस्स धम्मदेसना

१६. तेन खो पन समयेन एका महाउपासिका आयस्मन्तं अस्सगुत्तं तिंसमत्तानि वस्सानि उपट्ठासि। अथ खो सा महाउपासिका तेमासच्चयेन येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"अत्थि नु खो, तात, तुम्हाकं सन्तिके अञ्ञो भिक्खू" ति? "अत्थि, महाउपासिके, अम्हाकं सन्तिके नागसेनो नाम भिक्खू" ति। "तेन हि, तात अस्सगुत्त, अधिवासेहि नागसेनेन सद्धिं स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा अस्सगुत्तो तुण्हीभावेन।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आयस्मता नागसेनेन सद्धिं पच्छासमणेन येन महाउपासिकाय निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सा महाउपासिका आयस्मन्तं अस्सगुत्तं आयस्मन्तं च नागसेनं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"त्वं, नागसेन, महाउपासिकाय अनुमोदनं करोही" ति इदं वत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो सा महाउपासिका आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"महल्लिका खोहं, तात नागसेन! गम्भीराय धम्मकथाय मय्हं अनुमोदनं करोही" ति। आयस्मा नागसेनो तस्सा

लिये जल और दतुवन उचित स्थान पर रख दिया (द्र० विनयपिटक, आगन्तुक भिक्षु का कर्तव्य) स्थविर ने झाड़ू दिये स्थान पर फिर से झाड़ू दिया; उस जल को छोड़कर दूसरा जल लिया, उस दतुवन को न ले दूसरी दतुवन ली; कुछ आलाप-संलाप भी नहीं किया। ऐसे ही सात दिन करके फिर पूछा। फिर भी नागसेन के वही उत्तर देने पर स्थविर ने वर्षावास की अनुमति दी।

१२. महाउपासिका को नागसेन का धर्मोपदेश— १६. उस समय कोई महाउपासिका आयुष्मान् अस्सगुत्त की तीस वर्षों से सेवा कर रही थी। वह महाउपासिका (चारिका के लिये निषिद्ध) *तेमासा* (वर्षावास के तीन महीने) बीतने पर आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास आयी और बोली-"आपके साथ कोई दूसरा भिक्षु भी है।" "हाँ, महाउपासिके ! मेरे साथ नागसेन नाम का एक भिक्षु है।" "तो, भन्ते ! आयुष्मान् के साथ कल मेरे यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।" आयुष्मान् अस्सगुत्त ने मौन रहकर स्वीकार किया।

आयुष्मान् अस्सगुत्त उस रात्रि के बीतने पर सुबह वस्त्र पहन और पात्र-चीवर ले, आयुष्मान् नागसेन को पीछे कर, उस महाउपासिका के घर गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। महाउपासिका ने उन दोनों को अपने हाथों से अच्छा-अच्छा भोजन परोस कर खिलाया। भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ हटा लेने के बाद आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले— "नागसेन ! तुम महाउपासिका का दानानुमोदन (भोजन के बाद किया जाने वाला धर्मोपदेश) करो।" इतना कह उठ कर चले गये।

तब उस महाउपासिका ने आयुष्मान् नागसेन से कहा-"तात नागसेन! मैं बहुत वृद्ध हूँ, मुझे गम्भीर धर्म का उपदेश करें।" आयुष्मान् नागसेन ने भी उसे लोकोत्तर निर्वाण-सम्बन्धी अभिधर्म की गम्भीर बातों को कहा इससे उस महाउपासिका को उसी क्षण उसी आसन पर राग-रहित निर्मल धर्म

महाउपासिकाय गम्भीराय धम्मकथाय लोकुत्तराय सुञ्ञताप्पटिसंयुत्ताय अनुमोदनं अकासि। अथ खो तस्सा महाउपासिकाय तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति। आयस्मा पि खो नागसेनो तस्सा महाउपासिकाय अनुमोदनं कत्वा अत्तना देसितं धम्मं पच्चवेक्खन्तो विपस्सनं पट्ठपेत्वा तस्मिं येव आसने निसिन्नो सोतापत्तिफले पतिट्ठासि।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो मण्डलमाले निसिन्नो द्विन्नं पि धम्मचक्खुपटिलाभं ञत्वा साधुकारं पवत्तेसि—"साधु साधु, नागसेन! एकेन कण्डप्पहारेन द्वे महाकाया पदालिता" ति। अनेकानि च देवतासहस्सानि साधुकारं पवत्तेसुं।

१३. नागसेनस्स पाटलिपुत्तगमनं

१७. अथ खो आयस्मा नागसेनो उट्ठायासना येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं नागसेनं आयस्मा अस्सगुत्तो एतदवोच—"गच्छ त्वं, नागसेन, पाटलिपुत्तं। पाटलिपुत्तनगरे असोकारामे आयस्मा धम्मरक्खितो पटिवसति। तस्स सन्तिके बुद्धवचनं परियापुणाही" ति। "कीव दूरे, भन्ते, इतो पाटलिपुत्तनगरं" ति? "योजनसतानि खो, नागसेना" ति।

"दूरो खो, भन्ते, मग्गो। अन्तरामग्गे भिक्खा दुल्लभा। कथाहं गमिस्सामी" ति? "गच्छ त्वं, नागसेन, अन्तरामग्गे पिण्डपातं लभिस्ससि सालीनं ओदनं विगतकाळकं अनेकसूपं अनेकब्यञ्जनं" ति।

"एवं भन्ते" ति खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पत्तचीवरमादाय येन पाटलिपुत्तं तेन चारिकं पक्कामि।

का ज्ञान हो गया—"जो उत्पन्न होता है, वह नष्ट होने वाला है।" आयुष्मान् नागसेन भी उस महाउपासिका को धर्मोपदेश करने के बाद अपनी कही गयी बातों पर विचार करते हुए यथार्थ ज्ञान का लाभ कर उसी आसन पर बैठे–बैठे स्रोतआपत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गये।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने वृत्त मण्डप में बैठे–बैठे ही दोनों को धर्म ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर साधुवाद दिया—"साधु नागसेन! तुमने एक ही बाण से दो लक्ष्यों को बेधा है।" अनेक देवताओं ने भी साधुवाद दिया।

१३. नागसेन का पाटलिपुत्रगमन—१७. तब आयुष्मान् नागसेन आसन से उठ, आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास जा प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् अस्सगुत्त आयुष्मान् नागसेन से बोले—"पाटलिपुत्र के अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित रहते हैं, तुम उनसे भगवान् बुद्ध के उपदेशों को पूरा–पूरा पढ़ लो।" "भन्ते! यहाँ से पाटलिपुत्र नगर कितनी दूर है?" "सौ योजन।"

"भन्ते! बहुत दूर है और बीच में भिक्षा मिलना भी दुर्लभ है; मैं कैसे जाऊँगा!" "नागसेन! जाओ, बीच में शालि चावल का भात, जिसमें से काले दाने चुन लिये गये हों तथा अनेक प्रकार के सूप और व्यञ्जन की भिक्षा मिलेगी।"

"बहुत अच्छा"—ऐसा कह, आयुष्मान् नागसेन आयुष्मान् अस्सगुत्त को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, पात्र चीवर लेकर पाटलिपुत्र की ओर चारिका के लिये चल पड़े।

१४. सेट्ठिस्स अभिधम्मदेसनं

१८. तेन खो पन समयेन पाटलिपुत्तको सेट्ठि पञ्चहि सकटसतेहि पाटलिपुत्तगाममग्गं पटिपन्नो होति। अद्दसा खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मन्तं नागसेनं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा— "कुहिं गच्छसि, ताता?" ति आह। "पाटलिपुत्तं, गहपती" ति। "साधु, तात, मयं पि पाटलिपुत्तं गच्छाम। अम्हेहि सद्धिं सुखं गच्छथा" ति।

अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मतो नागसेनस्स इरियापथे पसीदित्वा आयस्मन्तं नागसेनं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"किन्नामोसि त्वं, ताता" ति? "अहं, गहपति, नागसेनो नामा" ति। "जानासि खो त्वं, तात, बुद्धवचनं नामा" ति? "जानामि खोहं, गहपति, अभिधम्मपदानी" ति।

"लाभा नो, तात! सुलद्धं नो, तात! अहं पि खो, तात, आभिधम्मिको, त्वं पि आभिधम्मिको। भण, तात, अभिधम्मपदानी" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो पाटलिपुत्तकस्स सेट्ठिस्स अभिधम्मं देसेसि। देसेन्ते येव पाटलिपुत्तकस्स सेट्ठिस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति।

अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि पञ्चमत्तानि सकटसतानि पुरतो उय्योजेत्वा सयं पच्छतो गच्छन्तो पाटलिपुत्तस्स अविदूरे द्वेधापथे ठत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"अयं खो, तात नागसेन, असोकारामस्स मग्गो। इदं खो, तात, अम्हाकं कम्बलरतनं सोळसहत्थं आयामेन, अट्ठहत्थं वित्थारेन। पटिग्गण्हाहि खो, तात, इमं कम्बलरतनं अनुकम्पं उपादाया" ति।

---

१४. श्रेष्ठी को अभिधर्मोपदेश— १८. उस समय पाटलिपुत्र का एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ पाटलिपुत्र जाने वाली सड़क पर जा रहा था। उसने आयुष्मान् नागसेन को दूर से ही आते देखा। देख कर अपनी गाड़ियों को रोक, उनके पास जाकर प्रणाम किया और पूछा—"बाबा! आपको कहाँ जाना है?" "गृहपति! मैं पाटलिपुत्र जा रहा हूँ।" "बाबा! बहुत अच्छा ! हम लोग भी पाटलिपुत्र जा रहे हैं। हम लोगों के साथ आप भी सुखपूर्वक चलें।" तब वह पाटलिपुत्र का व्यापारी मार्ग में आयुष्मान् नागसेन का व्यवहार देखकर प्रसन्न हुआ। उसने आयुष्मान् नागसेन को अपने हाथों से भोजन खिलाया। उनके भोजन कर चुकने पर वह एक नीचा आसन लेकर बैठ गया और बोला—"बाबा, आप का क्या नाम है?" "गृहपति! मेरा नाम नागसेन है।" "बाबा, क्या आप भगवान् बुद्ध के उपदेशों को जानते हैं?" "गृहपति! मैं अभिधर्म की बातों को जानता हूँ।"

"बाबा, धन्य मेरा भाग्य! मैं भी आभिधर्मिक और आप भी! बाबा, आप मुझे अभिधर्म का प्रवचन करें।" तब, आयुष्मान् नागसेन ने उस व्यापारी को अभिधर्म का उपदेश किया। उपदेश सुनते-सुनते ही उसे यह निर्मल-निर्दोष धर्म-ज्ञान हो गया कि "जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होने वाला है"।

वह....व्यापारी अपनी पाँच सौ गाड़ियों को आगे करके चला; पीछे-पीछे जाते हुए पाटलिपुत्र के निकट पहुँच, दो सड़कों के अलग होने की एक जगह रुककर, वह आयुष्मान् नागसेन से बोला—"बाबा! यही अशोकाराम का मार्ग है; और यह मेरा कीमती कम्बल है—सोलह हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा,

पटिग्गहेसि खो आयस्मा नागसेनो तं कम्बलरतनं अनुकम्पं उपादाय। अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि अत्तमनो उदग्गो पमुदितो पीतिसोमनस्सजातो आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

१५. नागसेनस्स अरहन्तभावो

१९. अथ खो आयस्मा नागसेनो येनासोकारामो येनायस्मा धम्मरक्खितो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं धम्मरक्खितं अभिवादेत्वा अत्तनो आगतकरणं कथेत्वा आयस्मतो धम्मरक्खितस्स सन्तिके तेपिटकं बुद्धवचनं एकेनेव उद्देसेन तीहि मासेहि ब्यञ्जनतो परियापुणित्वा पुन तीहि मासेहि अत्थतो मनसाकासि।

अथ खो आयस्मा धम्मरक्खितो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"सेय्यथापि, नागसेन, गोपालको गावो रक्खति, अञ्ञे गोरसं परिभुञ्जन्ति; एवमेव खो, त्वं नागसेन, पुथुज्जनो तेपिटकं बुद्धवचनं धारेन्तो पि न भागी सामञ्ञस्सा" ति। "होतु, भन्ते, अलं एत्तकेना" ति। तेनेव दिवसभागेन तेन रत्तिभागेन सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि! सह सच्चप्पटिवेधेन आयस्मतो नागसेनस्स सब्बे देवा साधुकारमदंसु, पथवी उन्नदि, ब्रह्मानो अप्फोटेसुं, दिब्बानि चन्दनचुण्णानि दिब्बानि च मन्दारवपुप्फानि अभिप्पवस्सिंसु।

१६. नागसेनस्स सन्तिके दूतपेसनं

२०. तेन खो पन समयेन कोटिसता अरहन्तो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले सन्निपतित्वा आयस्मतो नागसेनस्स सन्तिके दूतं पाहेसुं—"आगच्छतु नागसेनो! दस्सनकामा मयं नागसेनं" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो दूतस्स वचनं सुत्वा असोकारामे अन्तरहितो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले कोटिसतानं अरहन्तानं पुरतो पातुरहोसि।

इसे आप कृपा कर स्वीकार करें!" आयुष्मान् नागसेन ने कृपा कर उस कम्बल को स्वीकार किया। तब, वह व्यापारी सन्तुष्ट, प्रीतियुक्त, और प्रमुदित होता हुआ आयुष्मान् नागसेन को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, पाटलिपुत्र की ओर चल दिया।

१५. नागसेन का अर्हत् पद— १९. आयुष्मान् नागसेन ने अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित के पास जा, प्रणाम कर अपने आने का प्रयोजन कहा और तीन ही महीनों में, एक आवृत्ति में ही, आयुष्मान् धर्मरक्षित से भगवान् बुद्ध के वचनों (तीनों पिटकों) को कण्ठस्थ कर लिया; फिर अगले तीन महीनों में उनके अर्थों को भी जान लिया।

तब, आयुष्मान् धर्मरक्षित ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन! जैसे ग्वाला गौओं को केवल रखता है, दूध पीने वाले दूसरे ही होते हैं; उसी तरह तुम ने त्रिपिटक जान लिया तो क्या हुआ यदि श्रमणफल (मोक्ष) के भागी नहीं बने।" " भन्ते! बस करें, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।" उसी दिन रात्रि में उन्होंने प्रतिसंविदाओं[1] के साथ अर्हत् पद पा लिया। आयुष्मान् नागसेन के इस तरह सत्य में प्रतिष्ठित होते ही पृथ्वी कम्पित हो उठी, ब्रह्मदेवों ने करतल धवनि की, दिव्य चन्दनचूर्ण और मन्दार-पुष्पों की वर्षा होने लगी।

१६. नागसेन के पास दूतप्रेषण— २०. उस समय शतकोटि अर्हतों ने, हिमालय पर्वत के रक्षित-तल में इकट्ठे होकर, आयुष्मान् नागसेन के पास दूत द्वारा सन्देश भेजा—"नागसेन यहाँ आयें, हम लोग

---

१. प्रतिसंविदाएँ चार हैं, जैसे- १. अर्थप्रतिसंविदा, २. धर्मप्रतिसंविदा, ३. निरुक्तिप्रतिसंविदा एवं ४. प्रतिभानप्रतिसंविदा।

अथ खो कोटिसता अरहन्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोचुं—"एसो खो, नागसेन, मिलिन्दो राजा भिक्खुसङ्घं विहेठेति वादप्पटिवादेन पञ्हपुच्छाय। साधु, नागसेन, गच्छ त्वं मिलिन्दं राजानं दमेही" ति। "तिट्ठतु, भन्ते, एको मिलिन्दो राजा; सचे, भन्ते, सकलजम्बुद्दीपे राजानो आगन्त्वा मं पञ्हं पुच्छेय्युं सब्बं तं विस्सज्जेत्वा सम्पदालेस्सामि! गच्छथ वो, भन्ते, अच्छम्भिता सागलनगरं" ति। अथ खो थेरा भिक्खू सागलनगरं कासावप्पज्जोतं इसिवात-पटिवातं अकंसु।

१७. आयुपालेन सद्धिं मिलिन्दस्स समागमो

२१. तेन खो पन समयेन आयस्मा आयुपालो सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। अथ खो मिलिन्दो राजा अमच्चे एतदवोच—"रमणीया वत, भो, दोसिना रत्ति! कं नु ख़्वज्ज समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमेय्याम साकच्छाय पञ्हपुच्छनाय; को मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं" ति? एवं वुत्ते पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—"अत्थि, महाराज, आयुपालो नाम थेरो तेपिटको बहुस्सुतो आगतागमो। सो एतरहि सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। गच्छ त्वं, महाराज, आयस्मन्तं आयुपालं पञ्हं पुच्छस्सू" ति। "तेन हि भणे, भदन्तस्स आरोचेय्या" ति।

अथ खो नेमित्तिको आयस्मतो आयुपालस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"राजा, भन्ते, मिलिन्दो आयस्मन्तं आयुपालं दस्सनकामो" ति। आयस्मा पि खो आयुपालो एवमाह—"तेन हि आगच्छतू" ति। अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चमत्तेहि योनकसतेहि परिवुतो रथवरमारुय्ह

आयुष्मान् नागसेन के दर्शन करना चाहते हैं।" तब, आयुष्मान् नागसेन दूत की बात सुन, अशोकाराम में अन्तर्हित हो, हिमालय पर्वत के रक्षित–तल में शतकोटि अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

उन अर्हतों ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन! राजा मिलिन्द वादचर्चा में नाना प्रकार के प्रश्न पूछ कर भिक्षुसङ्घ को उद्विग्न करता है और नीचा दिखाता है। तुम जाओ और उस राजा का दमन करो।" "भन्ते! अकेले राजा मिलिन्द की तो बात ही क्या! यदि जम्बूद्वीप के सभी राजा एक साथ आकर भी प्रश्न पूछें तो मैं सब का उत्तर दे उन्हें शान्त कर दूँगा! आप लोग निर्भय हो सागल नगर चलें!" तब, उन स्थविर भिक्षुओं ने सागल नगर को काषायवस्त्र की चमक से चमका कर, ऋषियों के अनुकूल वायुमण्डल पैदा किया।

१७. आयुष्मान् आयुपाल से राजा मिलिन्द की भेंट— २१. उस समय आयुष्मान् आयुपाल संखेय्य परिवेण (विद्यालय) में रहते थे। तब, राजा मिलिन्द ने अपने अमात्यों से कहा—"आज की रात बहुत रमणीय है। आज किस श्रमण या ब्राह्मण के पास धर्म–चर्चा करने तथा प्रश्न पूछने जाऊँ? कौन मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काओं को दूर करने का साहस रखता है?" राजा द्वारा यह पूछने पर पाँच सौ यवनों ने यह उत्तर दिया—"महाराज! आयुपाल नाम का एक स्थविर है, जो तीनों पिटकों को जानता है और बहुत बड़ा पण्डित है। वह इस समय संखेय्य परिवेण में रहता है। आप उसके पास जावें और प्रश्न पूछें।" "अच्छा, तो उन भदन्त आयुपाल को मेरे आने की सूचना दो।"

तब, आज्ञा पाकर सूचनाधिकारी ने आयुपाल के निकट दूत भेज कर कहलवाया—"भन्ते ! राजा मिलिन्द आप से मिलना चाहते हैं।" आयुष्मान् आयुपाल ने भी कहा—"तो आवें।" तब, राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो, संखेय्य परिवेण में आयुष्मान् आयुपाल के पास

येन सङ्खेय्यपरिवेणं येनायस्मा आयुपालो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मता आयुपालेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं आयुपालं एतदवोच—"किमत्थिया, भन्ते आयुपाल, तुम्हाकं पब्बज्जा? को च तुम्हाकं परमत्थो" ति? थेरो आह—"धम्मचरियसमचरियत्था खो, महाराज, पब्बज्जा, सामञ्ञफलं खो पन अम्हाकं परमत्थो" ति। "अत्थि पन, भन्ते, कोचि गिही पि धम्मचारी, समचारी" ति? "आम, महाराज, अत्थि गिही पि धम्मचारी समचारी। भगवतो खो, महाराज, बाराणसियं इसिपतने मिगदाये धम्मचक्कं पवत्तेन्ते अट्ठारसन्नं ब्रह्मकोटीनं धम्माभिसमयो अहोसि। देवतानं पन धम्माभिसमयो गणनपथं वीतिवत्तो। सब्बे ते गिहिभूता, न पब्बजिता। पुन च परं, महाराज, भगवतो खो *महासमय*सुत्तन्ते देसियमाने, *महामङ्गल*सुत्तन्ते देसियमाने, *समचित्तपरियाय*सुत्तन्ते देसियमाने, *राहुलोवाद*सुत्तन्ते देसियमाने, *पराभवसुत्तन्ते* देसियमाने गणनपथं वीतिवत्तानं देवतानं महाभिसमयो अहोसि। सब्बे ते गिहिभूता, न पब्बजिता" ति।

"तेन हि, भन्ते आयुपाल, निरत्थिका तुम्हाकं पब्बज्जा। पुब्बे कतस्स पापकम्मस्स निस्सन्देन समणा सक्यपुत्तिया पब्बजन्ति, धुतङ्गानि च परिहरन्ति। ये खो ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू एकासनिका, नून ते पुब्बे परेसं भोगहारका चोरा। ते परेसं भोगे अच्छिन्दित्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि एकासनिका भवन्ति। न लभन्ति कालेन कालं परिभुञ्जितुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो, नत्थि ब्रह्मचरियं। ये खो पन ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू अब्भोकासिका, नूनं ते पुब्बे ग्रामघातका चोरा। ते परेसं गेहानि विनासेत्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि अब्भोकासिका भवन्ति। न लभन्ति सेनासनानि परिभुञ्जितुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो,

---

गया। कुशल-क्षेम पूछने के बाद, एक ओर बैठ गया और बोला-"भन्ते! आप प्रव्रजित क्यों हुए? आपका परम उद्देश्य क्या था?" स्थविर बोले-"महाराज! धर्मपूर्वक तथा शान्तिपूर्वक रहने के लिए मैं प्रव्रजित हुआ हूँ।" "भन्ते! क्या कोई गृहस्थ भी है, जो धर्मपूर्वक और शान्तिपूर्वक रहता है?" "हाँ, महाराज! गृहस्थ भी धर्म और शान्तिपूर्वक रह सकता है। वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में धर्मचक्र घुमाने (धर्मोपदेश) के बाद अट्ठारह करोड़ ब्रह्मदेवों तथा दूसरे बहुत से देवताओं को भी धर्मज्ञान हो गया था। उन देवताओं में कोई भी प्रव्रजित नहीं था, अपितु सभी गृहस्थ थे। और फिर भी भगवान् के महासमयसुत्त, महामंगलसुत्त, समचित्तपरियायसुत्त, राहुलोवादसुत्त तथा पराभवसुत्तों का उपदेश करने पर जिन देवताओं को धर्मज्ञान हुआ, उनकी गणना भी नहीं की जा सकती। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं।"

"भन्ते आयुपाल! तब तो आप की प्रव्रज्या निरर्थक ही हुई। पूर्वजन्म में किये गये पापों से ही सभी बौद्ध भिक्षु प्रव्रजित हुए हैं और धुताङ्ग (द्र०-विसुद्धिमग्ग, द्वि० परि०) धारण करते हैं। भन्ते आयुपाल! जो भिक्षु एकासनिक धुताङ्ग धारण करते हैं, वे अवश्य अपने पूर्वजन्म में चोर (भोगहारक) रहे होंगे, दूसरों के भोगों को चुरा लेने के पाप के फल से ही वे ऐकासनिक हुए हैं। वे न कभी किसी एक जगह रह पाते हैं, न मन के अनुकूल कुछ खा पी सकते हैं। इसमें न उनका कुछ शील है, न तप और न ब्रह्मचर्य है। भन्ते आयुपाल! और जो भिक्षु अभ्यवकाशिक (सदा खुले स्थान ही में रहना) धुताङ्ग को धारण करते हैं, वे पहले जन्म में गाँव को नष्ट करने वाले चोर रहे होंगे, वे दूसरों के घर नष्ट करने

नत्थि ब्रह्मचरियं। ये खो पन ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू नेसज्जिका, नून ते पुब्बे पन्थदूसका चोरा। ते परेसं पथिके जने गहेत्वा बन्धित्वा निसीदापेत्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि नेसज्जिका भवन्ति। न लभन्ति सेय्यं कप्पेतुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो, नत्थि ब्रह्मचरियं'' ति आह।

एवं वुत्ते आयस्मा आयुपालो तुण्ही अहोसि। न किञ्चि पटिभासि। अथ खो पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—''पण्डितो, महाराज, थेरो। अपि च खो अविसारदो, न किञ्चि पटिभासती'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं आयुपालं तुण्हीभूतं दिस्वा अप्फोटेत्वा उक्कुट्ठिं कत्वा योनके एतदवोच— ''तुच्छो बत, भो, जम्बुदीपो! पलापो बत, भो, जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं'' ति।

१८. नागसेनस्स सागलनगरे आगमनं

२२. अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो सब्बं तं परिसं अनुविलोकेन्तस्स अभीते अमङ्कुभूते योनके दिस्वा एतदहोसि—''निस्संसयं अत्थि मञ्ञे अञ्ञो कोचि पण्डितो भिक्खु यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, योनका न मङ्कुभूता'' ति। अथ खो मिलिन्दो राजा योनके एतदवोच— ''अत्थि, भणे, अञ्ञो कोचि पण्डितो भिक्खु यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं'' ति?

तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो समणगणपरिवुतो सङ्घी गणी गणाचरियो

के पाप से ही इस जन्म में सदा खुले ही मैदान में रहते हैं, किसी घर के भीतर नहीं ठहर सकते। इसमें भी उनका कुछ शील, तप या ब्रह्मचर्य नहीं है। भन्ते आयुपाल! और जो भिक्षु सदा बैठे रहने का धुताङ्ग धारण करते हैं, वे पहले जन्म में मार्ग के लुटेरे रहे होंगे, वे यात्रियों को बाँध कर और बैठा कर छोड़ देते रहे, उसी पाप के फल से वे सदा एक स्थान पर बैठे ही रहते हैं, कभी सो नहीं सकते। उसमें भी उनका कोई शील, तप और ब्रह्मचर्य नहीं है।''

इस पर आयुष्मान् आयुपाल चुप हो गये। उन्हें कुछ नहीं सूझा। तब, पाँच सौ यवनों ने राजा मिलिन्द से कहा— ''महाराज! यह स्थविर पण्डित तो है, किन्तु ऐसा निपुण (प्रखरमति) नहीं कि आपका उत्तर दे सके।''

आयुष्मान् आयुपाल को उसी तरह मौन देख कर राजा ताली बजाते हुए उच्च स्वर में यवनों से बोल उठा—''अरे, यह जम्बूद्वीप तो तुच्छ है, विद्वानों से सर्वथा रिक्त है! यहाँ कोई ऐसा श्रमण ब्राह्मण है ही नहीं, जो मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काएँ दूर कर सके।''

१८. नागसेन का सागलनगर में आगमन— २२. यह कह राजा ने सभा में बैठे यवनों की ओर देखा, किन्तु उन्हें फिर भी निर्भीक और निःशङ्क देख मन में विचारा—''ज्ञात होता है, अवश्य कोई दूसरा पण्डित भिक्षु है, जो मेरे साथ बातें करने का उत्साह करता है, तभी ये यवन निर्भीक और निःशङ्क है।'' तब राजा मिलिन्द ने यवनों से पूछा—''क्या दूसरा भी कोई पण्डित भिक्षु है, जो मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काओं को दूर कर सकता है?''

उस समय श्रमणों के एक समूह के साथ गाँव, कस्बों और राजधानियों में भिक्षाटन (चारिका) करते आयुष्मान् नागसेन सङ्घनायक, गणनायक, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, बहुत लोगों से सम्मानित, पण्डित, चतुर, बुद्धिमान्, निपुण, विज्ञ, अनुभवी, नम्र, कुशल, बहुश्रुत, तीनों पिटकों के ज्ञाता, वेदों में

ञातो यसस्सी साधुसम्मतो बहुजनस्स पण्डितो ब्यत्तो मेधावी निपुणो विञ्ञू विभावी विनीतो विसारदो बहुस्सुतो तेपिटको वेदगू पभिन्नबुद्धिमा आगतागमो पभिन्नपटिसम्भिदो नवङ्ग-सत्थुसासने परियत्तिधरो पारमिप्पत्तो जिनवचने धम्मत्थदेसनापटिवेधकुसलो अक्खयविचित्त-पटिभानो चित्तकथी कल्याणवाक्करणो दुरासदो दुप्पसहो दुरुत्तरो दुरावरणो दुन्निवारयो, सागरो विय अक्खोभो, गिरिराजा विय निच्चलो, रणञ्जहो तमोनुदो पभङ्करो महाकथी परगणिगणमथनो परतित्थियमद्दनो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं राजूनं राजमहामत्तानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं लाभग्ग-यसग्गप्पत्तो, वुद्धानं विञ्ञूनं सोतावधानेन समन्नागतानं सन्दस्सेन्तो नवङ्गं जिनसासन-रतनं, उपदिसन्तो धम्ममग्गं, धारेन्तो धम्मप्पज्जोतं, उस्सापेन्तो धम्मयूपं, यजन्तो धम्मयागं, पग्गण्हन्तो धम्मद्धजं, उस्सापेन्तो धम्मकेतुं, धमेन्तो धम्मसङ्खं, आहनन्तो धम्मभेरिं, नदन्तो सीहनादं, गज्जन्तो इन्दगज्जितं, मधुरगिरगज्जितेन ञाणवरविज्जुजालपरिवेठितेन करुणाजलभरितेन महता धम्मामतमेघेन सकललोकमभितप्पयन्तो, गामनिगमराजधानीसु चारिकं चरमानो अनुपुब्बेन सागलनगरं अनुप्पत्तो होति।

तत्र सुदं आयस्मा नागसेनो असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। तेनाहु पोराणा—

"बहुस्सुतो चित्रकथी, निपुणो च विसारदो।
सामयिको च कुसलो, पटिभाने च कोविदो॥
"ते च तेपिटका भिक्खू, पञ्चनेकायिका पि च।

पारङ्गत, स्थिरचित्त, लोक–कथाओं को जानने वाले, भगवान् बुद्ध के शासन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों के भी ज्ञाता, पर्याप्तिधर, पारमि–प्राप्त, भगवान् के धर्म के अनुकूल देशना करने में कुशल, कभी विफल न होने वाली विचित्र प्रत्युत्पन्नमति से युक्त थे। विचित्र वक्ता, शुभ बातें बोलने वाले, अद्वितीय और अपराजेय थे। उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता था। उन्हें तर्कों से नहीं फँसाया जा सकता था। सागर के समान शान्त, हिमालय जैसे निश्चल, विजयी, अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशक, ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले, बड़े गम्भीर वक्ता, दूसरे मत वालों को पराजित करने वाले, दूसरे तैर्थिकों को हराने वाले, भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक–उपासिका, राजा और राजमन्त्री सभी से सत्कार पाने वाले, पूजा किये जाने योग्य, चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लानप्रत्यय पाने वाले, उत्तम लाभ और यश पाने वाले, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से आये हुए कुशल और विज्ञ पुरुषों को बुद्ध–धर्म के नौ रत्नों[1] को दिखाने वाले, धर्ममार्ग के उपदेशक, धर्मज्योति को धारण करने वाले, धर्म–स्तम्भ को गाड़नेवाले, धर्म–यज्ञ करने वाले, धर्मध्वज को ऊपर उठाये, धर्म–शंख और धर्मभेरी बजाते, सिंहनाद करते, बिजली के समान कड़कते, मधुरवाणी बोलते, करुणारूपी बूँदों की सुखद वर्षा करते, अपने ज्ञानरूपी विद्युत् को चमकाते, बड़े भारी धर्म–रूपी मेघ से अमृत वर्षा कर लोगों को सन्तुष्ट करते हुए सागल नगर पहुँचे थे।

वहाँ आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सङ्खेय्य परिवेण में ठहरे। कहा जाता है–

"बड़े पण्डित, वक्ता, निपुण और निर्भीक, सिद्धान्तों को जानने वाले, समझाने में चतुर नागसेन

---

१. नवरत्न– १. सुत्त, २. गेय्य, ३. वेय्याकरण, ४. गाथा, ५. उदान, ६. इतिवुत्तक, ७. जातक, ८. अभिधर्म, ९. वेदल्ल।

चतुनेकायिका चेव, नागसेनं पुरक्खरुं॥
''गम्भीरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस्स कोविदो।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तो, नागसेनो विसारदो॥
''तेहि भिक्खूहि परिवुतो, निपुणेहि सच्चवादिहि।
चरन्तो गामनिगमं, सागलं उपसङ्कमि॥
''सङ्खेय्यपरिवेणस्मिं, नागसेनो तदा वसि।
कथेति सो मनुस्सेहि, पब्बते केसरो यथा'' ति॥

१९. नागसेनेन मिलिन्दस्स पठमसमागमो

२३. अथ खो देवमन्तियो राजानं मिलिन्दं एतदवोच—''आगमेहि त्वं, महाराज! अत्थि, महाराज, नागसेनो नाम थेरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी विनीतो विसारदो बहुस्सुतो चित्रकथी कल्याणपटिभानो अत्थधम्मनिरुत्तिपटिभानपटिसम्भिदासु पारमिप्पत्तो....।'' सो एतरहि सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। गच्छ त्वं, महाराज, आयस्मन्तं नागसेनं पञ्हं पुच्छस्सु। उस्सहति सो तया सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं'' ति। अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो सहसा 'नागसेनो' ति सद्दं सुत्वा व अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच—''उस्सहति सो नागसेनो भिक्खु मया सद्धिं सल्लपितुं'' ति? ''उस्सहति, महाराज; अपि इन्दयमवरुणकुबेरप्रजापतिसुयामसन्तुसितलोकपालेहि पि पितुपितामहेन महाब्रह्मुना पि सद्धिं सल्लपितुं, किमङ्ग, पन मनुस्सभूतेना'' ति!

अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच— ''तेन हि त्वं, देवमन्तिय, भदन्तस्स

को त्रिपिटक के जानने वाले, पाँच और चार निकायों के जानने वाले उन भिक्षुओं ने अपना अगुआ (अग्र) मान लिया था।

"गम्भीरप्रज्ञ, मेधावी, सन्मार्ग और कुमार्ग के ज्ञाता, निर्भय नागसेन ने परम तत्त्वज्ञान पा लिया था।

"वे उन निपुण सत्यवादी भिक्षुओं के साथ गाँव और जनपदों में घूमते हुए सागल नगर पहुँचे थे।।

उस समय नागसेन सङ्खेय्य परिवेण में ठहरे थे। वे पर्वत पर केसरी (सिंह) की तरह मनुष्यों के बीच शोभायमान थे" ।।

१९. आयुष्मान् नागसेन से राजा मिलिन्द की पहली भेंट— २३. तब देवमन्त्री (मन्त्रिप्रमुख) ने राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज, आँवें! नागसेन नाम के एक स्थविर पण्डित ....पूर्ववत्.... हैं। वे इस समय संखेय्य परिवेण में ठहरे हैं। महाराज! आप उनके पास चलें और प्रश्न पूछें। आपके साथ बातें करके आपकी शङ्काएँ दूर करने के लिये वे सन्नद्ध हैं।" सहसा नागसेन का नाम सुनकर राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो गया। तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से पूछा—"वह नागसेन भिक्षु मेरे साथ बातें करने को तैयार है?" "हाँ, महाराज! तैयार हैं। यदि इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, प्रजापति, सुयाम, सन्तुषित देव, लोकपाल और पिता, पितामह आदि के साथ महाब्रह्मा भी आवें तो भी नागसेन उनसे बातें कर सकते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या!!"

तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"तो देवमन्त्रिन्! उनके पास दूत भेज कर उन्हें

सन्तिके दूतं पेसेही'' ति। ''एवं, देवा'' ति खो देवमन्तियो आयस्मतो नागसेनस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—''राजा, भन्ते, मिलिन्दो आयस्मन्तं दस्सनकामो'' ति। आयस्मा पि खो नागसेनो एवमाह—''तेन हि आगच्छतू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चमत्तेहि योनकसतेहि परिवुतो रथवरमारुय्ह महता बलकायेन सद्धिं येन सङ्खेय्यपरिवेणं येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं मण्डलमाले निसिन्नो होति। अद्दसा खो मिलिन्दो राजा आयस्मतो नागसेनस्स परिसं दूरतो व। दिस्वान देवमन्तियं एतदवोच— ''कस्सेसा, देवमन्तिय, महती परिसा'' ति? ''आयस्मतो खो, महाराज, नागसेनस्स परिसा'' ति।

अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो आयस्मतो नागसेनस्स परिसं दूरतो व दिस्वा अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। अथ खो मिलिन्दो राजा खग्गपरिवारितो विय गजो, गरुळपरिवारितो विय नागो, अजगरपरिवारितो विय कोत्थुको, महिंसपरिवुतो विय अच्छो, नागानुबन्धो विय मण्डूको, सद्दूलानुबद्धो विय मिगो, अहितुण्डिकसमागतो विय पन्नगो, मज्जारसमागतो विय उन्दूरो, भूतवेज्जसमागतो विय पिसाचो, राहुमुखगतो विय चन्दो, पन्नगो विय पेळन्तरगतो, सकुणो विय पञ्जरन्तरगतो, मच्छो विय जालन्तरगतो, वाळवन-मनुप्पविट्ठो विय पुरिसो, वेस्सवणापराधिको विय यक्खो, परिक्खीणायुको विय देवपुत्तो, भीतो उब्बिग्गो उत्रस्तो संविग्गो लोमहट्ठजातो विमनो दुम्मनो भन्तचित्तो विपरिणतमानसो ''मा मं अयं परियोजनो परिभवी'' ति सतिं उपट्ठपेत्वा देवमन्तियं एतदवोच— ''मा खो त्वं, देवमन्तिय, आयस्मन्तं नागसेनं मय्हं आचिक्खेय्यासि। अनक्खातञ्ञेवाहं नागसेनं जानिस्सामी'' ति। ''साधु, महाराज, त्वञ्ञेव जानाही'' ति।

सूचित कर दो कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।'' ''देव ! बहुत अच्छा''—कह कर देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन के पास दूत भेजा—''भन्ते! राजा मिलिन्द आपसे मिलना चाहते हैं।'' आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर दिया—''अच्छा तो राजा आवें।''

तब, राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो, भारी सेना के साथ संखेय्य परिवेण में आकर जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया। उस समय आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सभागृह (मण्डलमाल) में बैठे थे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को देखा। दूर ही से देख देवमन्त्री से कहा— ''देवमन्त्रिन्! यह इतनी बड़ी परिषद् किसकी है?'' ''महाराज ! आयुष्मान् नागसेन की यह परिषद् है।''

तब, आयुष्मान् नागसेन की उस परिषद् को दूर से ही देख राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो आया। गैंड़ों से घिरे हाथी की तरह, गरुड़ से घिरे साँप की तरह, अजगर से घिरे सियार की तरह, महिषों से घिरे भालू की तरह, साँप से पीछा किये गए मेंढ़क की तरह, सिंह द्वारा पीछा किये गये हरिण की तरह, सपेरे के हाथों में आये साँप की तरह, बिल्ली की पकड़ में आये हुए चूहे की तरह, ओझा से बाँधे गये भूत की तरह, राहु से ग्रसित चन्द्रमा की तरह, पिटारी में बन्द साँप की तरह, पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह, जाल में पड़ी मछली की तरह, हिंसक पशुओं से भरे जंगल में भटके मनुष्य की तरह, वैश्रवण (कुबेर) के प्रति अपराध किये यक्ष की तरह तथा आयु समाप्त हुए देवता की तरह राजा मिलिन्द घबरा कर, चिन्तित, उदास तथा खिन्न हो गया। ''मुझे यह कहीं हरा

तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो तस्सा भिक्खुपरिसाय पुरतो चत्तालीसाय भिक्खुसहस्सानं नवकतरो होति, पच्छतो चत्तालीसाय भिक्खुसहस्सानं वुड्ढतरो। अथ खो मिलिन्दो राजा सब्बं तं भिक्खुसङ्घं पुरतो च पच्छतो च मज्झतो च अनुविलोकेन्तो अद्दसा खो आयस्मन्तं नागसेनं दूरतो व भिक्खुसङ्घस्स मज्झे निसिन्नं केसरसीहं विय विगतभयभेरवं विगतलोमहंसं विगतभयसारज्जं। दिस्वान आकारेनेव अञ्ञासि— "एसो खो एत्थ नागसेनो" ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच— "एसो खो, देवमन्तिय, आयस्मा नागसेनो" ति?

"आम, महाराज, एसो खो नागसेनो। सुट्ठु खो त्वं, महाराज, नागसेनं अञ्ञासी" ति। ततो राजा तुट्ठो अहोसि— "अनक्खातो व मया नागसेनो अञ्ञातो" ति! अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो आयस्मन्तं नागसेनं दिस्वा व अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। तेनाहु—

"चरणेन च सम्पन्नं, सुदन्तं उत्तमे दमे।
दिस्वा राजा नागसेनं, इमं वचनमब्रवि।
"कथिता मया बहू दिट्ठा, साकच्छा ओसटा बहू।
न तादिसं भयं आसि, अज्ज तासो यथा मम॥
"निस्संसयं पराजयो, मम अज्ज भविस्सति।
जयो च नागसेनस्स, यथा चित्तं न सण्ठितं ति॥

बाहिरकथा निट्ठिता॥

न दे"—ऐसे शङ्कित हो उसने देवमन्त्री से कहा— "देवमन्त्रिन्! आप मुझे न बतावें कि आयुष्मान् नागसेन कौन से हैं। बिना बताये ही मैं उन्हें जान लूँगा।" "महाराज! बहुत अच्छा! आप उन्हें स्वयं पहचानें।"

उस समय आयुष्मान् नागसेन सामने बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से कम आयु के और पीछे बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से अधिक आयु के थे। तब, राजा मिलिन्द ने सारे भिक्षुसङ्घ को आगे, पीछे और बीच में देखते हुए, आयुष्मान् नागसेन को भिक्षुसङ्घ के बीच में केसरी सिंह की तरह निर्भय होकर स्थिर भाव से बैठे देखा। उन्हें देख उनकी आकृति से ही जान लिया कि "यही आयुष्मान् नागसेन हैं।"

तब राजा मिलिन्द ने देवमन्त्रिन् से कहा— "देवमन्त्री! क्या ये ही आयुष्मान् नागसेन हैं?"

"जी हाँ, महाराज! आयुष्मान् नागसेन यही हैं। आपने नागसेन को ठीक पहचान लिया।" राजा को यह देख बहुत सन्तोष हुआ कि "बिना बताये मैंने नागसेन को पहचान लिया"। किन्तु आयुष्मान् नागसेन को देख राजा को भय होने लगा, गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो आया। इसीलिये कहा है—

"ज्ञानसम्पन्न और उत्तम संयमों में अभ्यस्त आयुष्मान् नागसेन को देख राजा बोल उठा—

"मैंने बहुत वक्ताओं को देखा है, उनमें से अनेक से शास्त्रचर्चा भी की है, किन्तु मुझे ऐसा भय कभी नहीं हुआ, जैसा आज हो रहा है॥

"(अतः) आज अवश्य मेरी पराजय होगी और नागसेन जीत जाँयगें, क्योंकि मेरा चित्त चञ्चल हो रहा है॥"

बाह्यकथा समाप्त॥

२. मिलिन्दपञ्हे

(क) लक्खणपञ्हो

१. महावग्गो

१. रथूपमाय पुग्गलवीमंसनं

१. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मता नागसेनेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। आयस्मा पि खो नागसेनो पटिसम्मोदनीयेनेव मिलिन्दस्स रञ्ञो चित्तं आराधेसि।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"कथं भदन्तो ञायति—किंनामोसि, भन्ते" ति? "नागसेनो ति खो अहं, महाराज, ञायामि। 'नागसेनो' ति खो मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ति। अपि च मातापितरो नामं करोन्ति—'नागसेनो' ति वा 'सूरसेनो' ति वा 'वीरसेनो' ति वा 'सीहसेनो' ति वा। अपि च खो, महाराज, सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं यदिदं नागसेनो' ति। न हेत्थ पुग्गलो उपलब्भती" ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा एवमाह—"सुणन्तु मे, भोन्तो पञ्चसता योनका, असीतिसहस्सा च भिक्खू! अयं नागसेनो एवमाह—'न हेत्थ पुग्गलो उपलब्भती' ति। कल्लं नु खो तदभिनन्दितुं" ति? अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"सचे, भन्ते नागसेन, पुग्गलो नूपलब्भति, को चरहि तुम्हाकं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं देति? को तं परिभुञ्जति? को सीलं रक्खति? को भावनमनुयुञ्जति? को मग्गफलनिब्बानानि

---

२. मिलिन्दप्रश्न

(क) लक्षणप्रश्न

१. महावर्ग

१. पुद्‌गलप्रश्नमीमांसा— १. तब राजा मिलिन्द आयुष्मान् नागसेन के पास गया और उन्हें प्रणाम तथा अभिवादन करने के बाद, एक ओर बैठ गया। आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर में राजा का अभिनन्दन किया। उससे राजा के चित्त को सान्त्वना मिली।

तब, राजा मिलिन्द ने नागसेन से पूछा—"भन्ते! आप किस नाम से जाने जाते हैं, आपका शुभ नाम?" "महाराज! 'नागसेन' नाम से मैं जाना जाता हूँ और मेरे सब्रह्मचारी (गुरुभाई) भी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। महाराज! यद्यपि माता-पिता नागसेन, शूरसेन, वीरसेन या सिंहसेन—ऐसा कुछ नाम दे देते हैं, किन्तु ये सभी केवल व्यवहार करने के लिये संज्ञामात्र हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुद्‌गल (आत्मा) नहीं है।"

तब, राजा मिलिन्द बोला—'मेरे पाँच सौ यवन और अस्सी हजार भिक्षुओ! आप लोग सुनें! आयुष्मान् नागसेन का कहना है—'यथार्थ में कोई एक पुद्‌गल नहीं है।'—क्या यह बात मानने योग्य है?" और फिर नागसेन से पूछा—"भन्ते नागसेन! यदि कोई एक पुद्‌गल नहीं है तो कौन आप को चीवर (वस्त्र), भिक्षा (पिण्डपात), शयनासन (वासस्थान) और ग्लानप्रत्यय (औषध) देता है? कौन उसका भोग

सच्छिकरोति ? को पाणं हनति ? को अदिन्नं आदियति ? को कामेसु मिच्छाचारं चरति ? को मुसा भणति ? को मज्जं पिवति ? को पञ्चानन्तरियकम्मं करोति ? तस्मा नत्थि कुसलं, नत्थि अकुसलं, नत्थि कुसलाकुसलानं कम्मानं कत्ता वा कारेता वा, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। सचे, भन्ते नागसेन, यो तुम्हे मारेति, नत्थि तस्सापि पाणातिपातो। तुम्हाकं पि, भन्ते नागसेन, नत्थि आचरियो, नत्थि उपज्झायो, नत्थि उपसम्पदा। 'नागसेनो ति मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ती' ति यं वदेसि, कतमो एत्थ नागसेनो''?

''किन्नु खो, भन्ते, केसा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''लोमा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति।

''नखा.... दन्ता.... तचो.... मंसं.... न्हारु.... अट्ठि.... अट्ठिमिञ्जं.... वक्कं.... हदयं.... यकनं.... किलोमकं.... पिहकं.... पप्फासं.... अन्तं.... अन्तगुणं.... उदरियं.... करीसं.... पित्तं.... सेम्हं.... पुब्बो.... लोहितं.... सेदो.... मेदो.... अस्सु.... वसा.... खेळो.... सिङ्घाणिका.... लसिका.... मुत्तं.... मत्थके मत्थलुङ्गं नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''किन्नु खो, भन्ते, रूपं नागसेनो'' ति? ''न हिं, महाराजा'' ति। ''वेदना नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''सञ्ञा नागसेनो'' ति?''न हि, महाराजा' ति। ''सङ्खारा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''विञ्ञाणं नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''किं पन, भन्ते, रूपवेदनासञ्ञासङ्खारविञ्ञाणं नागसेनो'' ति?''न हि, महाराजा'' ति।''किं पन, भन्ते, अञ्ञत्र रूपवेदनासञ्ञासङ्खारविञ्ञाणं नागसेनो'' ति?''न हि, महाराजा'' ति। ''तमहं, भन्ते, पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि नागसेनं। नागसेनसद्दो येव नु खो, भन्ते,

---

करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान–भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्ग (अष्टाङ्गिक मार्ग) के फल (निर्वाण) का साक्षात्कार करता है? कौन प्राणातिपात (हिंसा) करता है? कौन अदत्तादान (चोरी) करता है? कौन मिथ्या भोगों में अनुरक्त होता है? कौन मिथ्या भाषण करता है? कौन मद्य पीता है? कौन इन पाँच अन्तरायकारक (१. मातृवध, २. पितृवध, ३. अर्हत्–वध, ४. बुद्धशरीर से रक्त बहाना, ५. सङ्घ में फूट पैदा करना) कर्मों को करता है? तब तो न पाप है, न पुण्य और न पाप और पुण्य कर्मों का कोई करने वाला है और न कराने वाला; न पाप और पुण्य कर्मों के कोई फल होते हैं? भन्ते नागसेन! यदि आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। भन्ते नागसेन! तब आपके कोई आचार्य भी नहीं हुए, उपाध्याय भी नहीं हुए और न आपकी उपसम्पदा हुई! आप कहते हैं कि आपके सब्रह्मचारी आपको 'नागसेन' नाम से पुकारते हैं; तो यह नागसेन क्या है?

"भन्ते! ये केश नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "ये रोएँ नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!"

"ये नख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा(=तिल्ली), फुप्फुस, बड़ी आँत, पतली आँत, पेट, मल, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, लार, सिणक, लसीका, मस्तिष्क या मूत्र नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! तब क्या आपका रूप नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "क्या आपकी वेदनाएँ नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "आपकी संज्ञा नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "आपके संस्कार नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "आपका विज्ञान नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! क्या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी एक साथ नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन हैं?" "नहीं,

नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति।''को पनेत्थ नागसेनो? अलिकं त्वं, भन्ते, भाससि मुसावादं, नत्थि नागसेनो'' ति?

अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच—''त्वं खोसि, महाराज, खत्तियसुखुमालो अच्चन्तसुखुमालो। तस्स ते, महाराज, मज्झन्हिकसमयं तत्ताय भूमिया उण्हाय वालिकाय खराय सक्खरकथलिकाय मद्दित्वा पादेनागच्छन्तस्स पादा रुज्जन्ति, कायो किलमति, चित्तं उपहञ्ञति, दुक्खसहगतं कायविञ्ञाणं उप्पज्जति। किन्नु खो त्वं पादेनागतोसि, उदाहु वाहनेना'' ति?

''नाहं भन्ते, पादेनागच्छामि। रथेनाहं आगतोस्मी'' ति। ''सचे त्वं, महाराज, रथेनागतोसि, रथं मे आरोचेहि। किन्नु खो, महाराज, ईसा रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''अक्खो रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''चक्कानि रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''रथपञ्जरं रथो'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''रथदण्डको रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''युगं रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''रस्मियो रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''पतोदलट्ठि रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किन्नु खो, महाराज, ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदा रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किं पन, महाराज, अञ्ञत्र ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदा रथो'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।

''तमहं, महाराज, पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि रथं। रथसद्दो येव नु खो, महाराज, रथो'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''को पनेत्थ रथो? अलिकं त्वं, महाराज, भाससि मुसावादं, नत्थि रथो। त्वंसि, महाराज सकलजम्बुदीपे अग्गराजा। कस्स पन त्वं भायित्वा मुसावादं भाससि? सुणन्तु मे, भोन्तो पञ्चसता योनका, असीतिसहस्सा च भिक्खू! अयं मिलिन्दो राजा

महाराज!'' ''भन्ते! मैं आपसे पूछते–पूछते थक गया, किन्तु 'नागसेन' क्या है—इसका पता नहीं लगा। तो क्या 'नागसेन' केवल शब्दमात्र है?'' ''नहीं, महाराज!'' ''अन्ततः नागसेन है कौन? भन्ते! आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है।''

तब, आयुष्मान् नागसेन ने राजा मिलिन्द से कहा—''महाराज! आप क्षत्रिय बहुत ही सुकुमार होते हैं। इस दोपहर की तपी और गर्म बालू तथा कंकड़ों से भरी भूमि पर पैदल चल कर आने से आपके पैर दुख रहे होंगे, शरीर थक गया होगा, मन को कुछ भी अच्छा नहीं लगता होगा और अत्यधिक शारीरिक पीड़ा हो रही होगी? क्या आप पैदल चल कर यहाँ आये या किसी यान (सवारी) पर?''

''भन्ते! मैं पैदल नहीं, किन्तु रथ पर आया।'' ''महाराज! यदि आप रथ पर आये तो मुझे बतावें कि आपका रथ कहाँ है? महाराज! क्या ईषा (दण्ड) रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्या अक्ष रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्या चक्के रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्या रथ की रस्सियाँ रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!' ''क्या लगाम रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्या चाबुक रथ है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! ईषा इत्यादि सभी क्या एक साथ रथ हैं?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! क्या ईषा इत्यादि के परे कहीं रथ हैं?'' ''नहीं, भन्ते!''

''महाराज! आपसे पूछते–पूछते मैं तो थक गया, किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है! क्या रथ केवल एक शब्दमात्र है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''अन्ततः यह रथ है क्या? महाराज आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है! महाराज! सारे जम्बूद्वीप में आप सब से बड़े राजा हैं; भला किस से डर कर आप

एवमाह—'रथेनाहं आगतोस्मी' ति। 'सचे त्वं, महाराज, रथेनागतोसि, रथं मे आरोचेही' ति वुत्तो समानो रथं न सम्पादेति। कल्लं नु खो तदभिनन्दितुं'' ति?

एवं वुत्ते, पञ्चसता योनका आयस्मतो नागसेनस्स साधुकारं दत्वा मिलिन्दं राजानं एतदवोचुं-''इदानि खो, त्वं, महाराज, सक्कोन्तो भासस्सू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''नाहं, भन्ते नागसेन, मुसा भणामि। ईसं च पटिच्च, चक्कानि च पटिच्च, रथपञ्जरं च पटिच्च, रथदण्डकं च पटिच्च 'रथो' ति सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं पवत्तती'' ति।

''साधु खो त्वं, महाराज, रथं जानासि। एवमेव खो, महाराज, मय्हं पि केसे च पटिच्च, लोमे च पटिच्च.... मत्थके मत्थलुङ्गं च पटिच्च, वेदनं च पटिच्च, सञ्ञं च पटिच्च, सङ्खारे च पटिच्च, विञ्ञाणं च पटिच्च, 'नागसेनो' ति सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं। परमत्थतो पनेत्थ पुग्गलो नूपलब्भति। भासितं पेतं, महाराज, वजिराय भिक्खुनिया भगवतो सम्मुखा-

'यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो ति सम्मुति' '' ति॥ *(सं. नि. ५/१०/६)*

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं भन्ते नागसेन! अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानि। यदि बुद्धो तिट्ठेय्य साधुकारं ददेय्य—'साधु साधु, नागसेन, अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानी' '' ति।

२. वस्सगणनपञ्हो

२. ''कतिवस्सो सि त्वं, भन्ते नागसेना'' ति? ''सत्तवस्सो हं, महाराजा'' ति। ''के ते, भन्ते, सत्त? त्वं वा सत्त, गणना वा सत्ता'' ति?

झूठ बोलते हैं? पाँच सौ यवनों और मेरे अस्सी हजार भिक्षुओ! आप लोग सुनें! राजा मिलिन्द ने कहा—'मैं रथ पर यहाँ आया' ; किन्तु मेरे पूछने पर कि 'महाराज! आप रथ पर आये तो मुझे बतायें कि रथ कहाँ है?'— ये मुझे कुछ नहीं बता पाते। क्या इनकी बातें मानी जा सकती हैं?"

इस पर उन पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान् नागसेन को साधुकार देकर राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज! यदि आप उत्तर दे सकें तो दें।"

तब, राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"भन्ते नागसेन! मैं झूठ नहीं बोलता। ईषा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'रथ' ऐसा एक नाम कहा जाता है।"

"महाराज! बहुत ठीक, आपने जान लिया कि रथ क्या है! इसी तरह मेरे केश इत्यादि के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'नागसेन' ऐसा एक नाम कहा जाता है। किन्तु, परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुद्गल विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वजा ने भगवान् के सामने कहा था—

'जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से एक सत्त्व (=जीव) समझा जाता है।'

"भन्ते नागसेन! यह तो बहुत आश्चर्य हुआ! बहुत अद्भुत हुआ!! इस जटिल प्रश्न को आपने बड़ी कुशलता से सुलझा दिया। यदि इस समय भगवान् बुद्ध स्वयं होते तो वे भी अवश्य साधुवाद देते—'साधु, साधु नागसेन! तुम ने इस जटिल प्रश्न को बड़ी कुशलता के साथ सुलझा दिया'।"

तेन खो पन समयेन मिलिन्दस्स रञ्ञो सब्बाभरणपटिमण्डितस्स अलङ्कतपटियत्तस्स पथवियं छाया दिस्सति, उदकमणिके च छाया दिस्सति। अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच– "अयं ते, महाराज, छाया पथवियं उदकमणिके च दिस्सति। किं पन, महाराज, त्वं वा राजा, छाया वा राजा" ति? "अहं, भन्ते नागसेन, राजा, नायं छाया राजा। मं पन निस्साय छाया पवत्तती" ति। "एवमेव खो, महाराज, वस्सानं गणना सत्त। न पनाहं सत्त। मं पन निस्साय सत्त पवत्तति छायूपमं, महाराजा" ति। "अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन! अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानी" ति।

३. वीमंसनपञ्हो

३. राजा आह–"भन्ते नागसेन, सल्लपिस्ससि मया सद्धिं" ति? "सचे त्वं, महाराज, पण्डितवादं सल्लपिस्ससि, सल्लपिस्सामि; सचे पन राजवादं सल्लपिस्ससि, न सल्लपिस्सामी" ति। "कथं, भन्ते नागसेन, पण्डिता सल्लपन्ती" ति? "पण्डितानं खो, महाराज, सल्लापे आवेठनं पि कयिरति, निब्बेठनं पि कयिरति, निग्गहो पि कयिरति, परिकम्मं पि कयिरति, विस्सासोपि कयिरति, पटिविस्सासो पि कयिरति। न च तेन पण्डिता कुप्पन्ति। एवं खो, महाराज, पण्डिता सल्लपन्ती" ति। "कथं पन, भन्ते, राजानो सल्लपन्ती" ति? "राजानो खो, महाराज, सल्लापे एकं वत्थुं पटिजानन्ति। यो तं वत्थुं विलोमेति, तस्स दण्डं आणापेन्ति–'इमस्स दण्डं पणेथा' ति। एवं खो, महाराज, सल्लपन्ती" ति।

---

२. आयुर्विषयक प्रश्न– २. "भन्ते नागसेन! आप कितने वर्ष के हैं?" "महाराज! मैं सात वर्ष (जन्म से नहीं, किन्तु भिक्षु होने के बाद से) का हूँ।" "भन्ते! यहाँ सात क्या है? क्या आप सात हैं या केवल गणना सात है?"

उस समय, सभी आभरणों से युक्त राजा मिलिन्द की छाया पृथ्वी पर पड़ रही थी और जलपात्र में भी प्रतिबिम्बित हो रही थी। उसे दिखा कर आयुष्मान् नागसेन ने पूछा–"महाराज! यह आपकी छाया पृथ्वी पर पड़ रही है और जलपात्र में प्रतिबिम्बित हो रही है। तो महाराज! क्या आप राजा हैं या छाया राजा है?" "भन्ते नागसेन! मैं राजा हूँ, यह छाया नहीं। किंतु छाया मेरे ही कारण पड़ रही है।" "महाराज! इस तरह, वर्षों की गिनती सात है, मैं सात नहीं; किन्तु मेरे कारण ही यह सात (वर्षों की) गिनती हुई, ठीक आपकी छाया की तरह।" "भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है!! आपने इस जटिल प्रश्न को भी अत्यधिक सरलता से सुलझा दिया।

३. शास्त्रचर्चापद्धतिनिर्णय– ३. राजा बोला–"भन्ते नागसेन! क्या आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करेंगे?" "महाराज! यदि आप पण्डितों (पण्डितवाद) की तरह शास्त्रार्थ करेंगे तो अवश्य करूँगा; और यदि राजाओं (राजवाद) की तरह शास्त्रार्थ करेंगे तो नहीं करूँगा।" "भन्ते नागसेन! किस तरह पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते हैं?" "महाराज! पण्डित शास्त्रार्थ में एक दूसरे को तर्कों से लपेट लेता है, एक दूसरे के निग्रह खोल देता है, एक दूसरे को तर्कों से पकड़ लेता है, एक दूसरे की पकड़ से छूट जाता है। एक दूसरे के सामने तर्क रखता है, दूसरा उसका खण्डन कर देता है। किन्तु, यह सब होने पर भी कोई क्रोध नहीं करता। महाराज! इस तरह पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते है" "भन्ते! राजा लोग कैसे शास्त्रार्थ करते हैं?" "महाराज! राजाओं के शास्त्रार्थ में यदि कोई राजा का खण्डन करता है तो उसे तत्काल दण्ड दिया जाता है–इसे ऐसा दण्ड दो। महाराज! इसी तरह राजा लोग शास्त्रार्थ करते हैं।" "भन्ते! मैं पण्डितों की तरह शास्त्रार्थ करूँगा, राजाओं की तरह नहीं। आप विश्वासपूर्वक शास्त्रार्थ करें; जैसे

''पण्डितवादाहं, भन्ते, सल्लपिस्सामि, नो राजवादं; विस्सत्थो भदन्तो सल्लपितुं। यथा भिक्खुना वा सामणेरेन वा उपासकेन वा आरामिकेन वा सद्धिं सल्लपितुं, एवं विस्सत्थो भदन्तो सल्लपितु, मा भायतू'' ति। ''सुट्ठु, महाराजा'' ति थेरो अब्भनुमोदि।

राजा आह—''भन्ते नागसेन, पुच्छिस्सामी'' ति।''पुच्छ, महाराजा'' ति।''पुच्छितोसि मे, भन्ते'' ति।''विसज्जितं, महाराजा'' ति। ''किं पन, भन्ते, तया विसज्जितं'' ति?''किं पन, महाराज, तया पुच्छितं'' ति!

४. अनन्तकायपञ्हो

४. अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि—''पण्डितो खो अयं भिक्खु, पटिबलो मया सद्धिं सल्लपितुं। बहुकानि च मे ठानानि पुच्छितब्बानि भविस्सन्ति। याव अपुच्छितानि येव तानि ठानानि भविस्सन्ति। अथ सुरियो अत्थं गमिस्सति, यन्नूनाहं स्वे अन्तेपुरे सल्लपेय्यं'' ति। अथ खो राजा देवमन्तियं एतदवोच—''तेन हि त्वं, देवमन्तिय, भदन्तस्स आरोचेय्यासि—'स्वे अन्तेपुरे रञ्ञा सद्धिं सल्लापो भविस्सती' '' ति। इदं वत्वा मिलिन्दो राजा उट्ठायासना थेरं नागसेनं आपुच्छित्वा रथं अभिरूहित्वा 'नागसेनो, नागसेनो' ति सज्झायं करोन्तो पक्कामि। अथ खो देवमन्तियो आयस्मन्तं एतदवोच—''राजा, भन्ते, मिलिन्दो एवमाह—'स्वं अन्तेपुरे रञ्ञा सद्धिं सल्लापो भविस्सती'' ति।''सुट्ठू'' ति थेरो अब्भनुमोदि।

अथ खो तस्मा रत्तिया अच्चयेन देवमन्तियो च अनन्तकायो च मङ्कुरो च सब्बदिन्नो च येन मिलिन्दो राजा तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—''आगच्छतु, महाराज, भदन्तो नागसेनो'' ति? ''आम, आगच्छतू'' ति। ''कित्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू'' ति? ''यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू'' ति।

आप किसी भिक्षु के साथ या श्रामणेर के साथ या उपासक के साथ या आराम (आश्रम) में रहने वाले किसी के साथ बातें करते हैं, उसी तरह पूरे विश्वास से मेरे साथ शास्त्रार्थ करें, डरें नहीं।" "बहुत अच्छा" कहकर स्थविर ने स्वीकार किया।

राजा बोला—"भन्ते! मैं पूछता हूँ!" "महाराज पूछें।" "भन्ते! मैंने तो पूछ लिया।" "महाराज! तो मैंने उसका उत्तर भी दे दिया।" "भन्ते! आपने क्या उत्तर दिया?" "महाराज! आपने क्या पूछा!"

४. अनन्तकायप्रश्न— ४. तब राजा मिलिन्द के मन में यह बात आयी—"अरे! यह भिक्षु तो पण्डित है, मुझसे शास्त्रार्थ कर सकता है। मुझे बहुत कुछ पूछना है; किन्तु शीघ्र ही सूरज डूबने वाला है। अच्छा हो, यदि कल मेरे राजमहल में ही शास्त्रार्थ हो।" यह विचार कर राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्रिन्! अब आप भन्ते से कह दें कि कल राजभवन में ही शास्त्रार्थ होगा।" यह कह राजा मिलिन्द आसन से उठ कर, स्थविर नागसेन से आज्ञा ले कर, रथ पर सवार हो, मन में नागसेन के ही विषय में सोचते हुए चला गया। तब, देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"भन्ते! राजा मिलिन्द की इच्छा है कि कल राज-भवन में ही शास्त्रचर्चा होगी।" "बहुत अच्छा"— कह स्थविर ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही देवमन्त्री, अनन्तकाय, मङ्कुर और सब्बदिन्न राजा मिलिन्द के पास गये और बोले— "महाराज! क्या आज भदन्त नागसेन आवें?" "हाँ आवें।" "कितने भिक्षुओं के साथ?" "जितने चाहे उतनों के साथ आवें।"

अथ खो सब्बदिन्नो आह—"आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति? दुतियं पि खो राजा आह—"यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति। दुतियं पि खो सब्बदिन्नो आह—"आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति? ततियं पि खो राजा आह— "यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति। ततियं पि खो सब्बदिन्नो आह— "आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति। "सब्बो पनायं सक्कारो पटियादितो। अहं भणामि—'यत्तके भिक्खू इच्छति, तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू' ति। अयं, भणे, सब्बदिन्नो अञ्ञथा भणति। किन्नु मयं नप्पटिबला भिक्खूनं भोजनं दातुं" ति! एवं वुत्ते सब्बदिन्नो मङ्कु अहोसि।

अथ खो देवमन्तियो च अनन्तकायो च मङ्कुरो च येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोचुं—"राजा, भन्ते, मिलिन्दो एवमाह—'यत्तके भिक्खू इच्छति, तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं सागलं पाविसि।

अथ खो अनन्तकायो आयस्मन्तं नागसेनं निस्साय गच्छन्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— "भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'नागसेनो' ति, कतमो एत्थ नागसेनो" ति? थेरो आह— "को पनेत्थ 'नागसेनो' ति मञ्ञसी" ति? "यो सो, भन्ते, अब्भन्तरे वातो जीवो पविसति च निक्खमति च सो 'नागसेनो' ति मञ्ञामी" ति। "यदि पनेसो वातो निक्खमित्वा नप्पविसेय्य, पविसित्वा न निक्खमेय्य, जीवेय्य नु खो सो पुरिसो" ति? "न हि, भन्ते" ति। "ये पनिमे सङ्खधमका सङ्खं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती" ति? "न हि,

---

तब, सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" दूसरी बार भी राजा ने कहा— "जितने चाहें उतनों के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ ही आवें।" तीसरी बार भी राजा ने कहा— "जितने चाहें उतनों के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" राजा ने कहा—"उनके स्वागत के लिये सभी व्यवस्था कर ली गयी है। मैं कहता हूँ—जितने चाहें उतने भिक्षुओं के साथ वे पधारे। सब्बदिन्न 'दस' ही क्यों कहते हैं ? क्या हम लोग भिक्षुओं को भोजन नहीं दे सकते?" तब, सब्बदिन्न चुप हो गये।

तब, देवमन्त्री, अनन्तकाय, मङ्कुर आयुष्मान् नागसेन के पास जाकर बोले—"भन्ते! राजा मिलिन्द ने कहा है कि आप जितने भिक्षुओं को चाहें उतनों को साथ लेकर पधारें।"

तब, आयुष्मान् नागसेन ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही वस्त्र पहन और पात्र चीवर ले अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सागलनगर में प्रवेश किया।

उस समय आयुष्मान् के साथ चलते हुए अनन्तकाय ने पूछा—"भन्ते! जब मैं 'नागसेन' ऐसा कहता हूँ तो यह 'नागसेन' है क्या?" स्थविर बोले—"आप 'नागसेन' से क्या समझते हैं?" "भन्ते! जो जीव–वायु भीतर–बाहर जाती आती है, उसी को मैं 'नागसेन' समझता हूँ।" "यदि यह जीव वायु भीतर जा कर बाहर न आवे या बाहर आकर भीतर न जाय तो वह पुरुष जीयेगा या नहीं?" "नहीं, भन्ते!" "जो ये सङ्ख बजाने वाले सङ्ख बजाते हैं उनकी फूँक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है?"

भन्ते'' ति। ''ये पनिमे वंसधमका वंसं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''ये पनिमे सिङ्गधमका सिङ्गं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''अथ किस्स पन ते न मरन्ती'' ति? ''नाहं पटिबलो तया वादिना सद्धिं सल्लपितुं! साधु, भन्ते, अत्थं जप्पेही'' ति। ''नेसो जीवो। अस्सासपस्सासा नामेते कायसङ्खारा'' ति। थेरो अभिधम्मकथं कथेसि। अथ अनन्तकायो उपासकत्तं पटिवेदेसी'' ति।

५. पब्बज्जपञ्हो

५. अथ खो आयस्मा नागसेनो येन मिलिन्दस्स रञ्ञो निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं सपरिसं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा एकमेकं भिक्खुं एकमेकेन दुस्सयुगेन अच्छादेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं तिचीवरेन अच्छादेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''भन्ते नागसेन, दसहि भिक्खूहि सद्धिं इध निसीदथ, अवसेसा गच्छन्तू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं विदित्वा अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''भन्ते नागसेन, किम्हि होति कथासल्लापो'' ति? ''अत्थेन मयं, महाराज, अत्थिका। अत्थे होतु कथासल्लापो'' ति। राजा आह— ''किमत्थिया, भन्ते नागसेन, तुम्हाकं पब्बज्जा, को च तुम्हाकं परमत्थो'' ति? थेरो आह— ''किं ति, महाराज, 'इदं दुक्खं निरुज्झेय्य, अञ्ञं च दुक्खं न उप्पज्जेय्या' ति एतदत्था, महाराज, अम्हाकं पब्बज्जा। अनुपादा परिनिब्बानं खो पन अम्हाकं परमत्थो'' ति।

''किं पन, भन्ते नागसेन, सब्बे एतदत्थाय पब्बजन्ती'' ति? ''न हि, महाराज।

''नहीं, भन्ते!'' ''जो ये बँसी बजाने वाले बँसी बजाते हैं, उनकी फूँक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''जो ये तुरही बजाने वाले तुरही बजाते हैं, उनकी फूँक क्या फिर उनके भीतर जाती है।'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तब, वे मर क्यों नहीं जाते?'' ''आप के साथ मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, कृपया बतावें कि बात क्या है!'' स्थविर बोले—''यह जीव–वायु कोई चीज नहीं हैं। साँस लेना और छोड़ना तो केवल इस शरीर का धर्म है।'' स्थविर ने अभिधर्म के अनुकूल इस बात को समझाया। अनन्तकाय समझ गया और उपासक बन गया।

५. प्रवज्याविषयक प्रश्न— ५. तब, आयुष्मान् नागसेन राजा मिलिन्द के आवास पर गये और बिछे आसन पर बैठे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन और उनकी सम्पूर्ण मण्डली को अच्छे से अच्छा भोजन अपने हाथों से परोस कर खिलाया और प्रत्येक भिक्षु को एक–एक जोड़ा तथा आयुष्मान् नागसेन को तीन चीवर देकर वह बोला— ''भन्ते! दस भिक्षु आपके साथ ठहरे और बाकी लौट जाँय!''

तब, राजा मिलिन्द आयुष्मान् नागसेन के भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ खींच लेने पर एक ओर नीचा आसन लेकर बैठ गया और बोला—''भन्ते! किस विषय पर कथा–संलाप (शास्त्रचर्चा) हो?'' ''महाराज! हम लोगों को केवल आवश्यक बातों से प्रयोजन है, अतः आवश्यक बातों पर ही कथा–संलाप हो।'' राजा बोला—''भन्ते! किसलिये आपकी प्रव्रज्या हुई है? आपका परम–उद्देश्य क्या है?'' स्थविर बोले—''महाराज! यह दुःख रुक जाय और नया दुःख उत्पन्न न हो—इसीलिये हमारी प्रव्रज्या हुई हैं। फिर जन्म ग्रहण न हो, ऐसा परम निर्वाण पाना हमारा परम–उद्देश्य है।''

केचि एतदत्थाय पब्बजन्ति, केचि राजाभिनीता पब्बजन्ति, केचि चोराभिनीता पब्बजन्ति, केचि इणट्टा पब्बजन्ति, केचि आजीवकत्थाय पब्बजन्ति। ये पन सम्मा पब्बजन्ति, ते एतदत्थाय पब्बजन्ती'' ति।

''त्वं पन, भन्ते, एतदत्थाय पब्बजितोसी'' ति? ''अहं खो, महाराज, दहरको सन्तो पब्बजितो। न जानामि 'इमस्स नामत्थाय पब्बजामी' ति। अपि च खो मे एवं अहोसि— 'पण्डिता इमे समणा सक्यपुत्तिया ते मं सिक्खापेस्सन्ती' ति। स्वाहं तेहि सिक्खापितो जानामि च पस्सामि च— 'इमस्स नामत्थाय पब्बज्जा' '' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

६. पटिसन्धिपञ्हो

६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि मतो न पटिसन्दहती'' ति? थेरो आह—''कोचि पटिसन्दहति, कोचि न पटिसन्दहती'' ति।

''को पटिसन्दहति, को न पटिसन्दहती'' ति? ''सकिलेसो, महाराज, पटिसन्दहति, निक्किलेसो न पटिसन्दहती'' ति। ''त्वं पन, भन्ते नागसेन, पटिसन्दहिस्ससी'' ति? ''सचे, महाराज, सउपादानो भविस्सामि पटिसन्दहिस्सामि। सचे अनुपादानो भविस्सामि, न पटिसन्दहिस्सामी'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

७. योनिसोमनसिकारपञ्हो

७. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो न पटिसन्दहति ननु सो योनिसो मनसिकारेन न

''भन्ते नागसेन! क्या सभी लोग इसीलिये प्रव्रजित होते हैं?'' ''नहीं, महाराज! कुछ तो इसके लिये, प्रव्रजित होते हैं और कुछ राजा के भय से प्रव्रजित होते हैं, कुछ चोरों के डर से...., कुछ कर्जे के बोझ से...., कुछ केवल पेट पालने के लिये....। किन्तु जो उचित रीति से प्रव्रजित होते हैं, वे इसी निर्वाण के लिये प्रव्रजित होते हैं।''

''भन्ते! क्या आप इसी के लिये प्रव्रजित हुए?'' ''महाराज! मैं बहुत छोटी ही आयु में प्रव्रजित हुआ था, नहीं जानता था कि किस लिये प्रव्रजित हो रहा हूँ। मेरे मन में यह बात आयी थी—'ये बौद्ध भिक्षु बड़े पण्डित होते हैं, मुझे भी शिक्षा देंगे।' सो मैं अब उन लोगों से सीख कर जानता हूँ और देखता हूँ कि 'प्रव्रज्या का यही अर्थ है।' ''

''भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा''।

६. जन्म-मृत्युविषयकप्रश्न— ६. राजा बोला—''भन्ते नागसेन! क्या ऐसे भी कोई हैं, जो मरने के बाद फिर जन्म नहीं ग्रहण करते?'' स्थविर बोले— ''कुछ ऐसे हैं, जो जन्म ग्रहण करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो जन्म नहीं ग्रहण करते।'' ''कौन जन्म ग्रहण करते हैं और कौन नहीं?'' ''जिनमें क्लेश (चित्तमल) लगा है, वे जन्म ग्रहण करते हैं और जो क्लेशरहित हो गये हैं वे जन्म नहीं ग्रहण करते।'' ''भन्ते! आप जन्म ग्रहण करेंगे या नहीं?'' ''महाराज! यदि संसार की ओर आसक्ति लगी रहेगी तो जन्म ग्रहण करूँगा और यदि आसक्ति छूट जायगी तो नहीं करूँगा।''

''भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा''।

७. विवेकज्ञानविषयकप्रश्न— ७. राजा बोला—''भन्ते नागसेन! जो जन्म नहीं ग्रहण करते, क्या वे

पटिसन्दहती'' ति? ''योनिसो च, महाराज, मनसिकारेन पञ्ञाय च अञ्ञेहि च कुसलेहि धम्मेही'' ति। ''ननु, भन्ते, योनिसो मनसिकारो येव पञ्ञा'' ति? ''न हि, महाराज! अञ्ञो मनसिकारो, अञ्ञा पञ्ञा। इमेसं खो, महाराज, अजेळक-गोण-महिंस-ओट्ठ-गद्रभानं पि मनसिकारो अत्थि, पञ्ञा पन तेसं नत्थी'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

८. मनसिकारलक्खणपञ्हो

८. राजा आह—''किंलक्खणो, भन्ते नागसेन, मनसिकारो; किंलक्खणा पञ्ञा'' ति? ''ऊहनलक्खणो खो, महाराज, मनसिकारो; छेदनलक्खणा पञ्ञा'' ति। ''कथं ऊहनलक्खणो मनसिकारो, कथं छेदनलक्खणा पञ्ञा— ओपम्मं करोही'' ति?

''जानासि त्वं, महाराज, यवलावके'' ति? ''आम, भन्ते, जानामी'' ति। ''कथं, महाराज, यवलावका यवं लुनन्ती'' ति? ''वामेन, भन्ते, हत्थेन यवकलापं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन दात्तं गहेत्वा दात्तेन छिन्दन्ती'' ति।

''यथा, महाराज, यवलावको वामेन हत्थेन यवकलापं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन दात्तं गहेत्वा यवं छिन्दति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो मनसिकारेन मानसं गहेत्वा पञ्ञाय किलेसे छिन्दति। एवं खो, महाराज, ऊहनलक्खणो मनसिकारो, एवं छेदनलक्खणा पञ्ञा'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

९. सीललक्खणपञ्हो

९. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'अञ्ञेहि च कुसलेहि धम्मेही'

विवेक-लाभ करने से जन्म नहीं ग्रहण करते?'' ''महाराज! विवेक-लाभ करने से, ज्ञान से और दूसरे पुण्य-धर्मों के करने से।'' ''भन्ते! विवेक-लाभ और ज्ञान, दोनों तो एक ही हैं न?'' ''नहीं, महाराज! विवेक दूसरी चीज है और ज्ञान दूसरी चीज। इन भेड़-बकरी, गाय-बैल, ऊँट तथा गदहों को विवेक तो हैं किन्तु ज्ञान नहीं है।''

''भन्ते! बहुत ठीक कहा।''

८. विवेक(मनस्कार)लक्षणप्रश्न— ८. राजा बोला—''भन्ते! विवेक और ज्ञान का लक्षण क्या है?'' ''महाराज! 'बोध हो जाना' विवेक का लक्षण है और 'काटने की शक्ति का होना' ज्ञान का लक्षण है।'' ''यह कैसे? कृपया उपमा देकर समझायें।''

''महाराज! आपने जौ की कटनी होते हुए देखा है?'' ''हाँ, भन्ते!'' ''लोग कैसे जौ की कटनी करते हैं?''

''भन्ते! जैसे बायें हाथ से जौ की बालों को पकड़ कर दाहिने हाथ से हँसिया लेकर काटते हैं; महाराज! उसी तरह योगी विवेक से अपने मन को पकड़ ज्ञानरूपी हँसिया से क्लेशों को काट डालता है। इसी भाव से मैंने कहा है— बोध होना विवेक का लक्षण है और 'काट डालना' ज्ञान का लक्षण है''।

''भन्ते! आपने ठीक कहा है।''

९. शीलादिलक्षणप्रश्न— ९. राजा बोला—''भन्ते! आपने जो अभी कहा, 'कुशल (पुण्य) धर्मों के करने

ति, कतमे ते कुसला धम्मा'' ति? ''सीलं, महाराज, सद्धा, विरियं, सति, समाधि—इमे ते कुसला धम्मा'' ति।

''किंलक्खणं, भन्ते, सीलं'' ति? ''पतिट्ठानलक्खणं, महाराज, सीलं सब्बेसं कुसलानं धम्मानं। इन्द्रिय-बल-बोज्झङ्ग-मग्गङ्ग-सतिपट्ठान-सम्मप्पधान-इद्धिपाद-झान-विमोक्ख-समाधि-समापत्तीनं सीलं पतिट्ठं। सीले पतिट्ठितो खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—'सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं' ति; सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, ये केचि बीजगामभूतगामा वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जन्ति, सब्बे

से' तो यह कुशल धर्म क्या है?'' ''महाराज! शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि—ये ही कुशल धर्म है।''

''भन्ते! शील का लक्षण क्या है?'' ''महाराज! आधार होना शील की पहचान है। [1]इन्द्रिय, [2]बल, [3]बोध्यङ्ग, [4]मार्ग, [5]स्मृतिप्रस्थान, [6]सम्यक्प्रधान, [7]ऋद्धिपाद, [8]ध्यान, [9]विमोक्ष, समाधि और

---

१. इन्द्रिय—इन्द्रिय पाँच हैं; जैसे (१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि और (५) प्रज्ञा।

२. बल— बल पाँच हैं, जैसे—(१) श्रद्धाबल,(२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल, (४) समाधिबल और (५) प्रज्ञाबल।

३. बोध्यङ्ग— बोध्यङ्ग सात हैं; जैसे- (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग, (२) धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग, (३) वीर्य-सम्बोध्यङ्ग, (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग, (५) प्रश्रब्धि-सम्बोध्यङ्ग, (६) समाधि-सम्बोध्यङ्ग और (७) उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग।

४. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग— (१)सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यक्-वाक्, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यक्-आजीव, (६) सम्यक्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति और (८) सम्यक्-समाधि।

५. स्मृति प्रस्थान— स्मृतिप्रस्थान चार हैं; जैसे— (१)काया में कायानुपश्यी, (२) वेदना में वेदनानुपश्यी, (३) चित्त में चित्तानुपश्यी और (४) धर्म में धर्मानुपश्यी होना।

६. सम्यक्-प्रधान— सम्यक्-प्रधान चार हैं; जैसे—(१) अनुत्पन्न अकुशल (पाप) को उत्पन्न न होने देने के लिये रुचि पैदा करना, प्रयास करना और चित्त का निग्रह करना; (२) उत्पन्न हो गये अकुशल (पाप) के विनाश के लिये....; (३) अनुत्पन्न कुशल (पुण्य) धर्मों की उत्पत्ति के लिये .... और (४) उत्पन्न कुशल-धर्मों की स्थिति और वृद्धि के लिये भावना पूर्ण कर रुचि उत्पन्न करना, प्रयास करना और चित्त का निग्रह करना।

७. ऋद्धिपाद— ऋद्धिपाद चार हैं— (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त; (२) वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त; (३) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त और (४) विमर्श-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त।

८. ध्यान— ध्यान चार हैं। (१) प्रथम-ध्यान, (२) द्वितीय-ध्यान, (३) तृतीय-ध्यान और (४) चतुर्थ-ध्यान।

९. विमोक्ष— विमोक्ष आठ हैं; जैसे— (१) रूपी (रूपवाला) रूपों को देखते हैं; (२) अध्यात्म अरूपसंज्ञी बाहर रूपों को देखते हैं; (३) शुभ ही अधिमुक्त होते हैं; (४)सर्वथा रूप-संज्ञा का अतिक्रमण कर प्रतिहिंसा के विचार के लुप्त होने, नानात्व के विचार को मन में न करने से 'आकाश-अनन्त हैं' इस आकाश-आनन्त्यायन को प्राप्त हो विहरते हैं; (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञान-अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतन को प्राप्त हो विहरते हैं; (६) सर्वथा विज्ञान-आनन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'—इस आकिञ्चन्य-आयतन को प्राप्त हो साधना करते हैं; (७) सर्वथा आकिञ्चन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नअसंज्ञा-आयतन (=जिस समाधि का आभास न चेतना ही कहा जा सकता है न अचेतना ही) को प्राप्त हो कर साधना करते हैं; (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-निरोध को प्राप्त हो विहरते हैं।

ते पथवियं पतिट्ठाय वुड्ढि विरुळ्हि वेपुल्लं आपज्जन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं'' ति। (१)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, ये केचि बलकरणीया कम्मन्ता कयिरन्ति, सब्बे ते पथविं निस्साय पथवियं पतिट्ठाय कयिरन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रयं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्चिन्द्रियं'' ति। (२)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, नगरवड्ढकी नगरं मापेतुकामो पठमं नगरट्ठानं सोधापेत्वा खाणुकण्टकं अपकड्ढापेत्वा भूमिं समं कारापेत्वा ततो अपरभागे वीथिचतुक्कसिङ्घाटकादिपरिच्छेदेन विभजित्वा नगरं मापेति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं'' ति। (३)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

"समापत्ति[१०] आदि सभी अच्छे धर्मों का आधार शील ही है। महाराज! शील के आधार पर खड़े किये जाने पर कोई कुशल (अच्छा) धर्म नहीं डिगता।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे जितने जीव और पौधे हैं सभी पृथ्वी के आधार से ही पैदा होते और बड़े होते हैं; इसी तरह योगी शील के ही आधार पर, और शील पर ही दृढ़ हो इन पाँच इन्द्रियों की भावना करता है—(१) श्रद्धेन्द्रिय, (२) वीर्येन्द्रिय, (३) स्मृतीन्द्रिय, (४) समाधीन्द्रिय और (५) प्रज्ञेन्द्रिय।" (१)

"कृपया फिर दूसरी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे जितने बल (ताकत) से किये जाने वाले कार्य हैं, वे सभी पृथ्वी के आधार पर और पृथ्वी पर ही खड़े होकर किये जाते हैं, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (२)

"कृपया फिर तीसरी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे कुशल कारीगर कोई नगर बसाने के लिये पहले उस स्थान को साफ-सुथरा कर, झाड़ और काँटों को दूरकर, समतल बना कर, फिर उसके बाद सड़कें और चौराहों का मानचित्र खींचकर नगर बसाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (३)

"कृपया फिर चौथी उपमा देकर समझावें।"

---

१०. समापत्ति—समापत्ति आठ हैं; जैसे—

(१) प्रथम-ध्यान *(२) द्वितीय-ध्यान* *(३) तृतीय-ध्यान* *(४) चतुर्थ-ध्यान*	} रूपावचर (४)
(५) आकाश-आनन्त्यायतन *(६) विज्ञान-आनन्त्यायतन* *(७) आकिञ्चन्य-आयतन* *(८) नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन*	} अरूपावचर (४)

"यथा, महाराज, लङ्घको सिप्पं दस्सेतुकामो पथविं खणापेत्वा सक्खरकथलं अपकड्ढापेत्वा भूमि समं कारापेत्वा मुदुकाय भूमिया सिप्पं दस्सेति; एवमेव खो महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं" ति। (४)

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता—

'सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं' ति॥ *(सं. नि. १/१४)*

'अयं पतिट्ठा धरणीव पाणिनं, इदं च मूलं कुसलाभिवड्ढिया।
मुखं चिदं सब्बजिनानुसासने, यो सीलक्खन्धो वरपातिमोक्खियो' " ति॥

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१०. (क) सम्पसादनलक्खणसद्धापञ्हो

१०. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा सद्धा" ति? "सम्पसादनलक्खणा च, महाराज, सद्धा सम्पक्खन्दनलक्खणा चा" ति। "कथं, भन्ते, सम्पसादनलक्खणा सद्धा" ति? "सद्धा खो, महाराज, उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति। विनीवरणं चित्तं होति अच्छं विप्पसन्नं अनाविलं। एवं खो, महाराज, सम्पसादनलक्खणा सद्धा" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, राजा चक्कवत्ती चतुरङ्गिनिया सेनाय सद्धिं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो परित्तं उदकं तरेय्य, तं उदकं हत्थीहि च अस्सेहि च रथेहि च पत्तीहि च खुभितं भवेय्य

"महाराज! जैसे कोई कलाकार पहले पृथ्वी खोद कर कंकड़–पत्थरों दूर हटवा कर भूमि को बराबर करवा कर मृदु की गयी भूमि पर अपनी कला दिखाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (४)

"महाराज! भगवान् ने भी कहा है—'ज्ञानी मनुष्य शील पर दृढ़ हो अपने चित्त को भावना से वश में करता है, संयमी और बुद्धिमान् भिक्षु ही इस (तृष्णा रूपी) जटा को साफ कर सकता है।'

'पृथ्वी की तरह यह लोगों के गुणों का आधार है, कुशल की अभिवृद्धि का यह मूल है, सभी बुद्धों के शासन का यह मुख है, मोक्ष के लिये शील ही उत्तम मार्ग है'।"

"भन्ते नागसेन! आपने बहुत ठीक कहा"।

१०. श्रद्धालक्षणप्रश्न— १०. राजा बोला—"भन्ते! श्रद्धा का क्या लक्षण है?" "महाराज! मन में प्रसन्नता और तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना ही श्रद्धा का लक्षण है।" (क) भन्ते! मन में प्रसन्नता पैदा कर देना कैसे श्रद्धा का लक्षण है?" "महाराज! श्रद्धा पैदा होने पर वह मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करती है। बाधाओं से रहित चित्त स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल हो जाता है। महाराज! इसीलिये 'चित्त में प्रसन्नता पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! कल्पना करें—कोई चक्रवर्ती[1] राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ रास्ते में जाते हुए किसी छिछली नदी को पार करे। उन हाथी, घोड़ों, रथों और पैदल सिपाहियों से उस नदी का जल

---

१. द्र०—*दीघनिकाय—चक्कवत्तीसुत्त।*

आविलं लुळितं कललीभूतं। उत्तिण्णो च राजा चक्कवती मनुस्से आणापेय्य—'पानीयं, भणे, आहरथ, पिविस्सामी' ति। रञ्ञो च उदकप्पसादको मणि भवेय्य। 'एवं देवा' ति खो ते मनुस्सा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स पटिस्सुत्वा तं उदकप्पसादकं मणिं उदके पक्खिपेय्युं। तस्मिं उदके पक्खित्तमत्ते सङ्खसेवालपणकं विगच्छेय्य, कद्दमो च सन्निसीदेय्य, अच्छं भवेय्य उदकं विप्पसन्नं अनाविलं। ततो रञ्ञो चक्कवत्तिस्स पानीयं उपनामेय्युं—'पिवतु, देव, पानीयं' ति। यथा, महाराज, उदकं, एवं चित्तं दट्ठब्बं। यथा ते मनुस्सा, एवं योगावचरो दट्ठब्बो। यथा सङ्खसेवालपणकं कद्दमो च, एवं किलेसा दट्ठब्बा। यथा उदकप्पसादको मणि, एवं सद्धा दट्ठब्बा। यथा उदकप्पसादके मणिम्हि उदके पक्खित्तमत्ते सङ्खसेवालपणकं विगच्छेय्य,कद्दमो च सन्निसीदेय्य, अच्छं भवेय्य उदकं विप्पसन्नं अनाविलं; एवमेव खो, महाराज, सद्धा उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति, विनीवरणं चित्तं होति अच्छं विप्पसन्नं अनाविलं। एवं खो, महाराज, सम्पसादनलक्खणा सद्धा'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

(ख) सम्पक्खन्दलक्खणसद्धापञ्हो

११. ''कथं, भन्ते, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा'' ति?

''यथा, महाराज, योगावचरो अञ्ञेसं चित्तं विमुत्तं पस्सित्वा सोतापत्तिफले वा

मथा जाकर मैला और गँदला हो जाय। पार जाने के बाद राजा नौकरों से कहे—जल ले आओ, मैं पीना चाहता हूँ।' राजा के पास जल साफ करने का पत्थर (फिटकरी आदि) हो। 'देव! बहुत अच्छा' कह कर वे नौकर उस पत्थर को जल में डाल दें, जिससे तत्काल ही सभी शङ्ख, सेवाल या गँदलापन हट जाय, मैल बैठ जाय और जल स्वच्छ तथा निर्मल हो जाय। तब, वे राजा के पास वह जल ले आवें और कहें—'देव, जल पीयें।' महाराज! यहाँ जल की तरह चित्त को समझना चाहिये। नौकरों की तरह योगी को समझना चाहिये। शङ्ख, सेवाल और मैल की तरह चित्त का क्लेश समझना चाहिये। और जल साफ करने के पत्थर की तरह श्रद्धा को समझना चाहिये। जैसे पत्थर के जल में डालते ही शङ्ख, सेवाल तथा मल सभी हट जाते हैं और जल स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाता है; उसी तरह श्रद्धा के आते ही मन की सभी बाधायें हट जाती हैं। चित्त बाधाओं से रहित हो कर स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाता है। महाराज! इसी तरह 'प्रसन्नता उत्पन्न कर देना' श्रद्धा की पहचान समझनी चाहिये।''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

११. (ख) ''भन्ते! प्रस्कन्दन (मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना) कैसे श्रद्धा का लक्षण है?''

''महाराज! योगी साधक दूसरों के चित्त को मुक्त देखकर स्रोतआपत्ति[1], सकृदागामी[2], अनागामि–

---

१. स्रोतआपत्ति= धारा में आ जाना। निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ हो जाना, जहाँ से गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। योग साधना करने वाला भिक्षु,जब (१)सत्कायदृष्टि, (२) विचिकित्सा और (३) शीलव्रतपरामर्श—इन तीन बन्धनों को तोड़ देता है तब स्रोतआपन्न कहा जाता है। अधिक से अधिक सात बार तक जन्म लेकर, वह निर्वाण पा लेता है।

२. सकृदागामी—एक बार आने वाला। स्रोतआपन्न भिक्षु उत्साह कर, (१) कामराग (इन्द्रियलिप्सा)और (२) प्रतिघ (द्वेष)-इन दो बन्धनों पर भी विजय पा कर सकृदागामी पद पर आरूढ़ हो जाता है। यदि वह इस जन्म में अर्हत् नहीं हो जाता तो अधिक से अधिक एक बार और जन्म लेता है।

सकदागामिफले वा अनागामिफले वा अरहत्ते वा सम्पक्खन्दति, योगं करोति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय; एवं खो, महाराज, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, उपरिपब्बते महामेघो अभिप्पवस्सेय्य। तं उदकं यथानिन्नं पवत्तमानं पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरेत्वा नदिं परिपूरेय्य। सा उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छेय्य। अथ महाजनकायो आगन्त्वा तस्सा नदिया उत्तानतं वा गम्भीरतं वा अजानन्तो भीतो वित्थत्तो तीरे तिट्ठेय्य। अथञ्ञतरो पुरिसो आगन्त्वा अत्तनो थामं च बलं च सम्पस्सन्तो गाळ्हं कच्छं बन्धित्वा पक्खन्दित्वा तरेय्य, तं तिण्णं पस्सित्वा महाजनकायो पि तरेय्य। एवमेव खो, महाराज, योगावचरो अञ्ञेसं चित्तं विमुत्तं पस्सित्वा सोतापत्तिफले वा सकदागामिफले वा अनागामिफले वा अरहत्ते वा सम्पक्खन्दति, योगं करोति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। एवं खो, महाराज, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा'' ति।

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता *संयुत्तनिकायवरे*—

'सद्धाय तरती ओघं, अप्पमादेन अण्णवं।
विरियेन दुक्खमच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झती' ति॥ *(सं. नि. १/१०/४)*

फल[1], या अर्हत्[2] पद पर आरूढ़ देख कर स्वयं भी वैसा होने की आकांक्षा करता है, उस अप्राप्त पद को प्राप्त करने के लिये तथा न देखे को देखने के लिये प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। महाराज! इस तरह 'मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण समझनी चाहिए।"

"कृपया इसी बात को उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! किसी पहाड़ पर बहुत जोर से जल बरसे। जल नीचे की ओर बहते हुए पहाड़ की कन्दराओं, गुफाओं और नालों को भर कर नदी को भी पूरा भर दे। नदी अपने दोनों किनारों को तोड़ती हुई आगे बढ़े। तब, वहाँ कुछ मनुष्यों का एक समूह पहुँचे जो नदी के पाट या गहराई को न जानने के कारण डर कर किनारे ही बैठा रहे। तब कोई एक दूसरा मनुष्य वहाँ आये जो अपने साहस और बल को देख, ठीक से कच्छा बाँध, तैर कर पार चला जाय। उसे पार गया देख दूसरे लोग भी साहस कर उसी तरह तैर कर पार चले जाँय; महाराज! इसी तरह एक योगी दूसरों के चित्त को मुक्त .... पूर्ववत्.... देखकर स्वयं भी उस पद को पाने की तीव्र आकांक्षा करता है और उसके लिये प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। इसी तरह, 'मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण है।

---

१. अनागामी—फिर न जन्म लेने वाला। ऊपर के दो बन्धनों (कामराग और प्रतिघ) को सर्वथा काट कर योगावचर भिक्षु 'अनागामी' हो जाता है। इसके बाद वह न तो संसार और न दिव्य लोक में ही जन्म लेता हैं; क्योंकि उसके सभी कामराग शान्त हो गये हैं। इस शरीरपात के बाद वह शुद्धावास में रहता है।

२. अर्हत्—अन्त में भिक्षु के जो अवशिष्ट बन्धन हैं— (१) रूपराग, (२) अरूपराग, (३) मान, (४) औद्धत्य और (५) अविद्या— उन्हें भी काट कर गिरा देता है और अर्हत् हो जाता है। उसके सभी क्लेश दूर हो जाते हैं, सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं। जो करना था, सो कर लिया गया। समग्र दुःखस्कन्ध का अन्त हो गया। उपादान (संसार में बने रहने की इच्छा) मिट गया। निर्वाण का मार्ग निश्चित हो गया। तृष्णा के क्षीण हो जाने से संसार से सर्वथा अलिप्त रह कर वह परम शान्ति का अनुभव करता है। शरीरपात के बाद उसका आवागमन सदा के लिये बन्द हो जाता है— जीवन-स्रोत सदा के लिये सूख जाता है— दुःख का अन्त हो जाता है।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

११. विरियलक्खणपञ्हो

१२. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणं विरियं" ति? "उपत्थम्भनलक्खणं, महाराज, विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, पुरिसो गेहे पतन्ते अञ्ञेन दारुना उपत्थम्भेय्य, उपत्थम्भितं सन्तं एवं तं गेहं न पतेय्य; एवमेव खो, महाराज, उपत्थम्भनलक्खणं विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती" ति।

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, परित्तकं सेनं महती सेना भञ्जेय्य। ततो राजा अञ्ञमञ्ञं अनुस्सारेय्य, अनुपेसेय्य, अत्तनो परित्तकाय सेनाय बलं अनुपदं ददेय्य, ताय सद्धिं परित्तका सेना महतिं सेनं भञ्जेय्य; एवमेव खो, महाराज, उपत्थम्भनलक्खणं विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ति। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता*—'विरियवा खो, भिक्खवे, अरियसावको अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति। सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति; सुद्धमत्तानं परिहरती" (   ) ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१२. सतिलक्खणपञ्हो

१३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा सती" ति? "अपिलापनलक्खणा, महाराज, सति, उपग्गण्हनलक्खणा चा" ति। "कथं, भन्ते, अपिलापनलक्खणा सती" ति?

"*संयुक्तनिकाय* में भगवान् ने कहा भी है—

'श्रद्धा से बाढ़ पार कर जाता है; प्रयत्न में तत्पर रहने से सागर को पार कर जाता है; वीर्य से दुःखों का नाश कर देता है; और प्रज्ञा से सर्वथा मुक्त हो जाता है'।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा।"

११. वीर्यलक्षणप्रश्न— १२. राजा बोला—"भन्ते! वीर्य का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'दृढ़ कर देना' वीर्य का लक्षण है। जो कुशल धर्म वीर्य से दृढ़ कर दिये गये हैं, वे कभी नहीं डिगते।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई मनुष्य अपने घर को गिरता देख एक खम्भे का सहारा देकर उसे दृढ़ कर देता है, तब वह घर गिर नहीं पाता, उसी तरह वीर्य से दृढ़ किये गये सभी कुशल धर्म नहीं डिगते।"

"कृपया फिर दूसरी उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे किसी छोटी सेना को एक बड़ी सेना हरा दे। तब, हारा हुआ राजा कुछ और सिपाहियों को देकर उन्हें फिर से लड़ने को भेजे, जो जाकर उस बड़ी सेना को हरा दे। इसी तरह 'दृढ़ करना' भी वीर्य की लक्षण है। भगवान् ने कहा भी है—'भिक्षुओ! वीर्यवान् आर्यश्रावक पाप छोड़ कर पुण्य का ग्रहण करता है, दोषयुक्त को छोड़कर दोषरहित को ग्रहण करता है और अपने को शुद्ध कर देता है।'

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१२. स्मृतिलक्षणप्रश्न—१२. राजा बोला—"भन्ते नागसेन! स्मृति का क्या लक्षण है?" "महाराज! १.

"सति, महाराज, उप्पज्जमाना कुसलाकुसलसावज्जानवज्जहीनप्पणीतकण्हसुक्कसप्पटिभाग-अप्पटिभागधम्मे अपिलापेति—इमे चत्तारो सतिपट्ठाना, इमे चत्तारो सम्मप्पधाना, इमे चत्तारो इद्धिपादा, इमानि पञ्चिन्द्रियानि, इमानि पञ्च बलानि, इमे सत्त बोज्झङ्गा, अयं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, अयं समथो, अयं विपस्सना, अयं विज्जा, अयं विमुत्ती ति; ततो योगावचरो सेवितब्बे धम्मे सेवति, असेवितब्बे धम्मे न सेवति; भजितब्बे धम्मे भजति, अभजितब्बे धम्मे न भजति। एवं खो, महाराज, अपिलापनलक्खणा सती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स भण्डागारिको राजानं चक्कवत्तिं सायम्पातं यसं सरापेति—'एत्तका, देव, ते हत्थी, एत्तका अस्सा, एत्तका रथा, एत्तका पत्ती, एत्तकं हिरञ्ञं, एत्तकं सुवण्णं, एत्तकं सापतेय्यं, तं देवो सरतू' ति रञ्ञो सापतेय्यं अपिलापेति एवमेव खो, महाराज, सति उप्पज्जमाना कुसलाकुसलसावज्जानवज्जहीनप्पणीतकण्हसुक्कसप्पटिभाग-अप्पटिभागधम्मे अपिलापेति—इमे चत्तारो सतिपट्ठाना, इमे चत्तारो सम्मप्पधाना, इमे चत्तारो इद्धिपादा, इमानि पञ्चिन्द्रियानि, इमानि पञ्च बलानि, इमे सत्त बोज्झङ्गा, अयं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, अयं समथो, अयं विपस्सना, अयं विज्जा, अयं विमुत्ती ति; ततो योगावचरो सेवितब्बे धम्मे सेवति, असेवितब्बे धम्मे न सेवति; भजितब्बे धम्मे भजति, अभजितब्बे धम्मे न भजति। एवं खो, महाराज, अपिलापनलक्खणा सती" ति। (१)

"कथं, भन्ते, उपग्गण्हनलक्खणा सती" ति? "सति, महाराज, उप्पज्जमाना हिताहितानं धम्मानं गतियो समन्वेति— 'इमे धम्मा हिता, इमे धम्मा अहिता, इमे धम्मा उपकारा, इमे धम्मा अनुपकारा' ति; ततो योगावचरो अहिते धम्मे अपनुदेति, हिते धम्मे

निरन्तर स्मरण रखना और २. स्वीकार करना स्मृति का लक्षण है।" (१) "भन्ते! 'स्मरण रखना' कैसे स्मृति का लक्षण है?" "महाराज! स्मृति निरन्तर स्मरण दिलाती रहती है कि यह कुशल, यह अकुशल, यह दोष–युक्त, यह दोष–रहित, यह बुरा, यह अच्छा और यह कृष्ण, यह शुक्ल है। यों साधक निरन्तर स्मरण रखता है– ये चार स्मृति–प्रस्थान, ये चार सम्यक् चेष्टाएँ, ये चार ऋद्धियाँ, ये पाँच इन्द्रियाँ, ये पाँच बल, ये सात बोध्यङ्ग, यह आर्य–अष्टाङ्गिकमार्ग, यह शमथ, यह विपश्यना, यह विद्या और यह विमुक्ति है। उस स्मृति के सहारे से योगी सेवनीय धर्मों का आचरण करता है, असेवनीय धर्मों का आचरण नहीं करता–यह स्मृति ही के कारण होता है। इसी प्रकार महाराज! 'निरन्तर स्मरण रखना' स्मृति का लक्षण है।

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का भाण्डागारिक नित्य प्रातः और सायं काल राजा को उसके यश की याद दिलाता रहे–'देव! आप के इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ, इतने पैदल सिपाही, इतना सोना और इतनी सम्पत्ति है; आप उसे स्मरण रखें'। उसी तरह स्मृति सदा स्मरण दिलाती रहती है–यह कुशल यह अकुशल....। महाराज! ऐसे ही 'निरन्तर स्मरण दिलाते रहना' स्मृति का लक्षण है।"

(२) "भन्ते! 'स्वीकार करना' कैसे स्मृति का लक्षण है?" "महाराज! स्मृति उत्पन्न होकर खोज करती है कि कौन धर्म हित के हैं, कौन धर्म अहित के; ये धर्म हित के या ये धर्म अहित के हैं, ये धर्म भलाई करने वाले और ये धर्म बुराई करने वाले हैं। उससे योगी (साधक) भी अहित धर्मों को

उपग्गण्हाति; अनुपकारे धम्मे अपनुदेति, उपकारे धम्मे उपग्गण्हाति। एवं खो, महाराज, उपग्गण्हनलक्खणा सती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स परिणायकरतनं रञ्ञो हिताहिते जानाति—'इमे रञ्ञो हिता, इमे अहिता, इमे उपकारा, इमे अनुपकारा' ति; ततो अहिते अपनुदेति, हिते उपग्गण्हाति, अनुपकारे अपनुदेति, उपकारे उपग्गण्हाति। एवमेव खो, महाराज, सति उप्पज्जमाना हिताहितानं धम्मानं गतियो समन्वेति— 'इमे धम्मा हिता, इमे धम्मा अहिता, इमे धम्मा उपकारा, इमे धम्मा अनुपकारा' ति; ततो योगावचरो अहिते धम्मे अपनुदेति, हिते धम्मे उपग्गण्हाति; अनुपकारे धम्मे अपनुदेति, उपकारे धम्मे उपग्गण्हाति। एवं खो, महाराज, उपग्गण्हनलक्खणा सति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'सतिं च ख्वाहं, भिक्खवे, सब्बत्थिकं वदामी' (   ) ति। (२)

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१३. समाधिलक्खणपञ्हो

१४. राजा आह—''भन्ते नागसेन, किंलक्खणो समाधी'' ति?

''पमुखलक्खणो, महाराज, समाधि। ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिपमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कूटागारस्स या काचि गोपानसियो सब्बा ता कूटङ्गमा होन्ति कूटनिन्ना कूटसमोसरणा, कूटं तासं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, महाराज, ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिप्पमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा'' ति।

छोड़ता है, हित धर्मों को स्वीकार करता है। बुराई करने वाले धर्मों को छोड़ता है और भलाई करने वाले धर्मों को स्वीकार करता है। महाराज! इस तरह 'स्वीकार करना' स्मृति का लक्षण बतायी गयी है।''

''कृपया उपमा देकर समझाइये।''

''महाराज! किसी चक्रवर्ती राजा का परिणायकरत्न (प्रधानमन्त्री) उसे इसके हिताहित के विषय में समझावे–'यह आपके लिये हितकर है, यह अहितकर; या यह भलाई के लिये और यह बुराई के लिये हैं'। तो फिर राजा अहितकर को छोड़ देता है, हितकर को ग्रहण करता है; बुराई छोड़ देता है, भलाई को ग्रहण करता है। महाराज! उसी तरह स्मृति उत्पन्न होकर गवेषणा (खोज) करती है कि कौन हितकर....। भगवान् ने कहा भी है–'भिक्षुओ! मैं स्मृति को सब धर्मों को सिद्ध करने वाली बताता हूँ'।''

''आपने ठीक समझाया, भन्ते!''

१३. समाधिलक्षणप्रश्न– १४. राजा बोला–''भन्ते! समाधि का क्या लक्षण है?''

''महाराज! 'प्रमुख (अग्रसर) होना' समाधि का लक्षण है। जितने कुशल धर्म हैं सभी समाधि के प्रमुख होने से होते हैं, इसी की ओर झुकते हैं, यहीं ले जाते हैं और इसी में आकर व्यवस्थित होते हैं।''

''कृपया इसे उपमा देकर समझायें।''

''महाराज! जैसे किसी ऊँची अट्टालिका की सभी सीढ़ियाँ सबसे ऊपर वाली मंजिल की ही

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचि राजा चतुरङ्गिनिया सेनाय सद्धिं सङ्गामं ओतरेय्य। सब्बा व सेना हत्थी च अस्सा च रथा च पत्ती च तप्पमुखा भवेय्युं तन्निन्ना तप्पोणा तप्पब्भारा, तं येव अनुपरियायेय्युं; एवमेव खो, महाराज, ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिपमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा। एवं खो, महाराज, पमुखलक्खणो समाधि। भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाती" *(सं० नि० ३१/५)* ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१४. पञ्ञालक्खणपञ्हो

१५. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा पञ्ञा" ति?

"पुब्बेव खो, महाराज, मया वुत्तं— 'छेदनलक्खणा पञ्ञा' ति। अपि च 'ओभासनलक्खणा पञ्ञा' " ति। "कथं भन्ते, ओभासनलक्खणा पञ्ञा" ति? "पञ्ञा, महाराज, उप्पज्जमाना अविज्जन्धकारं विधमेति, विज्जोभासं जनेति, ञाणालोकं विदंसेति, अरियसच्चानि पाकटानि करोति। ततो योगावचरो अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा सम्मप्पञ्ञाय पस्सती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, पुरिसो अन्धकारे गेहे पदीपं पवेसेय्य। पविट्ठो पदीपो अन्धकारं विधमेति, ओभासं जनेति, आलोकं विदंसेति, रूपानि पाकटानि करोति; एवमेव खो, महाराज,

---

ओर प्रमुख (=ले जाने वाली) होती है, उसी ओर जाती है, वहीं जाकर समाप्त होती हैं और वही भाग सब से मुख्य समझा जाता है; वैसे ही जितने कुशल धर्म हैं सभी....।"

"कृपया फिर कोई दूसरी उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! कोई राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ लड़ाई में जाय। सारी सेना, सभी हाथी, सभी घोड़े, सभी रथ और सभी पैदल सिपाही लड़ाई की ही ओर बढ़ें, उसी ओर झुकें और वहीं जाकर जूझें; महाराज! उसी तरह जितने कुशल धर्म हैं सभी....। इसी तरह 'प्रमुख होना' समाधि का लक्षण है। भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! समाधि का अभ्यास करो, समाधि लग जाने से सच्चा ज्ञान होता है'।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

१४. प्रज्ञालक्षणप्रश्न— १५. राजा बोला— "भन्ते! प्रज्ञा का क्या लक्षण है?" "महाराज! मैं कह चुका हूँ कि 'काटना' प्रज्ञा का लक्षण है और 'दिखा देना' भी उसका दूसरा लक्षण है।"

"भन्ते! 'दिखा देना' प्रज्ञा का लक्षण कैसे है?" "महाराज! प्रज्ञा उत्पन्न होने से अविद्यारूपी अंधकार दूर हो जाता है और विद्यारूपी प्रकाश पैदा होता है, जिसमें चारों आर्यसत्य साफ–साफ दिखायी देते हैं। तब योगी अनित्य, दुःख और अनात्म को भली–भाँति ज्ञान से जान लेता है।"

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी हाथ में एक जलता दीपक लेकर किसी अंधेरे कमरे में जाय, उसके जाते ही अंधेरा हट जाय, पूरे कमरे में प्रकाश फैल जाय और सभी वस्तुएँ दीखने लगें; महाराज!

पञ्ञा उप्पज्जमाना अविज्जन्धकारं विधमेति, विज्जोभासं जनेति, ञाणालोकं विदंसेति, अरियसच्चानि पाकटानि करोति। ततो योगावचरो अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, महाराज, ओभासनलक्खणा पञ्ञा'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१५. नानाधम्मानं एककिच्चनिप्फादनपञ्हो

१६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ती'' ति? ''आम, महाराज, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ती'' ति।

''कथं, भन्ते, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ति? ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, सेना नाना सन्ता हत्थी च अस्सा च रथा च पत्ती च एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—सङ्गामे परसेनं अभिविजिनन्ति; एवमेव खो, महाराज, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

(इमस्मिं वग्गे सोळस पञ्हा)

पठममहावग्गो निट्ठितो॥

२. अद्धानवग्गो

१. धम्मसन्ततिपञ्हो

१. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो उप्पज्जति सो एव सो, उदाहु अञ्ञो'' ति? थेरो आह— ''न च सो, न च अञ्ञो'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

वैसे ही प्रज्ञा के उत्पन्न होने से अविद्यारूपी अंधेरा दूर हो जाता है और विद्यारूपी प्रकाश पैदा होता है, जिसमें चारों आर्यसत्य साफ–साफ दिखायी देते हैं। तब, योगी अनित्य, दुःख और अनात्म को भली–भाँति जान लेता है। महाराज! इसी तरह 'दिखा देना' ज्ञान का लक्षण कहा गया है।''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

१५. एककार्यनिष्पादनप्रश्न— १६. राजा बोला—''भन्ते! क्या ये सभी अनेक धर्म एक साथ मिलकर कोई काम करते हैं?'' ''हाँ, महाराज! ये सभी एक साथ मिलकर दुःखसमूह का नाश कर देते हैं।''

''भन्ते! यह कैसे....? कृपया उपमा देकर समझाइये।''

''महाराज! जैसे हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति (पैदल) सिपाही, अनेक प्रकार की सेना होने पर भी 'शत्रुपराजय' रूपी एक ही कार्य करती है; उसी तरह अनेक प्रकार के कुशल धर्म एक साथ मिलकर तृष्णासमूह का ही नाश करते हैं।''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

(इस वर्ग में सोलह प्रश्न हैं।)

पहला महावर्ग समाप्त।।

२. अध्वानवर्ग (कालवर्ग)

१. धर्मसन्ततिप्रश्न (वस्तु का अस्तित्व)— १. राजा बोला— ''भन्ते! जो उत्पन्न होता है, क्या वह वही व्यक्ति है या दूसरा?'' स्थविर बोले— ''न वही है, न दूसरा ही।''

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं दहरो तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको अहोसि, सो एव त्वं एतरहि महन्तो" ति? "न हि, भन्ते! अञ्ञो सो दहरो तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको अहोसिं, अञ्ञो अहं एतरहि महन्तो" ति। "एवं सन्ते खो, महाराज, माता ति पि न भविस्सति, पिता ति पि न भविस्सति, आचरियो ति पि न भविस्सति, सिप्पवा ति पि न भविस्सति, सीलवा ति पि न भविस्सति, पञ्ञवा ति पि न भविस्सति। किं नु खो, महाराज, अञ्ञा येव कललस्स माता, अञ्ञा अब्बुदस्स माता; अञ्ञा पेसिया माता, अञ्ञा घनस्स माता; अञ्ञा खुद्दकस्स माता, अञ्ञा महन्तस्स माता; अञ्ञो सिप्पं सिक्खति, अञ्ञो सिक्खितो भवति; अञ्ञो पापकम्मं करोति, अञ्ञस्स हत्थपादा छिज्जन्ती" ति? "न हि, भन्ते! त्वं पन, भन्ते, एवं वुत्ते किं वदेय्यासी" ति? थेरो आह—"अहञ्ञेव खो, महाराज, दहरो अहोसिं तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको, अहञ्ञेव एतरहि महन्तो; इममेव कायं निस्साय सब्बे ते एकसङ्गहिता" ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा महाराज, कोचिदेव पुरिसो पदीपं पदीपेय्य। किं सो सब्बरत्तिं पदीपेय्या" ति? "आम, भन्ते, सब्बरत्तिं पदीपेय्या" ति। "किं नु खो, महाराज, या पुरिमे यामे अच्चि, सा मज्झिमे यामे अच्ची" ति? "न हि, भन्ते" ति। "या मज्झिमे यामे अच्चि, सा पच्छिमे यामे अच्ची" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किं नु खो, महाराज, अञ्ञो सो अहोसि पुरिमे यामे पदीपो, अञ्ञो मज्झिमे यामे पदीपो, अञ्ञो पच्छिमे यामे पदीपो" ति? "न हि, भन्ते। तं येव निस्साय सब्बरत्तिं पदीपितो" ति। "एवमेव खो, महाराज, धम्मसन्तति सन्दहति—

"कृपया यह उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जब आप बाल्यावस्था में शय्या पर चित ही लेट सकते थे, अब क्या इतने बड़े होकर भी वही हैं?" "नहीं, भन्ते! अब मैं दूसरा हो गया।" "महाराज! यदि आप वही (बच्चे) नहीं हैं तो अब आपकी कोई न माँ है, न कोई पिता, न कोई आचार्य, न कोई शिक्षक ही है, आप शीलवान् या प्रज्ञावान् भी नहीं हो सकते; क्योंकि, महाराज! तब तो गर्भ की भिन्न-भिन्न माताएँ होंगी.... बड़े हो जाने पर माता भी भिन्न हो जायगी। फिर, जो शिल्प सीखता है, वह दूसरा और जो सीख कर तैयार होता है, वह दूसरा होगा। यों, दोष करने वाला दूसरा होगा और किसी दूसरे का हाथ पैर काटा जायगा।" "नहीं, भन्ते!; किन्तु आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं?" स्थविर बोले—"महाराज! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ, किन्तु वे सभी भिन्न अवस्थायें इस शरीर की ही होने से एक ही में मानी जाती है।" (१)

"कृपया आप इसे फिर से उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! यदि कोई आदमी दीपक जलावे, तो क्या वह रात्रिपर्यन्त जलता रहेगा?" "हाँ, भन्ते! जलता रहेगा।" "महाराज! रात्रि के पहले प्रहर में जो दीपक की लौ थी, क्या वही दूसरे या तीसरे पहर में बनी रहती है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! तो क्या वह दीपक पहले पहर में दूसरा, दूसरे और तीसरे पहर में दूसरा हो जाता है?" "नहीं, भन्ते! वही दीपक सारी रात जलता रहता है।" "महाराज! ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न और एक लीन होती है और इस तरह यह प्रवाह चलता रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर

अञ्ञो उप्पज्जति, निरुज्झति, अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति। तेन न च सो, न च अञ्ञो; पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं सङ्गहं गच्छती'' ति। (२)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा महाराज, खीरं दुय्हमानं कालन्तरेन दधि परिवत्तेय्य, दधितो नवनीतं, नवनीततो घतं परिवत्तेय्य। यो नु खो, महाराज, एवं वदेय्य—'यं येव दधि, तं येव नवनीतं, यं येव नवनीतं तं येव घतं' ति। सम्मा नु खो सो, महाराज, वदमानो वदेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते, तं येव निस्साय सम्भूतं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, धम्मसन्तति सन्दहति— अञ्ञो उप्पज्जति, अञ्ञो निरुज्झति; अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति। तेन न च सो, न च अञ्ञो; पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं सङ्गहं गच्छती'' ति। (३)

''कल्लोसि, भन्ते, नागसेना'' ति।

२. पटिसन्दहनपञ्हो

२. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो न पटिसन्दहति, जानाति सो—'न पटिसन्दहिस्सामी''' ति। ''कथं भन्ते, जानाती'' ति? ''यो हेतु यो पच्चयो, महाराज, पटिसन्दहनाय, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स उपरमा जानाति सो— 'न पटिसन्दहिस्सामी' '' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कस्सको गहपतिको कसित्वा च वपित्वा च धञ्ञागारं परिपूरेय्य।

नहीं होता; क्योंकि एक के लीन होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण, जीव न वही रहता है और न दूसरा ही हो जाता है। एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लीन होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।" (२)

"कृपया इसे एक और उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! दूध दुहे जाने पर कुछ समय के बाद वह जम कर दही हो जाता है; दही से मक्खन, मक्खन से घी बना लिया जाता है। तब कोई कहे 'जो दूध था वही दही था, जो दही था वही मक्खन था और जो मक्खन था वही घी भी था'। महाराज! ऐसा कहने वाला क्या ठीक कहता है?" "नहीं, भन्ते!" "दूध से ये चीजे बन गयीं।" "महाराज! ठीक इसी भाँति किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लीन होती है और इस तरह प्रवाह चलता रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता; क्योंकि एक के लीन होते ही दूसरा उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण, न वही जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है। (एक जन्म के अन्तिम.... पूर्ववत्.... का लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।)" (३)

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

२. प्रतिसन्धि(पुनर्जन्म)विषयक प्रश्न— २. राजा बोला— "भन्ते! जो इसके बाद जन्म नहीं लेता, क्या वह जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं लूँगा?" "हाँ, महाराज! वह जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं लूँगा।" "भन्ते! वह इस बात को कैसे जानता है?" "महाराज! पुनर्जन्म लेने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जान लेता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई किसान जोत–बो कर अपने भण्डार को भर ले, फिर कुछ समय तक

सो अपरेन समयेन नेव कस्सेय्य, न वपेय्य; यथासम्भतं च धञ्ञं परिभुञ्जेय्य वा विसज्जेय्य वा यथापच्चयं वा करेय्य। जानेय्य सो, महाराज, कस्सको गहप

२. "सोतापत्तिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं; सकदागामिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं; अनागामिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं, अरहत्तफलं, महाराज, निप्पपञ्चं" ति। "यदि, भन्ते नागसेन, सोतापत्तिफलं निप्पपञ्चं, सकदागामि....अनागामि....अरहत्तफलं निप्पपञ्चं, किस्स पन इमे भिक्खू उद्दिसन्ति परिपुच्छन्ति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं नवकम्मेन पलिबुज्झन्ति दानेन च पूजाय च? ननु ते जिनप्पटिक्खित्तं कम्मं करोन्ती" ति?

"ये ते, महाराज, भिक्खू उद्दिसन्ति परिपुच्छन्ति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं, नवकम्मेन पलिबुज्झन्ति दानेन च पूजाय च, सब्बे ते निप्पपञ्चस्स पत्तिया करोन्ति। ये ते, महाराज, सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना, ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा, ते इमेहि पयोगेहि निप्पपञ्चा होन्ति।

"यथा, महाराज, एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा अत्तनो यथाबलविरियेन विना पाकारवतिया धञ्ञं उद्धरेय्य, एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा वनं पविसित्वा कट्ठं च साखं च छिन्दित्वा वतिपाकारं कत्वा धञ्ञं उद्धरेय्य, या तत्थ वतिपाकारपरियेसना सा धञ्ञत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति, विना वतिपाकारं पुरिसो विय धञ्ञुद्धारो। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा, ते इमेहि पयोगेहि निप्पपञ्चा होन्ति, वतिपाकारं कत्वा पुरिसो विय धञ्ञुद्धारो। (क)

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो महतिमहन्ते अम्बरुक्खमत्थके फलपिण्डि भवेय्य,

---

२. "महाराज! स्रोतआपति के फल में प्रपञ्च (=झंझट) नहीं है, इसी तरह सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् के फल में भी प्रपञ्च नहीं है।" "भन्ते नागसेन! यदि ऐसी बात है तो भिक्षु लोग बुद्धशासन के नौ अङ्गों के झंझट में क्यों पड़ते हैं, जैसे—सूत्र, गेय, गाथा, व्याकरण, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म (=विचित्र घटनायें) और वेदल्ल? इन अङ्गों को क्यों पढाते हैं और स्वयं आपस में उनकी चर्चा करते है? नये—नये विहार बनवाने, दान लेने और पूजा कराने के प्रपञ्च में क्यों पड़ते हैं? (इस प्रकार) क्या वे बुद्ध द्वारा निषिद्ध कार्यों को नहीं करते?"

"महाराज! वे इन बातों को प्रपञ्च से छूटने के लिये ही करते हैं। महाराज! जो अपने पूर्व—जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही समग्र जग प्रपञ्च से छूट (अर्हत् हो) जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग हैं, वे भी इन्ही उपायों से धीरे—धीरे प्रपञ्च से छूट सकते हैं।

"महाराज! जैसे कोई आदमी खेत में बीज बो कर बिना कोई बाड़ लगाये अपने बल और वीर्य से फसल (उपज) निकाल लेता है। दूसरा आदमी जंगल में लकड़ी और शाखाएं काट कर लाता है और खेत के चारों ओर बाड़ बाँधता है, उसके बाद ही बीज बो कर फसल उगाता है। (यह) जो दूसरे आदमी का बाड़ बाँधने के लिये प्रयत्न करना है सो फसल उगाने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही, जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं, वे शीघ्र ही बिना बाड़ बाँधे फसल निकालने वाले पुरुष की तरह सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। परन्तु, जिन भिक्षुओं में अभी तक राग है, वे धीर—धीरे बाड़ बाँध कर फसल उगाने वाले पुरुष की तरह प्रपञ्च से छूट जाते हैं। (क)

"महाराज! जैसे आम के किसी ऊँचे वृक्ष पर फलों का एक गुच्छा लगा हो। कोई ऋद्धिमान्

अथ तत्थ यो कोचि इद्धिमा आगन्त्वा तस्स फलं हरेय्य, यो पन तत्थ अनिद्धिमा सो कट्ठं च वल्लिं च छिन्दित्वा निस्सेणिं बन्धित्वा ताय तं रुक्खं अभिरूहित्वा फलं हरेय्य, या तत्थ तस्स निस्सेणिपरियेसना सा फलत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिशुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति, इद्धिमा विय रुक्खफलं हरन्तो। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा ते इमिना पयोगेन सच्चानि अभिसमेन्ति, निस्सेणिया विय पुरिसो रुक्खफलं हरन्तो।(ख)

"यथा वा पन, महाराज, एको पुरिसो अत्थकरणिको एकको येव सामिकं उपगन्त्वा अत्थं साधेति, एको धनवा धनवसेन परिसं वड्ढेत्वा परिसाय अत्थं साधेति, या तत्थ तस्स परिसपरियेसना सा अत्थत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचितक्खणेन छसु अभिञ्ञासु वसिभावं पापुणन्ति, पुरिसो विय एकको अत्थसिद्धिं करोन्तो। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा ते इमेहि पयोगेहि सामञ्ञत्थमभिसाधेन्ति, परिसाय विय पुरिसो अत्थसिद्धिं करोन्तो। (ग)

"उद्देसो पि, महाराज, बहुकारो, परिपुच्छा पि बहुकारा, नवकम्मं पि बहुकारं, दानं पि बहुकारं, पूजा पि बहुकारा तेसु तेसु करणीयेसु। यथा, महाराज, पुरिसो राजूपसेवी कतावी अमच्चभटबलत्थदोवारिकअनीकट्ठपारिसज्जजनेहि, ते करणीये अनुप्पत्ते सब्बे पि उपकारा होन्ति; एवमेव खो, महाराज उद्देसो पि बहुकारो, परिपुच्छा पि बहुकारा, नवकम्मं पि बहुकारं, दानं पि बहुकारं, पूजा पि बहुकारा तेसु तेसु करणीयेसु। यदि, महाराज, सब्बे पि अभिजातिपरिसुद्धा भवेय्युं, अनुसासनेन करणीयं न भवेय्य। यस्मा च खो, महाराज, सवनेन करणीयं होति। थेरो, महाराज, सारिपुत्तो अपरिमितमसङ्ख्येय्यकप्पं उपादाय उपचित-

---

पुरुष चाहे तो सहज ही उसे ले सकता है; किन्तु साधारण आदमी को वृक्ष पर जाने के लिये लकड़ियाँ काटकर कोई सीढ़ी बाँधनी पड़ेगी। यहाँ भी जो दूसरे पुरुष का सीढ़ी लगाना है, वह फल लेने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं, वे शीघ्र ही ऋद्धिमान् पुरुष की फलप्राप्ति के समान सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग हैं, वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे सीढ़ी वाले पुरुष की तरह प्रपञ्च से छूट सकते हैं। (ख)

"महाराज! जैसे कोई चतुर चालाक आदमी अकेला ही राजा के पास जा कर अपना इष्ट कार्य पूर्ण कर लेता है। और दूसरा कोई धनवान् आदमी अपने धन के कारण राजा के पास किसी काम से एक बड़ी मण्डली लेकर जाता है। यहाँ, उनका बड़ी मण्डली का बटोरना भी अपना कार्य निकालने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही, जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही, उस चतुर आदमी की तरह, सभी प्रपञ्चों से छूट जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग है, वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे, उस धनवान् आदमी की तरह प्रपञ्च से छूट सकते हैं। (ग)

"महाराज! धर्मग्रन्थों का पाठ बहुत अच्छा है, धर्मचर्चा भी बहुत अच्छी है, नये विहार बनवाना भी बहुत अच्छा है तथा दान-पूजा भी बहुत अच्छी है। इनसे बहुत लाभ होता है। महाराज! राजा के बहुत से नौकर होते हैं, जैसे-अधिकारी, सिपाही, दूत, चौकीदार, अङ्गरक्षक तथा सभासद। राजा का कुछ काम आ पड़ने पर सभी कुछ न कुछ उपकार करते हैं। महाराज! वैसे ही, धर्म-ग्रन्थों का पाठ, धर्म-चर्चा, नये विहार बनवाना तथा दान-पूजा आदि सभी बहुत उपकारक हैं। महाराज! यदि सभी लोग स्वयं शुद्ध हों तो उपदेश देने वाले की आवश्यकता ही न पड़े। महाराज! किन्तु ऐसी बात नहीं हैं। शिष्य बनने

कुसलमूलो पञ्ञाय कोटिं गतो, सो पि विना सवनेन नासक्खि आसवक्खयं पापुणितुं। तस्मा, महाराज, बहुकारं सवनं, तथा उद्देसो पि, परिपुच्छा पि। तस्मा उद्देसपरिपुच्छा निप्पपञ्चा सङ्खाता'' ति।

''सुविनिज्झापितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

२. खीणासवभावपञ्हो

३. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'यो गिही अरहत्तं पत्तो द्वे वास्स गतियो अनञ्ञा भवन्ति—तस्मिंयेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। न सो दिवसो सक्का अतिक्कमेतुं' ति। सचे सो, भन्ते नागसेन, तस्मिं दिवसे आचरियं वा पत्तचीवरं वा न लभेथ, अपि नु खो सो अरहा सयं वा पब्बजेय्य, दिवसं वा अतिक्कमेय्य, अञ्ञो कोचि अरहा इद्धिमा आगन्त्वा तं पब्बाजेय्य, परिनिब्बायेय्य वा''? ''न सो, महाराज, अरहा सयं पब्बजेय्य। सयं पब्बजन्तो थेय्यं आपज्जति। न च दिवसं अतिक्कमेय्य। अञ्ञस्स अरहन्तस्स आगमनं भवेय्य वा न वा भवेय्य, तस्मिंयेव दिवसे परिनिब्बायेय्या'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, अरहत्तस्स सन्तभावो विजहितो होति, येन अधिगतस्स जीवितहारो भवती'' ति? ''विसमं, महाराज, गिहिलिङ्गं, विसमे लिङ्गे लिङ्गदुब्बलताय अरहत्तं पत्तो गिही तस्मिं येव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। नेसो, महाराज, दोसो अरहत्तस्स, गिहिलिङ्गस्सेसो दोसो यदिदं लिङ्गदुब्बलता।

''यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं आयुपालकं जीवितरक्खकं विसमकोट्ठस्स

की अत्यन्त आवश्यकता है। स्थविर सारिपुत्र ने अत्यधिक कल्पों तक बहुत पुण्य कमाया था और प्रज्ञापारमिता प्राप्त कर ली थी। किन्तु अर्हत् पद पाने के लिये उन्हें भी गुरु बनाना पड़ा। महाराज! इस तरह, शिष्य बनने में बहुत लाभ हैं; धर्म–ग्रन्थों का श्रवण उनका पाठ और उनके विषय में चर्चा– सभी से बहुत लाभ होता है। इसलिये, जो भिक्षु इनमें रहते हैं, वे धीरे–धीरे भवप्रपञ्च से छूट जाते हैं।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं आपका कथन स्वीकार करता हूँ।''

२. गृहस्थ का अर्हत्त्व—३. ''भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं –'जो गृहस्थ रहते हुए अर्हत् पद पा लेता है उसके लिये दो बातें हो सकती हैं, तीसरी नहीं। या तो वह उसी दिन प्रव्रजित हो जाय या परिनिर्वाण पा ले। (ऐसा किये विना) उस दिन को वह बिता नहीं सकता'। भन्ते! यदि उस दिन उसे आचार्य, उपाध्याय, पात्र और चीवर न मिलें तो वह क्या करेगा? वह क्या अर्हत् हो कर विना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित कर लेगा? अथवा, एक दिन तक ठहर जायगा? अथवा, कोई दूसरा ऋद्धिमान् अर्हत् आ कर उसे प्रव्रजित कर देगा? अथवा, परिनिर्वाण पा लेगा?'' ''महाराज! वह अर्हत् हो, विना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित नहीं कर सकेगा। स्वयं प्रव्रजित कर लेने से उसे चोरी का दोष लगेगा। (क्योंकि वह विना अधिकार पाये ही भिक्षु–वेष धारण करता है।) वह एक दिन ठहर भी नहीं सकता। दूसरे अर्हत् आवें या न आवें वह उसी दिन परिनिर्वाण पा लेगा।'' ''भन्ते नागसेन! तब तो अर्हत् का शान्तभाव नहीं रहता; क्योंकि उसमें जीवन का हरण किया जाता है।'' ''महाराज! गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नहीं। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शान्तभाव में कोई दोष नहीं हैं। गृहस्थ रहने के अनुकूल न होना ही यहाँ कारण है। गृहस्थ के वेश में इतना बल नहीं कि अर्हत्त्व को सँभाल सके।

''महाराज! जैसे भोजन सभी जीवों का पालन करता है; सभी जीवों की प्राणरक्षा करता है। किन्तु वही भोजन, पेट में रोग हो जाने या अग्नि के मन्द पड़ जाने पर, प्राण भी ले लेता है। महाराज!

मन्ददुब्बलगहणिकस्स अविपाकेन जीवितं हरति, नेसो, महाराज, दोसो भोजनस्स, कोट्ठस्सेवेसो दोसो, यदिदं अग्गिदुब्बलता; एवमेव खो, महाराज, विसमे लिङ्गे लिङ्गदुब्बलताय अरहत्तं पत्तो गिही तस्मिंयेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। नेसो, महाराज, दोसो अरहत्तस्स, गिहिलिङ्गस्सेसो दोसो यदिदं लिङ्गदुब्बलता।

४. "यथा वा पन, महाराज, परित्तं तिणसलाकं उपरि गरुके पासाणे पतिते दुब्बलताय भिन्दित्वा पतति; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो गिही तेन लिङ्गेन अरहत्तं धारेतुं असक्कोन्तो तस्मिंयेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा।

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो अबलो दुब्बलो निहीनजच्चो परित्तपुञ्ञो महतिमहारज्जं लभित्वा खणेन परिपतति परिधंसति ओसक्कति, न सक्कोति इस्सरियं धारेतुं; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो गिही तेन लिङ्गेन अरहत्तं धारेतुं न सक्कोति, तेन कारणेन तस्मिं येव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

३. खीणासवसतिसम्मोसपञ्हो

५. "भन्ते नागसेन, अत्थि अरहतो सतिसम्मोसो" ति? "विगतसतिसम्मोसा खो, महाराज, अरहन्ता, नत्थि अरहन्तानं सतिसम्मोसो" ति। "आपज्जेय पन, भन्ते, अरहा आपत्तिं" ति? "आम, महाराजा" ति। "कस्मिं वत्थुस्मिं" ति? "कुटिकारे, महाराजा, सञ्चरित्ते, विकाले कालसञ्ञाय, पवारिते अप्पवारितसञ्ञाय, अनतिरित्ते अतिरित्तसञ्ञाया" ति।

"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'ये आपत्तिं आपज्जन्ति ते द्वीहि कारणेहि आपज्जन्ति—अनादरियेन वा, अजानन्तेन वा' ति। अपि नु खो, भन्ते, अरहतो अनादरियं होति, यं अरहा आपत्तिं आपज्जती" ति? "न हि, महाराजा" ति।

इसमें भोजन का दोष नहीं, अपितु पेट की कमजोरी और अग्नि के मन्द पड़ जाने का ही दोष है। महाराज! उसी तरह गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नहीं। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शान्तभाव में ....पूर्ववत्.... सँभाल सके।

४. "महाराज! यदि एक छोटे से तिनके पर एक भारी पत्थर रख दिया जाय तो कमजोर होने के कारण टूट जायगा और कुचला जायगा; महाराज! उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्त्व को नहीं सम्भाल सकता। गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है।

"महाराज! जैसे यदि छोटी जाति के किसी गरीब और मूर्ख आदमी को विशाल राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह उसे नहीं सम्हाल सकेगा; महाराज! उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्त्व को नहीं सम्हाल सकता। गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं मान लेता हूँ।"

३. क्षीणास्रव का स्मृतिभ्रंश—५. "भन्ते नागसेन! क्या अर्हत् कभी अपनी स्मृति से च्युत हो जाता है?" "महाराज! अर्हत् कभी भी अपनी स्मृति से च्युत नहीं होता। उसका चित्त कभी भी असावधान नहीं होता।" "भन्ते! क्या अर्हत् कभी कोई प्रमाद कर सकता है?" "हाँ, महाराज! कर सकता है।" "भन्ते! वह किस तरह?" "कुटी बनवाने में, सच्चरित्रता में, विकाल को उचित काल समझ लेने में, प्रवारित को अप्रवारित समझ लेने में, जो अतिरिक्त नहीं है उसे अतिरिक्त समझ लेने में।"

''यदि, भन्ते नागसेन, अरहा आपत्तिं आपज्जति, नत्थि च अरहतो अनादरियं, तेन हि अत्थि अरहतो सतिसम्मोसो'' ति? ''नत्थि, महाराज, अरहतो सतिसम्मोसो। आपत्तिं च अरहा आपज्जती'' ति। ''तेन हि, भन्ते, कारणेन मं सञ्ञापेहि, किं तत्थ कारणं'' ति?

६. ''द्वेमे, महाराज, किलेसा—लोकवज्जं, पण्णत्तिवज्जं चा ति। कतमं महाराज, लोकवज्जं? दस अकुसलकम्मपथा, इदं वुच्चति लोकवज्जं। कतमं पण्णत्तिवज्जं? यं लोके अत्थि समणानं अननुच्छविकं अननुलोमिकं, गिहीनं अनवज्जं, तत्थ भगवा सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति—'यावजीवं अनतिक्कमनीयं'। विकालभोजनं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। भूतगामविकोपनं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। उदके हस्सधम्मं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। इति एवरूपानि, महाराज, जिनसासने वज्जानि, इदं वुच्चति पण्णत्तिवज्जं।

''यं किलेसं लोकवज्जं अभब्बो खीणासवो तं अज्झाचरितुं। यं किलेसं पण्णत्तिवज्जं तं अजानन्तो आपज्जेय्य। अविसयो, महाराज, एकच्चस्स अरहतो सब्बं जानितुं। न हि तस्स बलं अत्थि सब्बं जानितुं। अनञ्ञातं, महाराज, अरहतो इत्थिपुरिसानं नामं पि गोत्तं पि, मग्गो पि तस्स महिया अनञ्ञातो। विमुत्तिं येव, महाराज, एकच्चो अरहा जानेय्य, छळभिञ्ञो अरहा सकविसयं जानेय्य। सब्बञ्ञू, महाराज, तथागतो व सब्बं जानाती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

"भन्ते! आप लोग कहते हैं—प्रमाद करने के दो ही कारण हो सकते हैं—१. असावधानी या २. अज्ञता। क्या असावधानीवश अर्हत् दोष करता है?" "नहीं, महाराज।"

"भन्ते! तो अवश्य अपनी स्मृति से च्युत हो जाने के कारण ही वह दोष करता होगा?" "नहीं, महाराज! यद्यपि वह दोष करता है तो भी अपनी स्मृति से च्युत नहीं होता।" "भन्ते! यह कैसे हो सकता है?— कृपया कारण बताते हुए मुझे समझावें।"

६. "महाराज! दोष दो प्रकार के होते हैं—(१) निन्द्य कर्म करना और (२) भिक्षु—नियम के विरुद्ध आचरण। (१) निन्द्य कर्म क्या है? ये दश प्रकार के पाप—१. जीव—हिंसा, २. चोरी, ३. व्यभिचार, ४ झूठ, ५. चुगली खाना, ६. कठोरवाणी, ७. गप्प मारना, ८. लोभ, ९. द्वेष और १०. मिथ्यादृष्टि (=झूठी धारणा) निन्द्य कर्म हैं। (२) भिक्षु—नियम (प्रज्ञप्ति) के विरुद्ध आचरण करना क्या है? जो भिक्षु के लिये समझा जाता हो, किन्तु साधारण लोगों के लिये नहीं—वे नियम जिन्हें भगवान् ने भिक्षुओं को जन्म भर पालन करने को कहा है। महाराज! जैसे गृहस्थों के लिये दोपहर के बाद भोजन करने में कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। फूल—पत्तों को तोड़ने में गृहस्थ के लिये कोई दोष नहीं; किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर पाते। जलक्रीड़ा करने में गृहस्थों के लिये कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं करते। महाराज! ऐसे ही, और भी कितनी ही बातें हैं जिनके करने से गृहस्थों के लिये तो कोई दोष नहीं होता, किन्तु भिक्षु नहीं कर सकते। महाराज! इन्हीं को भिक्षु—नियम के विरुद्ध आचरण करना कहते हैं।

"महाराज! जो लोकनिन्द्य अनुचित कर्म हैं उन दोषों को अर्हत् कभी नहीं कर सकता, किन्तु हाँ, कभी कभी विना जाने भिक्षु—नियम के विरुद्ध कर सकता है। सभी अर्हत् सभी बातों को नहीं जानते। उनका ऐसा बल नहीं है कि वे सभी कुछ जान लें। स्त्री—पुरुषों के नाम और गोत्र को भी अर्हत् नहीं जान सकता है। किसी विशेष मार्ग का भी उसे ज्ञान भले ही न हो, किन्तु अर्हत् मुक्ति को अवश्य जानता है। छह अभिज्ञाओं की सारी बातों को अर्हत् अवश्य जानता है। महाराज! सर्वज्ञ बुद्ध ही सब कुछ जानते हैं।"

४. लोके नत्थिभावपञ्हो

७. ''भन्ते नागसेन, दिस्सन्ति लोके बुद्धा, दिस्सन्ति पच्चेकबुद्धा, दिस्सन्ति तथागतसावका, दिस्सन्ति चक्कवत्तिराजानो, दिस्सन्ति पदेसराजानो, दिस्सन्ति देवमनुस्सा, दिस्सन्ति सधना, दिस्सन्ति अधना, दिस्सन्ति सुगता, दिस्सन्ति दुग्गता, दिस्सति पुरिसस्स इत्थिलिङ्गं पातुभुतं, दिस्सति इत्थिया पुरिसलिङ्गं पातुभूतं, दिस्सति सुकतं दुक्कतं कम्मं, दिस्सन्ति कल्याणपापकानं कम्मानं विपाकूपभोगिनो सत्ता, अत्थि लोके सत्ता अण्डजा जलाबुजा संसेदजा ओपपातिका, अत्थि सत्ता अपदा दिपदा चतुप्पदा बहुप्पदा, अत्थि लोके यक्खा रक्खसा कुम्भण्डा असुरा दानवा गन्धब्बा पेता पिसाचा, अत्थि किन्नरा महोरगा नागा सुपण्णा सिद्धा विज्जाधरा, अत्थि हत्थी अस्सा गावो महिसा ओट्टा गद्रभा अजा एळका मिगा सूकरा सीहा ब्यग्घा दीपी अच्छा कोका तरच्छा सोणा सिगाला, अत्थि बहुविधा सकुणा, अत्थि सुवण्णं रजतं मुत्ता मणि सङ्खो सिला पवाळं लोहितङ्को मसारगल्लं वेळुरियो वजिरं फलिकं काळलोहं तम्बलोहं बट्टलोहं कंसलोहं, अत्थि खोमं कोसेय्यं कप्पासिकं साणं भङ्गं कम्बलं, अत्थि सालि वीहि यवो कङ्गु कुद्रूसो वरको गोधूमो मुग्गो मासो तिलं कुलत्थं, अत्थि मूलगन्धो सारगन्धो फेग्गुगन्धो तचगन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलगन्धो सब्बगन्धो, अत्थि तिणलतागच्छरुक्खओसधिवनस्पतिनदीपब्बतसमुद्दमच्छकच्छपा, सब्बं लोके अत्थि। यं, भन्ते, लोके नत्थि तं मे कथेही'' ति?

८. ''तीणिमानि, महाराज, लोके नत्थि। कतमानि तीणि? सचेतना वा अचेतना वा अजरामरा लोके नत्थि, सङ्खारानं निच्चता नत्थि, परमत्थेन सत्तूपलद्धि नत्थि। इमानि खो, महाराज, तीणि लोके नत्थी'' ति।

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं उसे मान लेता हूँ।"

४. नास्ति–भावविषयकप्रश्न–७. "भन्ते नागसेन! संसार में बुद्ध, प्रत्येकबुद्ध, बुद्ध के श्रावक, चक्रवर्ती राजा, छोटे–बड़े राजा, देवता, मनुष्य, धनी, निर्धन, सत्कर्म एवं दुष्कर्म करने वाले, पुरुष को स्त्री–चिह्न उत्पन्न होते, स्त्री को पुरुष–चिह्न उत्पन्न होते, अच्छे काम को बिगड़ते, पाप और पुण्य के फल भोगते हुए लोग देखे जाते हैं; संसार में कितने ही जीव अण्डज हैं, कितने जरायुज, कितने संस्वेदज और कितने ही औपपातिक; कितने ही जीव विना पैर वाले, कितने दो पैर वाले, कितने चार पैर वाले, कितने अनेक पैर वाले हैं, संसार में यक्ष, राक्षस, कुम्भाण्ड, असुर, दानव, गन्धव, प्रेत, पिशाच, किन्नर, बड़े–बड़े सर्प, नाग, गरुड़, सिद्ध विद्याधर भी हैं; हाथी, घोड़े, भैस, ऊँट, गदहे, बकरे, भेड़, मृग, सूअर, सिंह, बाघ, चीते, भालू, भेड़िये, तरख, कुत्ते, सियार भी हैं; अनेक प्रकार के पक्षी भी हैं; सोना, चाँदी, मोती, मणि, शङ्ख, मैनसिल, मूँगा, लालमणि, मसारगल्ल (मणिरत्न), वैदूर्य (=हीरा), वज्र, स्फटिक, लोहा, ताँबा, पीतल, काँसा भी है; क्षोम वस्त्र, कौषेय, सूती, टाट, सन के कपड़े, कम्बल भी हैं; शाली, धान, जौ, प्रियङ्गु (कागुन), कुद्रुस (कोदो), वरका, गेहूँ, मूँग, उड़द, तिल, कुलत्थ भी हैं; मूल के गन्ध, सार (हीर) के गन्ध, पपड़ी के गन्ध, छाल के गन्ध, पत्तों के गन्ध, फूल के गन्ध, फल के गन्ध भी हैं तथा और भी तरह–तरह के गन्धद्रव्य हैं; घास, लता, तरु, वृक्ष औषधि, वनस्पति भी हैं; नदी, पर्वत, समुद्र भी हैं, मछली और कछुए भी हैं–संसार में सब कुछ है। भन्ते! जो संसार में नहीं है, उसे कृपा कर बतावें?"

८. "महाराज! संसार में तीन पदार्थ नहीं हैं। कौन से तीन? महाराज! १, संसार में अजर,

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

५. अकम्मजादिपञ्हो

९. "भन्ते नागसेन, दिस्सन्ति लोके कम्मनिब्बत्ता, दिस्सन्ति हेतुनिब्बत्ता, दिस्सन्ति उतुनिब्बत्ता। यं लोके अकम्मजं अहेतुजं अनुतुजं तं मे कथेही" ति?

१०. "द्वेमे, महाराज, लोकस्मिं अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा। कतमे द्वे? आकासो, महाराज, अकम्मजो अहेतुजो अनुतुजो; निब्बानं, महाराज, अकम्मजं अहेतुजं—इमे खो, महाराज, द्वे अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा" ति।

"मा, भन्ते नागसेन, जिनवचनं मक्खेहि, मा अजानित्वा पञ्हं ब्याकरोही" ति? "किं नु खो, महाराज, अहं वदामि यं मं त्वं एवं वदेसि—'मा, भन्ते नागसेन, जिनवचनं मक्खेहि, मा अजानित्वा पञ्हं ब्याकरोही' " ति। "भन्ते नागसेन, युत्तमिदं ताव वत्तुं—'आकासो अकम्मजो अहेतुजो अनुतुजो' ति। अनेकसतेहि पन, भन्ते नागसेन, कारणेहि भगवता सावकानं निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातो, अथ च पन त्वं एवं वदेसि—'अहेतुजं निब्बानं" ति।

"सच्चं, महाराज, भगवता अनेकसतेहि कारणेहि सावकानं निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातो, न च पन निब्बानस्स उप्पादाय हेतु अक्खातो" ति।

"एत्थ मयं, भन्ते नागसेन, अन्धकारतो अन्धकारतरं पविसाम, वनतो वनतरं पविसाम,

---

अमर, सचेतन या अचेतन कोई भी नहीं है; २. संस्कारों की नित्यता नहीं है; और ३. परमार्थतः कोई जीव या आत्मा (बाली वस्तु) नहीं है। यों, महाराज! संसार में ये तीन पदार्थ नहीं हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं मान लेता हूँ।"

५. अकर्मजादिविषयकप्रश्न— ९. "भन्ते नागसेन! संसार में कुछ तो कर्म के कारण उत्पन्न होते देखे जाते हैं, कुछ हेतु के कारण और कुछ ऋतु के कारण। किन्तु भन्ते! जो इस संसार में न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता हो कृपया उसे बतावें?"

१०. "महाराज! संसार में ऐसे दो ही पदार्थ हैं, जो न कर्म के कारण न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं। कौन से दो? महाराज! १. आकाश, जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है और २. निर्वाण, जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है। महाराज! ये दो पदार्थ न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं।"

"भन्ते नागसेन! भगवान् बुद्ध की बात को न उलटें। विना समझें उत्तर न दें।" "महाराज! मैं ने क्या कहा कि आप यह उपालम्भ दे रहे हैं कि 'भन्ते नागसेन! भगवान् की बात को न उलटें। विना समझे उत्तर न दें'।" "भन्ते नागसेन! यह कहना ठीक हो सकता है कि आकाश न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है। किन्तु, भन्ते! सैकड़ों तरह से भगवान् ने अपने श्रावकों को निर्वाण के साक्षात्कार का मार्ग बतलाया है। इस पर भी आप कैसे कह सकते हैं कि निर्वाण अहेतुक होता है?"

"महाराज! यह सत्य है कि भगवान् ने सैकड़ों तरह से अपने श्रावकों को निर्वाण के साक्षात्कार का मार्ग बतलाया है। किन्तु उन्होंने निर्वाण उत्पन्न करने वाला कोई हेतु नहीं कहा।"

गहनतो गहनतरं पविसाम, यत्र हि नाम निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तस्स पन धम्मस्स उप्पादाय हेतु नत्थि। यदि, भन्ते नागसेन, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन हि निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो?

"यथा पन, भन्ते नागसेन, पुत्तस्स पिता अत्थि, तेन कारणेन पितुनो पि पिता इच्छितब्बो। यथा अन्तेवासिकस्स आचरियो अत्थि, तेन कारणेन आचरियस्स पि आचरियो इच्छितब्बो। यथा अङ्कुरस्स बीजं अत्थि, तेन कारणेन बीजस्स पि बीजं इच्छितब्बं; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन कारणेन निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो?

"यथा रुक्खस्स वा लताय वा अग्गे सति तेन कारणेन मज्झं पि अत्थि, मूलं पि अत्थि; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन कारणेन निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो" ति?

"अनुप्पादनीयं, महाराज, निब्बानं, तस्मा न निब्बानस्स उप्पादाय हेतु अक्खातो" ति।

११. "इङ्घ, भन्ते नागसेन, कारणं दस्सेत्वा कारणेन मं सञ्ञापेहि यथाहं जानेय्यं— 'निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, निब्बानस्स उप्पादाय हेतु नत्थी" ति।

१२. "तेन हि, महाराज, सक्कच्चं सोतं ओदह, साधुकं सुणोहि, वक्खामि तत्थ कारणं। सक्कुणेय्य, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन इतो हिमवन्तं पब्बतराजं उपगन्तुं" ति? "आम, भन्ते" ति। "सक्कुणेय्य पन, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन हिमवन्तं पब्बतराजं इध आहरितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का निब्बानस्स

"भन्ते नागसेन! यह तो और गड़बड़ हो गया। हम गहन अन्धकार में घिर गये! प्रश्न और भी जटिल हो गया! यदि निर्वाण को साक्षात् करने का कोई हेतु है तो यह कैसे हो सकता है कि उसके उत्पन्न करने का हेतु न हो! यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसके उत्पन्न करने का भी हेतु होना चाहिये?"

"भन्ते नागसेन! जैसे पुत्र का पिता है; इसलिये पिता का भी पिता होना चाहिये। शिष्य का गुरु होता है; इसलिये उसका भी गुरु होना चाहिये। अंकुर का बीज होता है; इसलिये उस बीज का भी कोई बीज होना चाहिये। भन्ते नागसेन! उसी तरह, यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसका कोई उत्पादक हेतु भी होना चाहिये?"

"भन्ते नागसेन! वृक्ष या लता का यदि शीर्षभाग होता है तो उसके मध्यभाग और मूल भी होते हैं। भन्ते! उसी तरह, यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसका कोई उत्पादक हेतु भी होना चाहिये?"

"महाराज! निर्वाण उत्पन्न नहीं किया जाता; इसी से उसका कोई हेतु भी नहीं कहा गया है।"

११. "अच्छा, तो भन्ते नागसेन! कारण दे कर मुझे समझावें कि कैसे निर्वाण को साक्षात् करने के हेतु होते हुए भी उसके उत्पन्न करने के हेतु नहीं होते?"

१२. "बहुत अच्छा! आप सावधानी से ध्यान लगा कर सुनें, मैं उसका कारण बता रहा हूँ— महाराज! कोई आदमी अपनी प्राकृतिक शक्ति से यहाँ से पर्वतराज हिमालय जा सकता है?" "हाँ, भन्ते! जा सकता है।" "महाराज! किन्तु वह अपनी प्राकृतिक शक्ति से पर्वतराज हिमालय को यहाँ ला भी

सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातुं। न सक्का निब्बानस्स उप्पादाय हेतु दस्सेतुं। सक्कुणेय्य, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन महासमुद्दं नावाय उत्तरित्वा पारिमतीरं गन्तुं'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''सक्कुणेय्य पन सो, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन महासमुद्दस्स पारिमतीरं इध आहरितुं'' ति? ''नहि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सक्का निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातुं, न सक्का निब्बानस्स उप्पादाय हेतुं दस्सेतुं। किं कारणं? असङ्खतत्ता धम्मस्सा'' ति।

''असङ्खतं, भन्ते नागसेन, निब्बानं'' ति? ''आम, महाराज, असङ्खतं निब्बानं, न केहि पि कतं। निब्बानं, महाराज, न वत्तब्बं— 'उप्पन्नं' ति वा 'अनुप्पन्नं' ति वा 'उप्पादनीयं' ति वा 'अतीतं' ति वा 'अनागतं' ति वा 'पच्चुप्पन्नं' ति वा 'चक्खुविञ्ञेय्यं' ति वा 'घानविञ्ञेय्यं' ति वा 'सोतविञ्ञेय्यं' ति वा 'जिव्हाविञ्ञेय्यं' ति वा 'कायविञ्ञेय्यं' ति वा'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, निब्बानं न उप्पन्नं न अनुप्पन्नं न उप्पादनीयं न अतीतं न अनागतं न पच्चुप्पन्नं न चक्खुविञ्ञेय्यं न सोतविञ्ञेय्यं न घानविञ्ञेय्यं न जिव्हाविञ्ञेय्यं न कायविञ्ञेयं; तेन हि, भन्ते नागसेन, तुम्हे नत्थिधम्मं निब्बानं अपदिसथ—'नत्थि निब्बानं''' ति?'' अत्थि, महाराज, निब्बानं। मनोविञ्ञेय्यं निब्बानं, विसुद्धेन मानसेन पणीतेन उजुकेन अनावरणेन निरामिसेन सम्मापटिपन्नो अरियसावको निब्बानं पस्सती'' ति।

''कीदिसं पन तं, भन्ते, निब्बानं, यं तं ओपम्मेहि आदीपनीयं कारणेहि मं सञ्ञापेहि, यथा अत्थि धम्मं ओपम्मेहि आदीपनीयं'' ति। ''अत्थि, महाराज, वातो नामा'' ति?'' आम, भन्ते'' ति। ''इङ्घ, महाराज, वातं दस्सेहि वण्णतो वा सण्ठानतो वा अणुं वा थूलं वा दीघं वा

सकता है क्या?'' ''नहीं, भन्ते! नहीं ला सकता।'' ''महाराज! इसी तरह, निर्वाण को साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है, किन्तु उसका उत्पादक हेतु कोई नहीं दिखाया जा सकता।''

''महाराज! क्या कोई आदमी अपनी साधारण शक्ति से नाव पर चढ़ कर समुद्र के पार जा सकता है?'' ''हाँ भन्ते! पार जा सकता है।'' ''महाराज! किन्तु क्या वह अपनी साधारण शक्ति से उस पार को इस पार ले आ सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''बस, ठीक वैसे ही, निर्वाण को साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है, किन्तु उसका उत्पादक हेतु कोई नहीं दिखा सकता।'' ''क्यों नहीं?'' ''क्योंकि निर्वाण निर्गुण (असंस्कृत) है।'' ''भन्ते! निर्वाण निर्गुण है?'' ''हाँ, महाराज! निर्वाण निर्गुण है, किसी ने इसे बनाया नहीं। निर्वाण के साथ उत्पन्न होने और न उत्पन्न होने का प्रश्न नहीं उठता। वह उत्पन्न किया जा सकता है अथवा नहीं? यह प्रश्न भी नहीं। निर्वाण वर्तमान, भूत और भविष्यत् तीनों कालों के परे है। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूँघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है और न शरीर से छूआ ही जा सकता है।'' ''भन्ते! इस तरह आप तो यही बता रहे हैं कि निर्वाण कुछ नहीं है। वस्तुतः निर्वाण कुछ है ही नहीं?'' ''महाराज! निर्वाण है, निर्वाण मन से जाना जा सकता है! अर्हत्पद पा कर भिक्षु विशुद्ध, प्रणीत, ऋजु तथा आवरणों और सांसारिक कामनाओं से रहित मन से निर्वाण देखता है।''

''भन्ते! वह निर्वाण कैसा है? उपमा और कारण दे कर स्पष्ट समझावें!'' ''महाराज! वायु नाम की कोई वस्तु है?'' ''हाँ, भन्ते! है।'' ''महाराज! कृपया उसे मुझको दिखा दें। उसके रंग और आकार कैसे हैं? वह क्या पतली है या मोटी? क्या छोटी है या बडी?'' ''भन्ते! वायु को ऐसे नहीं दिखाया जा

रस्सं वा'' ति? ''न सक्का, भन्ते नागसेन, वातो उपदस्सयितुं, न सो वातो हत्थग्गहणं वा निम्मद्दनं वा उपेति, अपि च अत्थि सो वातो'' ति। ''यदि, महाराज, न सक्का वातो उपदस्सयितुं, तेन हि नत्थि वातो'' ति? ''जानामहं, भन्ते नागसेन; 'वातो अत्थी' ति मे हदये अनुपविट्ठं, न चाहं सक्कोमि वातं उपदस्सयितुं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं, न च सक्का निब्बानं उपदस्सयितुं वण्णेन वा सण्ठानेन वा'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, सूपदस्सितं ओपम्मं, सुनिद्दिट्ठं कारणं, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि—'अत्थि निब्बानं' '' ति।

६. कम्मजादिपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, कतमे एत्थ कम्मजा, कतमे हेतुजा, कतमे उतुजा, कतमे न कम्मजा, न हेतुजा न उतुजा'' ति?

१४. ''ये केचि, महाराज, सत्ता सचेतना सब्बे ते कम्मजा, अग्गि च सब्बानि च बीजजातानि हेतुजानि, पठवी च पब्बता च उदकं च वातो च सब्बे ते उतुजा, आकासो च निब्बानं च—इमे द्वे अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा। निब्बानं पन, महाराज, न वत्तब्बं कम्मजं ति वा हेतुजं ति वा उतुजं ति वा, उप्पन्नं ति वा अनुप्पन्नं ति वा, उप्पादनीयं ति वा अतीतं ति वा, अनागतं ति वा पच्चुप्पन्नं ति वा, चक्खुविञ्ञेय्यं ति वा सोतविञ्ञेय्यं ति वा घानविञ्ञेय्यं ति वा जिव्हाविञ्ञेय्यं ति वा कायविञ्ञेय्यं ति वा। अपि च, महाराज, मनोविञ्ञेय्यं निब्बानं यं सो सम्मापटिपन्नो अरियसावको विसुद्धेन ञाणेन पस्सती'' ति।

सकता। वह ऐसी चीज नहीं है कि हाथ में दबाई जा सके तो भी वह होती अवश्य है।'' ''महाराज! यदि आप वायु को उस तरह नहीं दिखा पाते तो वैसी कोई वस्तु ही नहीं है?'' ''भन्ते नागसेन! मैं जानता हूँ, वायु कोई वस्तु है। मुझे पूरा विश्वास है कि वायु नाम की वस्तु है, किन्तु मैं उसे आप को दिखा नहीं सकता।'' ''महाराज! वैसे ही निर्वाण है, किन्तु उसे रंग या रूप से दिखाया नहीं जा सकता।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं समझ गया कि निर्वाण है।''

६. उत्पत्ति–कारणविषयकप्रश्न– १३. ''भन्ते नागसेन! इस लोक में कौन कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, कौन हेतु के कारण और कौन ऋतु के कारण ? और कौन न कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण?''

१४. ''महाराज! जितने सचेतन जीव हैं, सभी कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं। अग्नि और बीज से उगने वाले हेतु से जन्य होते हैं। पृथ्वी, पर्वत, जल, वायु इत्यादि ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं। आकाश और निर्वाण न कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण। महाराज! यह नहीं कहा जा सकता है कि निर्वाण कर्म से उत्पन्न होता है, न यह कि हेतु से उत्पन्न होता है और न यही कि ऋतु से उत्पन्न होता है। न यह कहा जा सकता है कि निर्वाण उत्पन्न होता है, न यह कि निर्वाण नहीं उत्पन्न होता और न यही कि निर्वाण उत्पन्न किया जा सकता है। न यह कहा जा सकता है कि निर्वाण भूत काल में था, न यह कि वर्तमान काल में है और न यही कि भविष्यत् काल में होगा। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूँघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है और न शरीर से स्पर्श ही किया जा सकता है। महाराज! निर्वाण तो मन से ही जाना जा सकता है। अर्हत्पद पाकर आर्यश्रावक विशुद्ध ज्ञान से निर्वाण को साक्षात् करता है।''

"रमणीयो, भन्ते नागसेन, पञ्हो सुविनिच्छितो निस्संसयो एकन्तगतो, विमति उपच्छिन्ना त्वं गणिवरपवरमासज्जा" ति।

७. यक्खपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, अत्थि लोके यक्खा नामा" ति? "आम, महाराज, अत्थि लोके यक्खा नामा" ति। "चवन्ति पन ते, भन्ते, यक्खा तम्हा योनिया" ति। "आम, महाराज, चवन्ति ते तम्हा योनिया" ति। "किस्स पन, भन्ते नागसेन, तेसं मतानं यक्खानं सरीरं न दिस्सति, कुणपगन्धो पि न वायती" ति?

१६. "दिस्सति, महाराज, मतानं यक्खानं सरीरं, कुणपगन्धो पि तेसं वायति। मतानं, महाराज, यक्खानं सरीरं, कुणपगन्धो वा दिस्सति, किमिवण्णेन वा दिस्सति, किपिल्लिकवण्णेन वा दिस्सति, पटङ्गवण्णेन वा दिस्सति, अहिवण्णेन वा दिस्सति, विच्छिकवण्णेन वा दिस्सति, सतपदिवण्णेन वा दिस्सति, दिजवण्णेन वा दिस्सति, मिगवण्णेन वा दिस्सती" ति।

"को हि, भन्ते नागसेन, अञ्ञो इदं पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेय्य अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता" ति!

८. अनवसेससिक्खापदपञ्हो

१७. "भन्ते नागसेन, ये ते अहेसुं तिकिच्छकानं पुब्बका आचरिया, सेय्यथीदं— नारदो, धम्मन्तरी, अङ्गीरसो, कपिलो, कण्डरग्गि, सामो, अतुलो, पुब्बकच्चायनो। सब्बे पेते आचरिया सकिं येव रोगुप्पत्तिं च निदानं च सभावं च समुट्ठानं च तिकिच्छं च किरियं च सिद्धासिद्धं च सब्बं तं निरवसेसं जानित्वा— 'इमस्मिं काये एत्तका रोगा उप्पज्जिस्सन्ती' ति एकप्पहारेन कलापग्गाहं करित्वा सुत्तं बन्धिसु। सब्बञ्ञुनो एते सब्बे। किस्स पन तथागतो सब्बञ्ञू समानो अनागतं किरियं बुद्धञाणेन जानित्वा— 'एत्तके नाम वत्थुस्मिं एत्तकं नाम सिक्खापदं पञ्ञापेतब्बं भविस्सती' ति परिच्छिन्दित्वा अनवसेसतो सिक्खापदं न पञ्ञापेसि?

"भन्ते! इस मनोहर प्रश्न को आप ने अच्छी तरह उत्तरित कर दिया। संशय को हटा कर बात सर्वथा स्पष्ट कर दी। आप जैसे गणाचार्यश्रेष्ठ के पास आ कर मेरी यह शङ्का मिट गयी।"

७. यक्षविषयकप्रश्न— १५. "भन्ते! क्या वस्तुतः यक्ष होते हैं?" "हाँ महाराज! यक्ष होते हैं।" "भन्ते! यक्ष लोग उस योनि से क्या मर भी जाते हैं?" "हाँ, महाराज! यक्ष लोग उस योनि से मर भी जाते हैं।" "भन्ते! तो उनके शव क्यों नहीं देखने में आते? उनके मृत शरीर की दुर्गन्ध भी कभी क्यों नहीं आती?"

१६. "महाराज! मृत यक्ष के ये शव देखने में आते हैं, उनकी दुर्गन्ध भी आती है। महाराज! मृत यक्ष के शरीर कीड़ों के रूप में, पिल्लू के रूप में, चींटी और पतङ्गों के रूप में, साँप और विच्छू तथा कानखजूरे के रूप में, चिड़ियों और जंगली जानवरों के रूप में देखे जाते हैं।"

"भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ भला और कौन दूसरा इस प्रश्न का उत्तर दे सकता था!"

८. समग्रशिक्षापदविषयकप्रश्न— १७. "भन्ते! वैद्यक शास्त्र के जो पुराने आचार्य हुए हैं— नारद, धन्वन्तरि, अङ्गीरस, कपिल, कण्डराग्नि, साम, अतुल और पूर्वकात्यायन— सभी ने स्वयं अनुभव कर शास्त्र लिखे थे; क्योंकि वे सर्वज्ञ थे। भन्ते! किन्तु भगवान् भी तो सर्वज्ञ थे। अपनी सर्वज्ञता से वे आगे पीछे की बातों को ठीक–ठीक जान लेते थे। सो उन्होंने पहले ही एक बार में विनय के सभी नियमों को क्यों नहीं बता दिया, जो आगे चल कर उचित स्थान पर चरितार्थ किये जाते? क्यों रह–रह कर जब–

उप्पन्नुप्पन्ने वत्थुस्मिं अयसे पाकटे, दोसे वित्थारिते पुथुगते, उज्झायन्तेसु मनुस्सेसु, तस्मिं तस्मिं काले सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेसी'' ति?

१८. ''ञातमेतं, महाराज, तथागतस्स—'इमस्मिं समये इमेसु मनुस्सेसु साधिकं दियड्ढसिक्खापदसतं पञ्ञापेतब्बं भविस्सती' ति। अपि च तथागतस्स एवं अहोसि—'सचे खो अहं साधिकं दियड्ढसिक्खापदसतं एकप्पहारं पञ्ञापेस्सामि, महाजनो सन्तासमापज्जिस्सति— बहुकं इध रक्खितब्बं, दुक्करं वत, भो, गोतमस्स सासने पब्बजितुं ति, पब्बजितुकामा पि न पब्बजिस्सन्ति, वचनं च मे न सद्दहिस्सन्ति, असद्दहन्ता ते मनुस्सा अपायगामिनो भविस्सन्ति। उप्पन्नुप्पन्नवत्थुस्मिं धम्मदेसनाय विञ्ञापेत्वा पाकटे दोसे सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामी' '' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, बुद्धानं, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, बुद्धानं; याव महन्तं तथागतस्स सब्बञ्ञुतञाणं। एवमेतं, भन्ते नागसेन, सुनिद्दिट्ठो एसो अत्थो तथागतेन, 'बहुकं इध रक्खितब्बं' ति सुत्वा सत्तानं सन्तासो उप्पज्जेय्य, एको पि जिनसासने न पब्बजेय्य, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

९. सुरियतपनपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, अयं सुरियो सब्बकालं कठिनं तपति, उदाहु किञ्चि कालं मन्दं तपती'' ति? ''सब्बकालं, महाराज, सुरियो कठिनं तपति, न किञ्चि कालं मन्दं तपती'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, सुरियो सब्बकालं कठिनं तपति, किस्स पन अप्पेकदा सुरियो कठिनं तपति, अप्पेकदा मन्दं तपती'' ति?

२०. ''चत्तारो मे, महाराज, सुरियस्स रोगा, येसं अञ्ञतरेन रोगेन परिपीळितो सुरियो

जब प्रसङ्ग आता गया तब-तब ही नियम बनाते गये? क्यों भिक्षुओं में पाप फैलने देने की प्रतीक्षा की? क्यों लोगों को उद्विग्न और दुःखी होने का अवसर दिया?''

१८. ''महाराज! भगवान् को ज्ञात था— 'जैसे-जैसे समय आयगा मुझे ढाई सौ विनय (जो कि वर्तमान में स्थविरवाद के अनुसार २२७ ही दिखायी देते हैं) बनाने पड़ेंगे। उन्होंने देखा कि 'यदि पहले ही एक बार मैं समग्र नियम व्यवस्थित कर दूँ तो लोग देखकर घबरा जायँगे। जो भिक्षु बनना चाहते हैं, वे भी हिचक जायेंगे और कहेंगे— ओह! इतने नियमों का पालन करना होगा! श्रमण गौतम के शासन में भिक्षु बनना कितना कठिन है!! उनका दिल नहीं जमेगा। और, वे धर्म-ग्रहण न कर बार-बार जन्म लेकर दुःख भोगेंगे। इसलिये, जैसे-जैसे समय आयगा, दोष प्रकट होने पर ही धर्म का उपदेश करते हुए नियम बनाऊँगा'।''

''भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है, भन्ते! भगवान् की बातें ऐसी ही होती हैं। उनकी सर्वज्ञता कितनी ऊँची है। भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। बात समझ में आ गयी। यह ठीक है कि पहले ही सभी नियमों को सुन कर लोग डर जाते! कोई भिक्षु बनने में उत्साह नहीं करता। मैं इसे मान लेता हूँ।''

९. सूर्यतापविषयकप्रश्न— १९. ''भन्ते नागसेन! क्या सूर्य सदैव धधकता रहता है या कभी मन्द भी पड़ता है?'' ''महाराज! सूर्य सदैव धधकता रहता है, कभी मन्द नहीं पड़ता।'' ''यदि सूर्य सदैव धधकता रहता है तो यह कैसी बात है कि कभी उसकी गर्मी बढ़ जाती है और कभी घट जाती है?''

२०. ''महाराज! सूर्य में चार दोष (अन्तराय) होते हैं। इनमें किसी एक के आने से इसकी गर्मी

मन्दं तपति। कतमे चत्तारो ? अब्भं, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। महिका, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। मेघो, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन कारणेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। राहु, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। इमे खो, महाराज, सुरियस्स चत्तारो रोगा, तेसं अञ्ञतरेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपती'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन! अब्भुतं, भन्ते नागसेन, सुरियस्स पि ताव तेजोसम्पन्नस्स रोगो उप्पज्जिस्सति, किमङ्ग, अञ्ञेसं सत्तानं! नत्थि, भन्ते, एसा विभत्ति अञ्ञस्स अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता'' ति।

१०. कठिनतपनपञ्हो

२१. ''भन्ते नागसेन, किस्स हेमन्ते सुरियो कठिनं तपति, नो तथा गिम्हे'' ति?

२२. ''गिम्हे, महाराज, अनुपहतं होति रजोजल्लं, वातक्खुभिता रेणू गगनानुगता होन्ति, आकासे पि अब्भा सुबहुला होन्ति, महावातो च अधिमत्तं वायति। ते सब्बे नानाकुला समायुता सुरियरंसियो पिदहन्ति। तेन गिम्हे सुरियो मन्दं तपति। हेमन्ते पन, महाराज, हेट्ठा पठवी निब्बुता होति, उपरिमहामेघो उपट्ठितो होति, उपसन्तं होति रजोजल्लं, रेणू च सन्तसन्तं गगने चरति, विगतवलाहको च होति आकासो, वातो च मन्दमन्दं वायति। एतेसं उपरतिया विसुद्धा होन्ति सुरियरंसियो, उपघातविमुत्तस्स सुरियस्स तापो अतिविय तपति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन सुरियो हेमन्ते कठिनं तपति, ना तथा गिम्हे'' ति।

''सब्बीतिमुत्तो, भन्ते, सुरियो कठिनं तपति, मेघादिसहगतो कठिनं न तपती'' ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा) *दुतियो निप्पपञ्चवग्गो निट्ठितो॥*

कम हो जाती है। वे चार दोष कौन से हैं? महाराज! १. पहला दोष है बादल का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, २. दूसरा दोष है कुहरे का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, ३. तीसरा दोष धूली या धूयें का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, ४. चौथा दोष राहु का लग जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है। महाराज! सूर्य में यही चार दोष हुआ करते हैं। इनमें एक के भी होने से इसकी उष्णता कम हो जाती है।"

"भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है कि सूर्य जैसे तेजस्वी में भी जब दोष आ जाते हैं, तो दूसरे जीवों की बात ही क्या! भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ इसे दूसरा कोई नहीं समझा पाता।"

१०. कठिनसूर्यतापविषयकप्रश्न— २१. "भन्ते नागसेन! ग्रीष्म में सूर्य की चमक जैसी नहीं होती, वैसी हेमन्त में क्यों होती है?"

२२. "महाराज! ग्रीष्म काल में आकाश धूल (गर्द) से भरा रहता है, आँधी से पृथ्वी आकाश एक हो जाते हैं, आकाश में बादल छाये रहते हैं, दिन रात हवा चलती है। ये सभी मिलकर सूर्य की किरणों को रोके रहते हैं। महाराज! इसी से ग्रीष्म में सूर्य की चमक कम रहती है। महाराज! और हेमन्त काल में पृथ्वी शान्त रहती है। आकाश के बादल भी लुप्त रहते हैं। धूल और गर्द का पता नहीं रहता है। रेणु आकाश में धीरे-धीरे उड़ती रहती है। आकाश साफ रहता है। हवा मन्द मन्द बहती है। महाराज! इन बातों से सूर्य की किरणें अत्यधिक चमकती हैं और गर्म भी होती हैं। महाराज! यही कारण है कि ग्रीष्म में सूर्य की चमक वैसी नहीं होती जैसी हेमन्त में होती है।"

३. वेस्सन्तरवग्गो

१. वेस्सन्तरपञ्हो

१. "भन्ते नागसेन, सब्बेव बोधिसत्ता पुत्तदारं देन्ति, उदाहु वेस्सन्तरेनेव रञ्ञा पुत्तदारं दिन्नं" ति? "सब्बे पि, महाराज, बोधिसत्ता पुत्तदारं देन्ति, न वेस्सन्तरेनेव रञ्ञा पुत्तदारं दिन्नं" ति। "अपि नु खो, भन्ते नागसेन, तेसं अनुमतेन देन्ती" ति? "भरिया, महाराज, अनुमता, दारका पन बालताय विलपिंसु। यदि ते अत्थतो जानेय्युं, ते पि अनुमोदेय्युं, न ते विलपेय्युं" ति।

"दुक्करं, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तेन कतं, यं सो अत्तनो ओरसे पिये पुत्ते ब्राह्मणस्स दानत्थाय अदासि। (१)

"इदं पि दुतियं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो अत्तनो ओरसे पिये पुत्ते बालके तरुणके लताय बन्धित्वा तेन ब्राह्मणेन लताय अनुमज्जियन्ते दिस्वा अज्झुपेक्खि। (२)

"इदं पि ततियं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो सकेन बलेन बन्धना मुच्चित्वा आगते दारके सारज्जमुपगते पुनदेव लताय बन्धित्वा अदासि। (३)

"इदं पि चतुत्थं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो दारके—'अयं खो, तात, यक्खो, खादितुं नेति अम्हे' ति विलपन्ते— 'मा भायित्था' ति न अस्सासेसि। (४)

"इदं पि पञ्चमं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो जालिस्स कुमारस्स रुदमानस्स पादेसु

"ठीक है, भन्ते नागसेन! सभी बाधाओं से रहित होने के कारण हेमन्त में सूर्य की चमक अधिक होती है; और धूल, मेघ इत्यादि से आकाश के आवृत रहने के कारण ग्रीष्म में चमक कम हो जाती है।।"

(इस वर्ग में दस प्रश्न हैं।) *द्वितीय निष्प्रपञ्चवर्ग समाप्त।।*

३. वेस्सन्तरवर्ग

१. वेस्सन्तरप्रश्न— १. "भन्ते नागसेन! क्या सभी बोधिसत्त्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं या केवल वेस्सन्तर राजा ने ही किया था?" "महाराज! सभी बोधिसत्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं, केवल वेस्सन्तर राजा ने ही नहीं किया था।" "भन्ते! क्या वे उन (स्त्री और बच्चों) की सम्पत्ति लेकर उन्हें दान करते हैं या विना सम्पति के ही?" "महाराज! उनकी स्त्री तो सहमत हो गयी थी, किन्तु बच्चे अबोध होने के कारण बिलखने लगे थे। यदि उनको समझ रहती तो वे भी सहमत हो जाते।"

"भन्ते नागसेन! बोधिसत्त्व ने बड़ा दुष्कर कार्य किया, जो अपने पैदा किये प्रिय बच्चों को ही ब्राह्मण का अनुचर बनने के लिये दे दिया। (१)

"इससे भी बढ़कर दूसरा दुष्कर कार्य तो उन्होंने यह किया था कि अपने पैदा किये उन कोमल सुकुमार बच्चों को जंगल की लता से बाँधकर ब्राह्मण को दे दिया; और लता का छोर पकड़ कर ब्राह्मण के द्वारा बच्चों को खींचे जाते देख कर भी मन में कुछ विकार न आने दिया। (२)

"इससे बढ़कर तीसरा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया था कि अपने बल से बन्धन तोड़कर जब बच्चे भाग आये तो फिर बाँध कर लौटा दिया। (३)

"इससे बढ़कर चौथा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि 'पिता जी! यह यक्ष हम लोगों को खा जाने के लिये ले जा रहा है'— कहकर रोते हुए उन बच्चों को इतना भी आश्वासन नहीं दिया कि 'मत डरो'। (४)

निपतित्वा— 'अलं, तात, कण्हाजिनं निवत्तेहि, अहमेव गच्छामि यक्खेन सह, खादतु मं यक्खो' ति याचमानस्स एवं न सम्पटिच्छि। (५)

''इदं पि छट्ठं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो जालिकुमारस्स— 'पासाणसमं नून ते, तात, हदयं यं त्वं अम्हाकं दुक्खितानं पेक्खमानो निम्मनुस्सके ब्रहारञ्ञे यक्खेन नीयमाने न निवारेसी' ति विलपमानस्स कारुञ्ञं नाकासि। (६)

''इदं पि सत्तमं दुक्करतो दुक्करतरं, यं तस्स रूळारूळस्स भीमभीमस्स नीते दारके अदस्सनं गमिते न फलि हदयं सतधा वा सहस्सधा वा। पुञ्ञकामेन मनुजेन किं परदुक्खापनेन! ननु नाम सकदानं दातब्बं होती'' ति। (७)

२. ''दुक्करस्स, महाराज, कतत्ता बोधिसत्तस्स कित्तिसद्दो दससहस्सिया लोकधातुया सदेवमनुस्सेसु अब्भुग्गतो। देवा देवभवने पकित्तेन्ति, असुरा असुरभवने पकित्तेन्ति, गरुळा गरुळभवने पकित्तेन्ति, नागा नागभवने पकित्तेन्ति, यक्खा यक्खभवने पकित्तेन्ति। अनुपुब्बेन तस्स कित्तिसद्दो परम्पराय अज्जेतरहि इध अम्हाकं समयं अनुप्पत्तो, तं मयं दानं पकित्तेन्ता विकोपेन्ता निसिन्ना— 'सुदिन्नं उदाहु दुद्दिन्नं' ति। सो खो पनायं, महाराज, कित्तिसद्दो निपुणानं विञ्ञूनं विदूनं विभावीनं बोधिसत्तानं दस गुणे अनुदस्सति, कतमे दस? अगेधता, निरालयता, चागो, पहानं, अपुनरावत्तिता, सुखुमता, महन्तता, दुरनुबोधता, दुल्लभता, असदिसता बुद्धधम्मस्स। सो खो पनायं, महाराज, कित्तिसद्दो निपुणानं विञ्ञूनं विदूनं विभावीनं बोधिसत्तानं इमे दस गुणे अनुदस्सती'' ति।

''इससे भी बढ़कर पाँचवा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि पैरों पर रोते हुये गिरकर जालिकुमार की इस विनति को भी 'पिता जी! मैं इस यक्ष के साथ जाता हूँ, मुझे भले ही खा ले, किन्तु कृष्णाजिना (मेरी छोटी बहन) को छोड़ दे'—नहीं माना। (५)

''इससे भी बढ़कर छठा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि जब जालि कुमार रो-रोकर यह कह रहा था— 'पिता जी! क्या आपका हृदय पत्थर का है कि हम लोगों को इस यक्ष द्वारा घोर जंगल में ले जाते देखकर भी आप नहीं बचा रहे'— तो भी अपने मन में कोई मोह न आने दिया। (६)

''और सातवाँ सबसे बढ़कर दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि उस ब्राह्मण के निर्दयतापूर्वक बच्चों को घसीटते हुए आँखों से दूर ले जाते देख कर भी उनका हृदय सौ या हजार टुकड़ों में टूट नहीं गया। भन्ते! क्या इस तरह अपने पुण्य कमाने के लिये दूसरों को सताना अच्छा है? इससे तो अच्छा था कि वे स्वयं को ही दे डालते?'' (७)

२. ''महाराज! बोधिसत्त्व के इस दुष्कर कार्य करने से उनकी कीर्ति दस हजार लोक के देवताओं और मनुष्यों में फैल गयी थी। देवता देवलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे; असुर असुरलोक में, गरुड़ गरुड़लोक में, नाग नागलोक में, यक्ष यक्षलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी परम्परा में उनकी कीर्ति आज हम लोगों तक भी पहुँची हुई है, जिससे इस बात की चर्चा हो रही है कि उनका यह दान उचित था या नहीं! महाराज! इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्त्वों के दश गुण जाने जाते हैं। कौन से दश गुण? महाराज! १. निर्लोभ, २. सांसारिक वस्तुओं से प्रेम न करना, ३. त्याग, ४. वैराग्य, ५. सङ्कल्प से न गिर जाना, ६. सूक्ष्मता, ७. महत्ता, ८. दुरनुबोधता, ९. दुर्लभता और १०. बुद्ध-धर्म की असदृशता। इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्त्वों के ये दश गुण जाने जाते हैं।''

"भन्ते नागसेन, यो परं दुक्खापेत्वा दानं देति, अपि नु तं दानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं" ति? "आम, महाराज, किं वत्तब्बं" ति। "इध, भन्ते नागसेन, कारणं उपदस्सेही" ति? "इध, महाराज, कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा सीलवा होति कल्याणधम्मो, सो भवेय्य पक्खहतो वा पीठसप्पि वा अञ्ञतरं वा ब्याधिं आपन्नो। तमेनं यो कोचि पुञ्ञकामो यानं आरोपेत्वा पत्थितं देसमनुपापेय्य। अपि नु खो, महाराज, तस्स पुरिसस्स ततोनिदानं किञ्चि सुखं निब्बत्तेय्य, सग्गसंवत्तनिकं तं कम्मं" ति? "आम, भन्ते, किं वत्तब्बं! हत्थियानं वा सो, भन्ते, पुरिसो लभेय्य, अस्सयानं वा, रथयानं वा, थले थलयानं, जले जलयानं, देवेसु देवयानं, मनुस्सेसु मनुस्सयानं, तदनुच्छविकं तदनुलोमिकं भवे भवे निब्बत्तेय्य, तदनुच्छविकानि तदनुलोमिकानि चस्स सुखानि निब्बत्तेय्युं। सुगतितो सुगतिं गच्छेय्य, तेनेव कम्माभिसन्देन इद्धियानं अभिरुय्ह पत्थितं निब्बाननगरं पापुणेय्या" ति। "तेन हि, महाराज, परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं यं सो पुरिसो बलीवद्दे दुक्खापेत्वा एवरूपं सुखं अनुभवति।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, यथा परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं। इध, महाराज, यो कोचि राजा जनपदतो धम्मिकं बलिं उद्धरापेत्वा आणापवत्तनेन दानं ददेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, राजा ततोनिदानं किञ्चि सुखं अनुभवेय्य, सग्गसंवत्तनिकं तं दानं" ति? "आम, भन्ते, किं वत्तब्बं! ततोनिदानं सो, भन्ते, राजा उत्तरिं अनेकसतसहस्सगुणं लभेय्य, राजूनं अतिराजा भवेय्य, देवानं अतिदेवो भवेय्य, ब्रह्मानं अतिब्रह्मा

"भन्ते नागसेन! जो दूसरों को दुःखी कर दान दिया जाता है क्या उसका फल अच्छा होता है, क्या उससे स्वर्ग मिलता है?" "हाँ, महाराज! इसमें कहना क्या है!" "भन्ते नागसेन! कृपया इसे समझावें?" "महाराज! जैसे कोई धर्मात्मा श्रमण या ब्राह्मण बड़ा शीलवान् (सदाचारी) हो। उसे लकवा मार दे, वह अपङ्ग हो जाय या इसी तरह का कोई दूसरा रोग उसे हो जाय। उसे कोई दूसरा पुण्यवान् पुरुष अपनी गाड़ी पर चढ़ा कर जहाँ वह जाना चाहे, वहाँ ले जाय। महाराज! तो क्या उस पुरुष को स्वर्गदायी शुभ फल मिलेगा?" "हाँ, भन्ते! इसमें कहना क्या है! इस पुण्य के फल से उसे सवारी के लिये हाथी, घोड़ा और रथ भी मिल सकते हैं, पृथ्वी पर चलने के लिये पृथ्वी पर चलने वाली सभी सवारियाँ मिल सकती हैं; जल पर जाने के लिये नाव, जहाज सभी कुछ मिल सकते हैं; देवताओं के देवयान भी प्राप्त हो सकते हैं, और मनुष्यों के मनुष्य-यान भी। जन्म-जन्म में उसका कल्याण होगा। बहुत सुख मिलेगा। उसकी बहुत अच्छी गति होगी। उस कर्मफल से ऋद्धियान पर चढ़कर सब को अभीष्ट निर्वाणनगर तक पहुँच जायगा।" "महाराज! इससे तो यही ज्ञात होता है कि दूसरों को दुःख देकर जो दान किया जाता है, उससे भी स्वर्गदायी शुभ अच्छा फल मिलता है। वह मनुष्य गाड़ी के बैलों को दुःख देकर ही तो पुण्य कमाता है और सुख पाता है।

"महाराज! एक और कारण सुनें कि कैसे दूसरों को दुःख देकर जो दान दिया जाता है, उसका भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। महाराज! जैसे कोई राजा उचित प्रकार से कर (शुल्क) ले, और बाद में लोगों को दान करे। महाराज! तो क्या उसे इससे अच्छा फल मिलेगा? इस दान देने से उसे क्या स्वर्ग मिलेगा?" "हाँ, भन्ते! इसमें कहना क्या है! उसके पुण्य से राजा को उसका सौ और हजार गुना अधिक फल प्राप्त होगा। वह राजाओं में महाराज हो जायगा; देवों में महादेव हो जायेगा; ब्रह्माओं में महाब्रह्मा हो जायगा; श्रमणों में श्रेष्ठ श्रमण हो जायगा; ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हो जायगा;

भवेय्य, समणानं अतिसमणो भवेय्य, ब्राह्मणानं अतिब्राह्मणो भवेय्य, अरहन्तानं अतिअरहा भवेय्या'' ति। ''तेन हि, महाराज, परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं, यं सो राजा बलिना जनं पीळेत्वा दिन्नदानेन एवरूपं उत्तरिं अनुभवती'' ति।

''अतिदानं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरेन रञ्ञा दिन्नं, यं सो सकं भरियं परस्स भरियत्थाय अदासि, सके ओरसे पुत्ते ब्राह्मणस्स दासत्थाय अदासि। अतिदानं नाम, भन्ते नागसेन, लोके विदूहि निन्दितं गरहितं। यथा नाम, भन्ते नागसेन, अतिभारेन सकटस्स अक्खो भिज्जति, अतिभारेन नावा ओसीदति, अतिभुत्तेन भोजनं विसमं परिणमति, अतिवस्सेन धञ्ञं विनस्सति, अतिदानेन भोगक्खयं उपेति, अतिपापेन पठवी उपडय्हति, अतिरागेन उम्मत्तको होति, अतिदोसेन वज्झो होति, अतिमोहेन अनयं आपज्जति, अतिलोभेन चोरग्गहणमुपगच्छति, अतिभयेन निरुज्झति, अतिपूरेन नदी उत्तरति, अतिवातेन असनि पतति, अतिअग्गिना ओदनं उत्तरति, अतिसञ्चरणेन न चिरं जीवति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, अतिदानं नाम लोके विदूहि निन्दितं गरहितं। अतिदानं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरेन रञ्ञा दिन्नं, न तत्थ किञ्चि फलं इच्छितब्बं'' ति?

''अतिदानं, महाराज, लोके विदूहि वण्णितं थुतं पसत्थं। ये केचि यादिसं कीदिसं दानं देन्ति, अतिदानदायी लोके कित्तिं पापुणाति। यथा, महाराज, अतिपवरताय दिब्बं वनमूलं गहितं पि हत्थपासे ठितानं परजनानं न दस्सयति, अगदो अतिजच्चताय पीळाय समुग्घातको

अर्हतों में श्रेष्ठ अर्हत् हो जायगा!'' ''महाराज! इससे तो यही ज्ञात होता है कि दूसरों को दुःख देकर भी जो दान किया जाता है उससे भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। राजा अपनी प्रजा से कर लेकर ही इस प्रकार का यश और सुख पाता है।''

''भन्ते नागसेन! वेस्सन्तर राजा ने दान देने में अति कर दी थी। यहाँ तक कि अपनी स्त्री को दूसरे की स्त्री बन जाने के लिये दे डाला। अपने औरस पुत्रों तक को ब्राह्मण का दास बनने के लिये दान कर दिया। भन्ते नागसेन! दान में अति कर देने की भी बुद्धिमान् लोग निन्दा करते हैं। भन्ते नागसेन! जैसे अधिक भार लाद देने से गाडी का धुरा टूट जाता है; अधिक भार लाद देने से नाव डूब जाती है; अधिक भोजन कर लेने से अजीर्ण हो जाती है; अधिक वर्षा होने से धान गल जाता है, अधिक दान देने से दरिद्र हो जाता है; अधिक पापसे पृथ्वी जल उठती है; अधिक प्रेम होने से पागल हो जाता है ; अधिक द्वेष से बड़ा अपराधी हो जाता है; अधिक मोह होने से बुरी अवस्था को प्राप्त होता है; अधिक लोभ करने से चोरों से पकड़ा जाता है; अधिक भय से घबड़ा जाता है; अधिक ज़ल आने से नदी में बाढ़ आ जाती है; अधिक हवा चलने से बिजली गिरती है; अधिक अग्नि देने से भात उफन जाता है; अधिक दौड़ धूप करने से आयुक्षय होता है; भन्ते! ऐसे ही, दान में भी अति की बुद्धिमान् लोग निन्दा करते है। भन्ते! वेस्सन्तर राजा ने भी दान देने में अति कर दी थी। उसका कुछ अच्छा फल नहीं हो सकता?''

''महाराज! बुद्धिमान् लोग अधिक दान देने की प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो जिस किसी भी तरह का दान दे सकता है, उस दान देने वाले की संसार में कीर्ति फैलती है। महाराज! जैसे दिव्य शक्ति वाली जङ्गल–बूटी को हाथ में कस कर पकड़े रखने वाला व्यक्ति अपने पास बैठे हुये आदमी को भी नहीं दिखायी देता; अधिक शक्ति वाली जड़ी–बूटी पीड़ा को शान्त करती और रोग को दूर कर देती है। अधिक गर्म होने से कारण अग्नि जलती है; और अधिक ठण्डा होने से कारण जल अग्नि को बुझा सकता है। पद्मरागमणि अतिपरिशुद्धता के कारण जल का मैल दूर

रोगानं अन्तकरो, अग्गि अतिजोतिताय डहति, उदकं अतिसीतताय निब्बापेति, पदुमं अतिपरिसुद्धताय न उपलिप्पति वारिकद्दमेन, मणि अतिगुणताय कामददो, वजिरं अतितिखिणताय विज्झति मणिमुत्ताफलिकं, पठवी अतिमहन्तताय नरोरगमिगपक्खिजलसेलपब्बतदुमे धारेति, समुद्दो अतिमहन्तताय अपरिपूरणो, सिनेरु अतिभारिकताय अचलो, आकासो अतिवित्थारताय अनन्तो, सुरियो अतिप्पभताय तिमिरं घातेति, सीहो अतिजातिताय विगतभयो, मल्लो अतिबलवताय पटिमल्लं खिप्पं उक्खिपति, राजा अतिपुञ्ञताय अधिपति, भिक्खु अतिसीलवन्तताय नागयक्खनरमरूहि नमस्सनीयो, बुद्धो अतिअग्गताय अनूपमो; एवमेव खो, महाराज, अतिदानं नाम लोके विदूहि वण्णितं थुतं पसत्थं। ये केचि यादिसं कीदिसं दानं देन्ति, अतिदानदायी लोके कित्तिं पापुणाति। अतिदानेन वेस्सन्तरो राजा दससहस्सिया लोकधातुया वण्णितो थुतो पसत्थो महितो कित्तितो। तेनेव अतिदानेन वेस्सन्तरो राजा अज्जेतरहि बुद्धो जातो अग्गो सदेवके लोके।

''अत्थि पन, महाराज, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं'' ति। ''दस खो पनिमानि, भन्ते नागसेन, दानानि यानि लोके अदानसम्मतानि, यो तानि दानानि देति सो अपायगामी होति। कतमानि दस? मज्जदानं, भन्ते नागसेन, लोके अदानसम्मतं, यो तं देति सो अपायगामी होति। समज्जदानं ....पे०.... इत्थिदानं....उसभदानं.... चित्तकम्मदानं ....सत्थदानं....विसदानं....सङ्खलिकदानं....कुक्कुटसूकरदानं तुलाकूटमानकूटदानं, भन्ते नागसेन, लोके अदानसम्मतं होति, यो तं देति सो अपायगामी होति। इमानि खो, भन्ते नागसेन, दस दानानि लोके अदानसम्मतानि, यो तानि दानानि देति सो अपायगामी होती'' ति।

कर देती है। मणि अधिक गुणों वाली होने से यथेच्छ वर देती है। वज्र अधिक तीक्ष्ण होने से हीरा, मोती और पत्थर को काट सकता है। पृथ्वी अधिक विशाल होने से मनुष्य, साँप, मृग, पक्षी, जल, चट्टान, पर्वत, वृक्ष सभी को धारण करती है। बहुत बड़ा होने के कारण समुद्र कभी भी नहीं भरता। सुमेरु पर्वत अधिक भारी होने के कारण अचल है। आकाश अधिक फैले रहने के कारण अनन्त है। सूरज अधिक चमकने के कारण अन्धकार दूर करता है। सिंह उच्च जाति का होने के कारण निर्भय रहता है। श्रेष्ठ पहलवान् अधिक बल रहने से दूसरे पहलवान् को शीघ्र ही पटक देता है। राजा अपने अधिक पुण्य के कारण सभी का अधिपति (स्वामी) हो कर रहता है। भिक्षु अधिक शीलवान् होने के कारण नाग, यक्ष, मनुष्य और मार सभी के लिये नमस्कार का पात्र होता है। भगवान् श्रेष्ठ होने के कारण अनुपम होते हैं। महाराज! इसी तरह, बुद्धिमान् लोग अधिक दान की प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो किसी भी तरह का दान दे सकता है, वह दान देने वाला संसार में कीर्ति पाता है। महाराज! अधिक दान देने के कारण वेस्सन्तर राजा दस हजार लोकों में प्रशंसित हुये, उनकी बहुत कीर्ति फैली। वही अधिक दान दे कर वेस्सन्तर राजा आज बुद्ध कहलाये और देवताओं, मनुष्यों के साथ इस लोक में सब के अग्र हो गये।

"महाराज! संसार में क्या ऐसी भी कोई वस्तु है जिसे, दान पाने का अधिकारी रहते हुए भी नहीं देना चाहिये?" "हाँ भन्ते! ऐसी दस चीजें हैं, जिन्हें कभी भी दान नहीं करना चाहिये। जो उनका दान करता है, वह नरक में जाता है। कौन सी दस चीजें है? भन्ते! १. शराब–ताड़ी का दान, २. नाच–बाजा में दान, ३. स्त्री का दान, ४. बैल का दान, ५. चित्रकर्म का दान, ६. शस्त्र का दान, ७. विष का दान, ८. जञ्जीर का दान, ९. मुर्गी और सूअर का दान, १०. जाली तराजू या बटखरे का दान नहीं

"नाहं तं, महाराज, अदानसम्मतं पुच्छामि। इमं ख्वाहं, महाराज, तं पुच्छामि—'अत्थि पन, महाराज, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं'" ति? "नत्थि, भन्ते नागसेन, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं। चित्तप्पसादे उप्पन्ने केचि दक्खिणेय्यानं भोजनं देन्ति, केचि अच्छादनं, केचि सयनं, केचि आवसथं, केचि अत्थरणपापुरणं, केचि दासिदासं, केचि खेत्तवत्थुं, केचि दिपदचतुप्पदं, केचि सतं सहस्सं सतसहस्सं, केचि महारज्जं, केचि जीवितं पि देन्ती" ति। "यदि पन, महाराज, केचि जीवितं पि देन्ति, किङ्कारणा वेस्सन्तरं दानपतिं अतिबाळ्हं परिपातेसि सुदिन्ने पुत्ते च दारे चा" ति!

"अपि नु खो, महाराज, अत्थि लोकपकति लोकाचिण्णं—लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवापितुं वा विक्किणितुं वा" ति? "आम, भन्ते, लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवापितुं वा विक्किणितुं वा" ति। "यदि, महाराज, लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवपितुं वा विक्किणितुं वा; वेस्सन्तरो पि, महाराज, राजा अलभमानो सब्बञ्ञुतञाणं उपद्दुतो दुक्खितो तस्स धम्मधनस्स पटिलाभाय पुत्तदानं आवापेसि च विक्किणि च। इति, महाराज, वेस्सन्तरेन रञ्ञा अञ्ञेसं दिन्नं येव दिन्नं, कतं येव कतं। किस्स पन त्वं, महाराज, तेन दानेन वेस्सन्तरं दानपतिं अतिबाळ्हं अपसादेसी" ति!

"नाहं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरस्स दानपतिनो दानं गरहामि, अपि च पुत्तदारं याचन्ते निमिनित्वा अत्तानं दातब्बं" ति। "एवं खो, महाराज, असब्भिकारणं, यं पुत्तदारं याचन्ते अत्तानं ददेय्य। यं यं हि याचन्ते तं तदेव दातब्बं, एतं सप्पुरिसानं कम्मं। यथा, महाराज,

---

करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक में जाता है। भन्ते नागसेन! इन दस चीजों का दान कभी नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरकगामी होता है?"

"महाराज! मैं यह नहीं पूछता कि कौन दान नहीं देना चाहिये। मेरा पूछना यह था कि महाराज! क्या संसार में कोई ऐसी चीज है जिसे दान पाने का अधिकारी मिलने पर भी न देकर रोके रखना चाहिये?" "नहीं, भन्ते! संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे दान पाने का अधिकारी रहने पर भी न दे कर रोके रखना चाहिये। प्रसन्न होकर कोई दान पाने के अधिकारी को भोजन देते हैं, कोई कपड़ा देते हैं, कोई शय्या देते हैं, कोई घर–द्वार देते हैं, कोई ओढ़ना–बिछौना देते हैं, कोई दास–दासी देते हैं, कोई जगह–जमीन देते हैं, कोई द्विपद (पक्षी) और चतुष्पद (चौपाये जानवर) देते हैं; कोई सौ, हजार या लाख रुपया देते हैं, कोई राज–पाट दे देते हैं, यहाँ तक कि कोई–कोई प्राण भी देते हैं।" "महाराज! यदि कोई अपना जीवन तक दे डालते हैं तो आप दानपति वेस्सन्तर राजा के अपनी स्त्री और बच्चों के दान कर देने पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं!

"महाराज! क्या संसार में बहुधा ऐसा नहीं देखा जाता है कि पिता अपना ऋण चुकाने के लिये या जीविका के लिये अपना पुत्र गिरवी रख देता है या बेच भी देता है?" "हाँ, भन्ते! ठीक बात है।" "बस, वैसे ही वेस्सन्तर कमाने के लिये अपनी स्त्री और बच्चों को दे डाला! महाराज! इस तरह वेस्सन्तर राजा ने वही दिया जो लोग देते, वही किया जो अन्य करते। महाराज! तब आप उन दानपति वेस्सन्तर राजा पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं?"

"नहीं, भन्ते! मैं उनको दोष नहीं दे रहा, मैं तो कहता हूँ कि अपनी स्त्री और बच्चों को दे डालने के बदले उन्हें बच्चों के माँगने पर अपने को दे देना चाहिये था।" "महाराज! स्त्री और बच्चों को माँगने

कोचि पुरिसो पानीयं आहरापेय्य, तस्स यो भोजनं ददेय्य; अपि नु सो, महाराज, पुरिसो तस्स किच्चकारी अस्सा'' ति? ''न हि, भन्ते, यं सो आहरापेति, तमेव तस्स देन्तो किच्चकारी अस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो राजा ब्राह्मणे पुत्तदारं याचन्ते पुत्तदारं येव अदासि। सचे, महाराज, ब्राह्मणो वेस्सन्तरस्स सरीरं याचेय्य, न सो महाराज, अत्तानं रक्खेय्य, न कम्पेय्य न रज्जेय्य, तस्स दिन्नं परिच्चत्तं येव सरीरं भवेय्य। सचे, महाराज, कोचि वेस्सन्तरं दानपतिं उपगन्त्वा याचेय्य—'दासत्तं मे उपेही' ति, दिन्नं परिच्चत्तं येवस्स सरीरं भवेय्य, न सो दत्वा तपेय्य। रञ्ञो, महाराज, वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो।

''यथा, महाराज, पक्का मंसपेसि बहुसाधारणा; एवमेव खो, महाराज, रञ्ञो वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो। यथा वा पन, महाराज, फलितो रुक्खो नानादिजगणसाधारणो; एवमेव खो, महाराज, रञ्ञो वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो। किङ्कारणा? 'एवाहं पटिज्जन्तो सम्मासम्बोधिं पापुणिस्सामी' ति।

''यथा, महाराज, पुरिसो अधनो धनत्थिको धनपरियेसनं चरमानो अजपथं सङ्कुपथं वेत्तपथं गच्छति, जलथलवाणिज्जं करोति, कायेन वाचाय मनसा धनं आराधेति, धनप्पटिलाभाय वायमति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति अधनो बुद्धधनेन सब्बञ्ञुतञाणरतनप्पटिलाभाय याचकानं धनधञ्ञं दासिदासं यानवाहनं सकलसापतेय्यं सकं पुत्तदारं अत्तानं च चजित्वा सम्मासम्बोधिं येव परियेसति।

''यथा वा पन, महाराज, अमच्चो मुद्दाकामो मुद्दाधिकरणं यं किञ्चि गेहे धनधञ्ञं

पर अपने को दे देना तो उचित कार्य नहीं होता। जो जिस वस्तु को माँगता है उसी वस्तु को देना चाहिये। अच्छे लोग ऐसा ही किया करते हैं।" "महाराज! जैसे कोई आदमी किसी से जल माँगे और उसे भोजन परोस दिया जाय तो क्या वह उसकी इच्छा पूरी करता है?" "नहीं, भन्ते! जो वह माँगता है, वही देने से वह उसकी इच्छा पूरी कर सकता है।" "महाराज! इसीलिये जब ब्राह्मण ने स्त्री और बच्चों को माँगा था, तब वेस्सन्तर राजा ने उन्हीं को दे डाला। महाराज! यदि ब्राह्मण उनके अपने शरीर को माँगता तो वे अपने को कभी रोके नहीं रखते, न काँपते और न मोह करते; वे अपने को कभी रोके नहीं रखते। यदि कोई वेस्सन्तर राजा से उनकी स्वाधीनता माँगता तो उसे भी विना किसी संकोच के वे देने को बद्ध थे। महाराज! वेस्सन्तर राजा ने यथार्थ में अपना शरीर लोगों में बाँट दिया था।

"महाराज! जब घर में भोजन तैयार होता है तो सभी बाँट कर खाते हैं। जब वृक्ष फलों से लद जाता है तो पक्षी उसे बाँट कर खाते हैं। महाराज! उसी तरह, वेस्सन्तर राजा को अपने शरीर पर ममता नहीं थी, मानो उन्होंने अपनी शरीर लोगों में बाँट दिया था। सभी को सुख देने के लिये वे तैयार रहते थे। ऐसा क्यों? इस विचार से कि 'मैं इस प्रकार उदार हो कर बुद्धत्व पा सकूँगा'।

"महाराज! जैसे निर्धन मनुष्य धनोपार्जन के लिये धन की खोज में कहाँ–कहाँ नहीं दौड़ लगाते, वे कैसे–कैसे बीहड़ रास्तों को लाँघ जाते हैं, जल और स्थल पर व्यापार करते हैं, शरीर, वचन और मन तीनों से केवल धन की ही खोज में रहते हैं; महाराज! इसी तरह, दानपति वेस्सन्तर ने बुद्धधन से निर्धन हो कर सर्वज्ञता–रत्न की प्राप्ति के लिये याचकों को धन–धान्य, दास–दासी, गाड़ी–सवारी, अपनी सारी सम्पत्ति, अपनी स्त्री और बच्चे, यहाँ तक कि अपना शरीर भी दे डाला। उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये ही ऐसा किया था।

"जैसे महाराज! कोई अधिकारी उन्नति पाने के लिये अपने पास जो कुछ धन दौलत है सभी

हिरञ्ञसुवण्णं, तं सब्बं दत्वा पि मुद्दापटिलाभाय वायमति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति सब्बं तं बाहिरब्भन्तरं धनं दत्वा जीवितं पि परेसं दत्वा सम्मासम्बोधिं येव परियेसति।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरस्स दानपतिनो एवं अहोसि—'यं सो ब्राह्मणो याचति तमेवाहं तस्स देन्तो किच्चकारी नाम होमी' ति, एवं सो तस्स पुत्तदारमदासि। न खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति देस्सताय ब्राह्मणस्स पुत्तदारमदासि, न अदस्सनकामताय पुत्तदारमदासि, न 'अतिबहुका मे पुत्तदारा, न सक्कोमि ते पोसेतुं' ति पुत्तदारमदासि, न उक्कण्ठितो—'अप्पिया मे' ति नीहरितुकामताय पुत्तदारमहासि। अथ खो, सब्बञ्ञुतञाणरतनस्सेव पियत्ता सब्बञ्ञुतञाणस्स कारणा वेस्सन्तरो राजा एवरूपं अतुलं विपुलमनुत्तरं पियं मनापं दयितं पाणसमं पुत्तदारदानवरं ब्राह्मणस्स अदासि। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चरियापिटके*—

'न मे देस्सा उभो पुत्ता, मद्दी देवी न देस्सिया।
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं, तस्मा पिये अदासहं' ति॥

"तस्मा, महाराज, वेस्सन्तरो राजा पुत्तदारं दत्वा पण्णसालं पविसित्वा निपज्जि, तस्स अतिपेमेन दुक्खितस्स बलवसोको उप्पज्जि, हदयवत्थु उण्हमहोसि, नासिकाय अप्पहोन्तिया मुखेन उण्हे अस्सासपस्सासे विस्सज्जेसि, अस्सूनि परिवत्तित्वा लोहितबिन्दूनि हुत्वा नेत्तेहि निक्खमिंसु। एवं खो, महाराज, दुक्खेन वेस्सन्तरो राजा ब्राह्मणस्स पुत्तदारमदासि—'मा मे दानपथो परिहायी' ति।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरो राजा द्वे अत्थवसे पटिच्च ब्राह्मणस्स द्वे दारके अदासि। कतमे द्वे? 'दानपथो च मे अपरिहीनो भविस्सति, दुक्खिते च मे पुत्तके वनमूलफलेहि

को दे सकता है, ऊँचा पद पाने की प्राणपण से प्रयास करता है, महाराज! इसी तरह वेस्सन्तर राजा अपने बाहर और भीतर के सम्पूर्ण धन का तथा स्वयं को भी दान कर बुद्धत्व की खोज कर रहे थे।

"महाराज! इसके अतिरिक्त, दानपति राजा वेस्सन्तर के मन में ऐसा हुआ—'यह ब्राह्मण जो माँगता है, उसी को दे कर मैं उसकी इच्छा पूरी कर सकूँगा।' यह विचार कर उन्होंने उसे अपनी स्त्री और बच्चों को भी दे डाला। महाराज! उन्होंने उन्हें उन में ईर्ष्या रखने के कारण नहीं दे डाला था, न उन को न देखा जा सकने के कारण, न उनको भार समझ कर और न उनको अप्रिय समझ कर उनसे छुटकारा पाने के लिये; अपितु सर्वज्ञता—रत्न पा कर बुद्ध बन जाने की ही इच्छा से वेस्सन्तर राजा ने अपने उन अतुल्य, अलौकिक, प्रिय, मनाप और प्राणप्रिय बच्चों तक को दान कर दिया। महाराज! *चर्यापिटक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अपने दोनों बच्चों से या रानी माद्री से मुझे ईर्ष्या नहीं थी। सर्वज्ञता प्राप्त करने का मार्ग मुझे प्रिय था, इन के लिये मैंने उनका दान कर डाला।'

"अतः, महाराज! वेस्सन्तर राजा, इस दान के बाद, पर्णशाला (पत्तों की बनी झोपड़ी) में जा कर बैठ गये। एक बार उनके प्रेम की स्मृति से वे विह्वल हो उठे, उनका कलेजा सूख गया, गरम साँस चलने लगीं, आँखों से खून के आँसू बहने लगे। महाराज! अपने दान पर डटे रहने के लिये यह दुःख सह कर भी उनका दान कर दिया।

"महाराज! और भी दो बातों के विचार से उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया। किन दो

इतोनिदानं अय्यको मोचेस्सती' ति। जानाति हि, महाराज, वेस्सन्तरो राजा—'न मे दारका सक्का केनचि दासभावेन भुञ्जितुं, इमे च दारके अय्यको निक्किणिस्सति, एवं अम्हाकं पि गमनं भविस्सती' ति। इमे खो, महाराज, द्वे अत्थवसे पटिच्च ब्राह्मणस्स द्वे दारके अदासि।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरो राजा जानाति—'अयं खो ब्राह्मणो जिण्णो वुड्ढो महल्लको दुब्बलो भग्गो दण्डपरायणो खीणायुको परित्तपुञ्ञो, नेसो समत्थो इमे दारके दासभोगेन भुञ्जितुं' ति। सक्कुणेय्य पन, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन इमे चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे गहेत्वा पेळाय वा समुग्गे वा पक्खिपित्वा निप्पभे कत्वा थालकपरिभोगेन परिभुञ्जितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमस्मिं लोके चन्दिमसुरियपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स मणिरतनं सुभं जातिमन्तं अट्ठंसं सुपरिकम्मकतं चतुहत्थायामं सकटनाभिपरिणाहं न सक्का केनचि पिलोतिकाय वेठेत्वा पेळाय पक्खिपित्वा सत्थकनिसानपरिभोगेन परिभुञ्जितुं; एवमेव खो, महाराज, लोके चक्कवत्तिरञ्ञो मणिरतनपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, तिधा पभिन्नो सब्बसेतो सत्तप्पतिट्ठितो अट्ठरतनुब्बेधो नवरतनायामपरिणाहो पासादिको दस्सनीयो उपोसथो नागराजा न सक्का केनचि

बातों के विचार से? १. मेरा दान-व्रत न टूटे और २. जंगल के फल फूल ही खा कर रहने से मेरे पुत्रों को जो दुःख है, उससे वे छूट जायँ। महाराज! वेस्सन्तर राजा को यह ज्ञात था कि मेरे पुत्रों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। उनका दादा उन्हें छुड़ा लेगा और फिर वे मेरे ही पास आयेंगे। महाराज! इन्ही दो बातों के विचार से भी उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया था।

"महाराज! वेस्सन्तर राजा को यह भी ज्ञात था कि यह ब्राह्मण बड़ा बूढ़ा और बहुत दुर्बल हो गया है; इसकी नसें ढीली पड़ गयी हैं, लाठी के सहारे बड़ी कठिनाई से चलता फिरता है, इसका पुण्य बहुत थोड़ा है और इसकी आयु पूर्ण हो चुकी है, यह इन बच्चों को अधिक दिन दास बनाकर नहीं रख सकता। महाराज! इतने तेजस्वी और प्रतापी चन्द्र और सूर्य को कोई पकड़, बक्से में बन्द कर उनकी सारी चमक हटा क्या थाली की तरह उनको उपयोग में ला सकता है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रतापी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को भी कोई दास नहीं बना सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता था। महाराज! जैसे चक्रवर्ती राजा का मणिरत्न जो उज्ज्वल, अच्छी जाति वाला, अठपहलू, अच्छी तरह काटा छाँटा, चार हाथ के घेरे वाला और गाड़ी की नाभि के बराबर हो; उसे कोई शस्त्र तेज करने के लिये चिथड़ों से लपेट कर नहीं रख सकता; महाराज! उसी तरह चक्रवर्ती राजा के मणि-रत्न के समान तेजस्वी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिस से वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। महाराज! जैसे समुद्र बड़ा लम्बा, चौड़ा फैला हुआ है, अत्यन्त गम्भीर है, अनन्त है, अपार है, अथाह है और खुला है। कोई उसे चारों ओर से बाँध कर एक ही घाट से उपयोग लिये जाने

सुप्पेन वा सरावेन वा पिदहितुं, गोवच्छको विय वच्छकसालाय पक्खिपित्वा परिहरितुं वा; एव्मेव खो, महाराज, लोके उपोसथनागराजप्पटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, महासमुद्दो दीघपुथुलवित्थिण्णो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुरुत्तरो अपरियोगाळ्हो अनावटो न सक्का केनचि सब्बत्थ पिदहित्वा एकतित्थेन परिभोगं कातुं; एवमेव खो, महाराज, लोके महासमुद्दपटिभागस्सेव वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, हिमवन्तो पब्बतराजा पञ्चयोजनसतं अब्भुग्गतो नभे तिसहस्सयोजनायामवित्थारो चतुरासीतिकूटसहस्सपटिमण्डितो पञ्चन्नं महानदीसतानं पभवो महाभूतगणालयो नानाविधगन्धधरो दिब्बोसधसतसमलङ्कतो नभे वलाहको विय अब्भुग्गतो दिस्सति, एवमेव खो, महाराज, हिमवन्तपब्बतराजपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं....पे०....भुञ्जितुं। यथा, महाराज, रत्तन्धकार-तिमिसायं उपरिपब्बतग्गे जलमानो महा अग्गिक्खन्धो सुविदूरे पि पञ्ञायति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो राजा पब्बतग्गे जलमानो महाअग्गिक्खन्धो विय सुविदूरे पि पाकटो पञ्ञाति। तस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, हिमवन्ते पब्बते नागपुप्फसमये उजुवाते

योग्य नहीं बना सकता। महाराज! इसी तरह, महासमुद्र के समान गौरवशाली वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। महाराज! जैसे पर्वतराज हिमालय पाँच सौ योजन ऊँचा आकाश में उठा हुआ है, तीन हजार योजन के घेरे में फैला है, चौरासी हजार चोटियों से सजा हुआ है, इस से पाँच सौ बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं, बड़े-बड़े जीवों का यह आवास है, यह अनेक प्रकार की गन्ध वाली सैकड़ों दिव्य ओषधियों से भरा है और यह आकाश में उठे हुए मेघ की तरह दिखायी देता है; महाराज! इसी तरह हिमालय पर्वतराज के समान गौरवशाली वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें ....। महाराज! जैसे रात के अन्धेरे में पहाड़ के ऊपर जलती हुई अग्नि का प्रकाश बहुत दूर से ही देखा जा सकता है; उसी तरह, वेस्सन्तर राजा की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता था।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें ....। महाराज! जैसे हिमालय पर जब नागपुष्प फूलता है तो वह मन्द-मन्द हवा चलने पर भी दस बारह योजन तक सुगन्धित कर देता है। महाराज! इसी तरह, राजा की कीर्ति हजारों योजन तक फैल कर बीच के असुरलोक, गरुड़लोक, गन्धर्वलोक, यक्षलोक,

वायन्ते दस द्वादस योजनानि पुप्फगन्धो वायति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरस्स रञ्ञो पि योजनसतसहस्सेहि पि याव अकनिट्ठभवनं एत्थन्तरे सुरासुरगरुळगन्धब्बयक्खरक्खसमहोरगकिन्नरइन्दभवनेसु कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो, सीलवरगन्धो चस्स सम्पवायति, तेन तस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अनुसिट्ठो, महाराज, जालिकुमारो पितरा वेस्सन्तरेन रञ्ञा—'अय्यको ते, तात, तुम्हे ब्राह्मणस्स धनं दत्वा निक्किणन्तो तं निक्खहसहस्सं दत्वा निक्कणातु, कण्हाजिनं निक्किणन्तो दाससतं दासिसतं हत्थिसतं अस्ससतं धेनुसतं धेनुसतं उसभसतं निक्खसतं ति सब्बसतं दत्वा निक्किणातु। यदि ते, तात, अय्यको तुम्हे ब्राह्मणस्स हत्थतो आणाय बलसा मुधा गण्हाति, मा तुम्हे अय्यकस्स वचनं करित्थ, ब्राह्मणस्सेव अनुयायिनो होथा'' ति एवमनुसासित्वा पेसेसि। ततो जालिकुमारो गन्त्वा अय्यकेन पुट्ठो कथेसि—

'सहस्सग्घं हि मं, तात, ब्राह्मणस्स पिता अदा।
अथो कण्हाजिनं कञ्ञं, हत्थीनं च सतेन चा'' ति॥

"सुनिब्बेठितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो, सुभिन्नं दिट्ठजालं, सुमद्दितो परप्पवादो, सकसमयो सुदीपितो, व्यञ्जनं सुपरिसोधितं, सुविभत्तो अत्थो, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

२. दुक्करकारिकपञ्हो

३. "भन्ते नागसेन, सब्बेव बोधिसत्ता दुक्करकारिकं करोन्ति, उदाहु गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता'' ति? "नत्थि, महाराज, सब्बेसं बोधिसत्तानं दुक्करकारिका, गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता'' ति।

"भन्ते नागसेन, यदि एवं, अयुत्तं यं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होती'' ति? "चतूहि,

---

सर्पलोक, किन्नरलोक और इन्द्रलोक पार कर अकनिष्ठलोक (अन्तिम देवलोक) तक पहुँच गयी थी, ये सभी लोक उनके शील की गन्ध से सुगन्धित हो गये थे। तो भला उनके बच्चों को कौन दास बना कर रख पाता!

"महाराज! वेस्सन्तर राजा ने अपने पुत्र जालि कुमार को बता दिया था—'तात ! तुम्हारे दादा यदि ब्राह्मण को धन दे कर छुड़ाना चाहें तो तुम्हारे लिये एक सहस्र निष्क (सिक्का) और तुम्हारी बहन कृष्णाजिना के लिये सौ दास–दासी, सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ गाय, सौ भैंस, सौ निष्क दे कर छुड़ावें, तात! यदि तुम्हारे दादा हठपूर्वक विना कुछ दिये, अपना शासन चला कर ब्राह्मण के हाथ से तुम्हें छुड़ा लेना चाहें तो तुम उनकी बात न मानना, ब्राह्मण के पास रहना। ऐसा कह कर वेस्सन्तर राजा ने उन्हें भेजा था। तब जालिकुमार ने वहाँ जा कर अपने दादा से पूछे जाने पर कहा था—

'तात! हजार रुपया मूल्य लगा कर मेरे पिता ने मुझे इस ब्राह्मण को दिया था और सौ हाथी का मूल्य लगाकर बहन कृष्णाजिना को।।'

"भन्ते नागसेन! आपने ठीक समझाया। झूठे पक्ष का खण्डन कर दिया। विपक्ष का वाद सर्वथा दबा दिया। अपनी बात को स्पष्ट कर दिया। उद्धरण का सत्य पक्ष बता दिया। प्रश्न का बड़ा सुन्दर विश्लेषण कर दिखाया। आपने जो समझाया, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

२. दुष्करचर्याविषयकप्रश्न—३."भन्ते! क्या सभी बोधिसत्त्व दुष्करचर्या करते हैं या केवल गौतम बोधिसत्त्व ने ही की थी?' "महाराज! सभी बोधिसत्त्व दुष्करचर्या नहीं करते, केवल गौतम बोधिसत्त्व ने की थी।"

महाराज, ठानेहि बोधिसत्तानं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होति। कतमेहि चतूहि? कुलवेमत्तता, अद्धानवेमत्तता, आयुवेमत्तता, पमाणवेमत्तता'' ति। इमेहि खो, महाराज, चतूहि ठानेहि बोधिसत्तानं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होति। सब्बेसं पि, महाराज, बुद्धानं रूपे सीले समाधिम्हि पञ्ञाय विमुत्तिया विमुत्तिञाणदस्सने चतुवेसारज्जे *(अं० नि० ४-८)* दसतथागतबले *(म० नि०, महासीह० सु०)* छअसाधारणञाणे चुद्दसबुद्धञाणे अट्ठारसबुद्धधम्मे केवले च बुद्धगुणे नत्थि वेमत्तता, सब्बे पि बुद्धा बुद्धधम्मेहि समसमा'' ति।

''यदि, भन्ते नागसेन, सब्बे पि बुद्धा बुद्धधम्मेहि समसमा, केन कारणेन गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता'' ति? ''अपरिपक्के, महाराज, ञाणे अपरिपक्काय बोधिया गोतमो बोधिसत्तो नेक्खम्ममभिनिक्खन्तो, तेन अपरिपक्कं ञाणं परिपाचयमानेन दुक्करकारिका कता'' ति।

''भन्ते नागसेन, केन कारणेन बोधिसत्तो अपरिपक्के ञाणे अपरिपक्काय बोधिया महाभिनिक्खमनं निक्खन्तो, ननु नाम ञाणं परिपाचेत्वा परिपक्के ञाणे निक्खमितब्बं'' ति?

४. ''बोधिसत्तो, महाराज, विपरीतं इत्थागारं दिस्वा विप्पटिसारी अहोसि, तस्स विप्पटिसारिस्स अरति उप्पज्जि, अरतिचित्तं उप्पन्नं दिस्वा अञ्ञतरो मारकायिको देवपुत्तो— 'अयं खो, कालो अरतिचित्तस्स विनोदनाया' ति वेहासे ठत्वा इदं वचनमब्रवि—'मारिस, मा खो त्वं उक्कण्ठितो अहोसि, इतो ते सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं पातुभविस्सति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं, *(दी०नि०, चक्क०सुत्तं)* पठविगतानि च ते रतनानि आकासट्ठानि च सयमेव उपगच्छिस्सन्ति, द्विसहस्सपरित्तदीपपरिवारेसु चतूसु महादीपेसु

''भन्ते! यदि ऐसी बात है तो एक बोधिसत्त्व का दूसरे से भिन्न होना उचित नहीं?'' ''महाराज! चार स्थानों (बातों) में एक बोधिसत्त्व दूसरे से भिन्न होता है। कौन चार स्थानों में? महाराज ! १. कुल में, २. स्थान और समय में, ३. आयु में और ४. शरीर की ऊँचाई में—इन चार स्थानों में एक बोधिसत्त्व दूसरे से भिन्न होता है। महाराज! किन्तु सभी बोधिसत्त्व रूप, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्ति—ज्ञान के साक्षात्कार, चार वैशारद्य, दस बुद्धबल, छह असाधारण ज्ञान, चौदह बुद्ध—ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध—धर्म और बुद्ध की दूसरी बातों में समान ही होते हैं। सभी बुद्ध बुद्धगुणों में बराबर होते हैं।''

''भन्ते! यदि सभी बुद्ध अपने गुणों में समान होते हैं, तो बोधिसत्त्व गौतम ने अकेले दुष्करचर्या क्यों की?'' ''महाराज! बोधिसत्त्व (चार आर्य सत्यों के) ज्ञान और प्रज्ञा पाने से पहले ही घर छोड़ कर निकल गये थे। अपने अपरिपक्व ज्ञान को पूर्ण करने की धुन में ही उन्होंने दुष्करचर्या की थी।''

''भन्ते! ज्ञान के विना परिपक्व हुये बोधिसत्त्व गौतम घर छोड़कर क्यों निकल गये? अपना ज्ञान परिपक्व होने पर ही वे घर से क्यों निकलें?''

४. ''महाराज! नाचने वाली स्त्रियों की उद्विग्न कर देनेवाली अवस्था देखकर उनका मन फिर गया था। मन फिर जाने से उन्हें वैराग्य हो गया। उनका चित्त वैराग्ययुक्त देख किसी मारकायिक देवपुत्र ने यह सोचा, 'ठीक यह समय है कि मैं उनके वैराग्य को तोड़ दूँ।' आकाश में प्रकट होकर उसने कहा— 'मार्ष! मार्ष!! आप इस तरह मत घबरा जायँ। आज के सातवें दिन आपको दिव्य चक्ररत्न, हजार अरों वाली, अच्छी नेमि और नाभि के साथ और सभी गुणों से भरा, प्रकट होगा। पृथ्वी और आकाश के सभी रत्न स्वयं ही आपके पास चले आवेंगे। दो हजार छोटे द्वीपों के साथ चार महाद्वीपों में आपकी ही एकमात्र

एकमुखेन आणा पवत्तिस्सति, परोसहस्सं च ते पुत्ता भविस्सन्ति सूराङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना, तेहि पुत्तेहि परिकिण्णो सत्तरत्तनसमन्नागतो चतुदीपमनुसासिस्ससी' ति। *(जा० १-६१)*

"यथा नाम दिवससन्तत्तं अयोसूलं सब्बत्थ उपडहन्तं कण्णसोतं पविसेय्य; एवमेव खो, महाराज बोधिसत्तस्स तं वचनं कण्णसोतं पविसित्थ, इति सो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्सा देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जि।

"यथा वा पन, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो जलमानो अञ्ञेन कट्ठेन उपदहितो भिय्योसोमत्ताय जलेय्य; एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्सा देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जि।

"यथा वा पन, महाराज, महापठवी पकतितिन्ता निब्बत्तहरितसद्दला आसित्तोदका चिक्खल्लजाता पुनदेव महामेघे अतिवुट्ठे भिय्योसोमत्ताय चिक्खल्लतरा अस्स; एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्स देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जी" ति।

"अपि नु खो, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तस्स यदि सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, पटिनिवत्तेय्य, बोधिसत्तो दिब्बे चक्करतने निब्बत्तेति।" "न हि, महाराज, सत्तमे दिवसे बोधिसत्तस्स दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, अपि च पलोभनत्थाय ताय देवताय मुसा भणितं। यदि पि, महाराज, सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, बोधिसत्तो न निब्बत्तेय्य। किं कारणं? 'अनिच्चं' ति, महाराज, बोधिसत्तो दळ्हं अग्गहेसि, 'दुक्खं' .... 'अनत्ता' ति दळ्हं अग्गहेसि उपादानक्खयं पत्तो" ति।

आज्ञा चलेगी। हजारों आपके शूर, वीर, शक्तिशाली और शत्रुओं की सेना को विनष्ट कर देने वाले पुत्र होंगे। उन पुत्रों के साथ, सात रत्नों से युक्त हो कर चारों द्वीपों पर आप शासन करेंगे।'

"महाराज! जैसे सारे दिन जलती हुई अग्नि में लाल की गयी लोहे की छड़ को कोई कान में घुसावें; वैसे ही बोधिसत्त्व को ये वचन लगे। एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को विराग हो रहा था; दूसरे मार का यह वचन सुनकर उनका मन और अधिक संवेगयुक्त हो गया।

"महाराज! जैसे कोई जलती हुई अग्नि की बड़ी राशि लकड़ी से ढक दिये जाने पर और अधिक धधक उठती है, वैसे ही एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को वैराग्य हो रहा था, दूसरे मार के इस वचन उनका मन और भी उद्विग्न हो गया।

"महाराज! जैसे कोई अपने ही घास–पात से भरी, कीचड़ हुई दलदल भूमि खूब पानी बरस जाने के बाद अधिक कीचड़ से भर जाती है; वैसे ही एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को वैराग्य हो रहा था, दूसरे मार के इस वचन को सुन कर उनका मन और भी चिन्तित हो गया।"

"भन्ते नागसेन! यदि सातवें दिन सचमुच दिव्य चक्ररत्न उनके सामने प्रकट हो जाता तो क्या वे उसे लौटा देते?" "नहीं, महाराज! सातवें दिन बोधिसत्त्व के सामने दिव्य चक्ररत्न प्रकट होने की कोई आशा ही नहीं थी; उस देवता ने केवल उन्हें लुभाने के लिये ऐसा मिथ्या कह दिया था। और महाराज! यदि सातवें दिन वास्तव में बोधिसत्त्व के सामने दिव्य चक्ररत्न प्रकट भी हो जाता; तो भी वे लौट नहीं सकते थे। सो क्यों? क्योंकि महाराज! संसार की अनित्यता और उसका दुःखमय होना और 'संसार में कोई सार (=आत्मा) नहीं है'—यह बात उनके हृदय में जम गयी थी। इस प्रकार, संसार के प्रति उनकी सारी लिप्सा नष्ट हो गयी थी।"

"यथा, महाराज, अनोतत्तदहतो उदकं गङ्गं नदिं पविसति, गङ्गाय नदिया महासमुद्दं पविसति, महासमुद्दतो पातालमुखं पविसति, अपि नु तं उदकं पातालमुखगतं पटिनिवत्तित्वा महासमुद्दं पविसेय्य, महासमुद्दतो गङ्गं नदिं पविसेय्य, गङ्गाय नदिया पुन अनोतत्तं पविसेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तेन कप्पानं सतसहस्सं चतुरो च असङ्ख्येय्ये कुसलं परिपाचितं इमस्स भवस्स कारणा, सोयं अन्तिमभवो अनुप्पत्तो, परिपक्कं बोधिञाणं, छहि वस्सेहि बुद्धो भविस्सति सब्बञ्ञू लोके अग्गपुग्गलो, अपि नु खो, महाराज, बोधिसत्तो चक्करतनकारणा पटिनिवत्तेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति।

"अपि च, महाराज, महापथवी परिवत्तेय्य सकाननसपब्बता, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। आरोहेय्य पि चे, महाराज, गङ्गाय उदकं पटिसोतं, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। विसुस्सेय्य पि, महाराज, महासमुद्दो अपरिमितजलधरो गोपदे उदकं विय, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। फलेय्य पि चे, महाराज, सिनेरुपब्बतराजा सतधा वा सहस्सधा वा, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। पतेय्युं पि चे, महाराज, चन्दिमसुरिया सतारका लेड्डु विय छमायं, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। संवट्टेय्य पि चे, महाराज, आकासो किलञ्जमिव, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। किङ्कारणा? पदालितत्ता सब्बबन्धनानं" ति।

"भन्ते नागसेन, कति लोके बन्धनानी" ति? "दस खो पनिमानि, महाराज, लोके बन्धनानि, येहि बन्धनेहि बद्धा सत्ता न निक्खमन्ति, निक्खमित्वा पि पटिनिवत्तन्ति। कतमानि दस? माता, महाराज, लोके बन्धनं, पिता .... भरिया .... पुत्ता .... ञाती .... मित्ता .... धनं ....लाभसक्कारो....इस्सरियं....पञ्च कामगुणा, महाराज, लोके बन्धनं। इमानि खो, महाराज,

---

"महाराज! जैसे अनोतत्त दह (अनवतप्त ह्रद) का जल गङ्गा नदी में गिरता है, गङ्गा नदी में गिर कर समुद्र में गिरता है और समुद्र से पाताल में चला जाता है। महाराज! तो क्या वही जल पाताल से समुद्र में, समुद्र से गङ्गा नदी में और गङ्गा नदी से अनोतत्त दह में पुनः आ सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी प्रकार, इस अन्तिम जन्म तक पहुँचने के लिये ही बोधिसत्त्व चार असंख्य एक लाख कल्पों से पुण्य एकत्र कर रहे थे, सो वे वहाँ पहुँच गये। परमज्ञान चरम सीमा तक पहुँच गया। छह वर्षों में वे बुद्ध, सर्वज्ञ और नरोत्तम होने वाले ही थे। तो क्या वे चक्ररत्न के लिये लौट जाते?" "नहीं भन्ते!"

"महाराज! यह महापृथ्वी बड़े–बड़े जंगल और ऊँचे–ऊँचे पर्वतों सहित भले ही उलट जाती, गङ्गा नदी भी उलटी धार बहने लगती, गोपद (गाय का पैर) पड़ने से भूमि पर बने गड्ढे के जल के समान यह अथाह, अगाध समुद्र भले ही सूख जाता, सुमेरु पर्वतराज सैकड़ों और हजारों टुकड़ों में भले ही बँट जाता, सूर्य, चन्द्र और सभी तारे ढेले की तरह पृथ्वी पर भले ही गिर पड़ते और चटाई की तरह पूरे आकाश को कोई भले ही लपेट लेता, किन्तु बोधिसत्त्व विना सम्यक्सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। वह क्यों? क्योंकि संसार के सभी बन्धनों को उन्होंने तोड़ दिया था।"

"भन्ते नागसेन! संसार के कितने बन्धन हैं?" "महाराज! संसार के दस बन्धन हैं, जिन में पड़ कर जीव नहीं निकल पाता या निकल कर फिर बँध जाता है। वे दस बन्धन कौन से हैं? महाराज! लोक में १. माता, २. पिता, ३. स्त्री, ४. पुत्र, ५. बन्धु–बान्धव, ६. मित्र, ७. धन, ८. लाभ–सत्कार, ९.

दस लोके बन्धनानि, येहि बन्धनेहि बद्धा सत्ता न निक्खमन्ति, निक्खमित्वा पि पटिनिवत्तन्ति। तानि दस बन्धनानि बोधिसत्तस्स छिन्नानि पदालितानि। तस्मा, महाराज, बोधिसत्तो न पटिनिवत्तती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यदि बोधिसत्तो उप्पन्ने अरतिचित्ते देवताय वचनेन अपरिपक्काय बोधिया नेक्खमभिनिक्खन्तो, किं तस्स दुक्करकारिकाय कताय, ननु नाम सब्बभक्खेन भवितब्बं ञाणपरिपाकं आगमयमानेना'' ति?

''दस खो, पनिमे महाराज, पुग्गला लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। कतमे दस? इत्थी, महाराज, विधवा लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। दुब्बलो, महाराज, पुग्गलो .... अमित्तञाति, महाराज, पुग्गलो .... महग्घसो, महाराज, पुग्गलो .... अगरुकुलवासिको, महाराज, पुग्गलो .... पापमित्तो, महाराज, पुग्गलो .... धनहीनो, महाराज, पुग्गलो .... आचारहीनो, महाराज, पुग्गलो .... कम्महीनो, महाराज, पुग्गलो .... पयोगहीनो, महाराज, पुग्गलो, लोकस्मिं ओञातो अवञातो हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तिकतो। इमे खो, महाराज, दस पुग्गला लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। इमानि खो, महाराज, दस ठानानि अनुस्सरमानस्स बोधिसत्तस्स एवं सञ्ञा उप्पज्जि—'माहं कम्महीनो अस्सं पयोगहीनो गरहितो देवमनुस्सानं, यं नूनाहं कम्मस्सामी अस्सं कम्मगरु कम्माधिपतेय्यो कम्मसीलो कम्मधोरेय्यो कम्मनिकेतवा अप्पमत्तो विहरेय्यं' ति। एवं खो, महाराज, बोधिसत्तो ञाणं परिपाचेन्तो दुक्करकारिकं अकासी'' ति।

प्रभुता, १०. पाँच–कामगुण (पाँचों इन्द्रियों के भोग)। महाराज! यही दस संसार के वे बन्धन हैं, जिन में पड़ कर ....। बोधिसत्त्व ने उन सभी दस बन्धनों को काट दिया था, सर्वथा नष्ट कर दिया था; महाराज! इसी से बोधिसत्त्व फिर नहीं लौट सकते थे।''

''भन्ते नागसेन! ज्ञान का पूर्ण परिपाक न होने पर भी यदि बोधिसत्त्व के हृदय में देवता का वचन सुन वैराग्य उत्पन्न हो गया था जिससे वे घर छोड़कर निकल गये थे, तो दुष्करचर्या से उनका क्या प्रयोजन था? उन्हें तो आनन्द से खाते–पीते अपने ज्ञान के परिपक्व होने की प्रतीक्षा करनी चाहिये थी?''

''महाराज! संसार में ऐस दस लोग हैं, जो अपमानित होते हैं, निन्दित होते हैं, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठित होते हैं, सभी जगह दबाये जाते हैं और जिनकी कोई भी अपेक्षा नहीं करता। कौन से दस? महाराज! १. विधवा स्त्री, २. कमजोर आदमी, ३. जिस के कोई मित्र और बन्धु–बान्धव न हों, ४. पेटू आदमी, ५. हीन कुल का, ६. बुरे लोगों के साथ रहने वाला, ७. निर्धन, ८. सामाजिक नियम न जानने–वाला ९. आलसी और १०. अयोग्य आदमी। महाराज! ये दस लोग लोक में अपमानित होते हैं, निन्दित होते हैं, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठित किये जाते हैं, सभी जगह दबाये जाते हैं और जिनकी तरफ कोई भी ध्यान नहीं देता। महाराज! इन दस बातों को स्मरण कर बोधिसत्त्व ने ऐसा विचारा— 'देवताओं और मनुष्यों में भी कहीं आलसी और अयोग्य समझ कर निन्दित न हो जाऊँ! अतः मुझे कर्मपरायण और कर्मशील रहना चाहिये। मुझे कभी असावधान नहीं रहना चाहिये।' महाराज! इसी से बोधिसत्त्व ने अपना ज्ञान पूर्ण करते हुये दुष्करचर्या का अभ्यास किया था।''

"भन्ते नागसेन, बोधिसत्तो दुक्करकारिकं करोन्तो एवमाह—'न खो पनाहं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय अधिगच्छामि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं, सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधाया' ति। अपि नु तस्मिं समये बोधिसत्तस्स मग्गं आरब्भ सतिसम्मोसो अहोसी" ति।

"पञ्चवीसति खो पनिमे, महाराज, चित्तदुब्बलीकरणा धम्मा, येहि दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। कतमे पञ्चवीसति? कोधो, महाराज, चित्तस्स दुब्बलीकरणो धम्मो येन दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। उपनाहो, मक्खो, पलासो, इस्सा, मच्छरियं, माया, साठेय्यं, थम्भो, सारम्भो, मानो, अतिमानो, मदो, पमादो, थीनमिद्धं, नन्दी, आलस्यं, पापमित्तता, रूपा, सद्दा, गन्धा, रसा, फोट्ठब्बा, खुदापिपासा, अरति, महाराज, चित्तदुब्बलीकरणो धम्मो, येन दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। इमे खो, महाराज, पञ्चवीसति चित्तदुब्बलीकरणा धम्मा येहि दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय।

"बोधिसत्तस्स, महाराज, खुदापिपासा कायं परियादियिंसु, काये परियादिण्णे चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। सतसहस्सं, महाराज, कप्पानं चतुरो च असङ्ख्येय्ये कप्पे बोधिसत्तो चतुन्नं येव अरियसच्चानं अभिसमयं अन्वेसि तासु तासु जातिसु, किं पनस्स पच्छिमे भवे अभिसमयजातियं मग्गं आरब्भ सतिसम्मोसो हेस्सति! अपि च, महाराज, बोधिसत्तस्स सञ्ञामत्तं उप्पज्जि—'सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधिया' ति। पुब्बे खो, महाराज, बोधिसत्तो एकमासिको समानो पितु सक्कस्स कम्मन्ते सीताय जम्बुच्छायाय सिरिसयने

"भन्ते नागसेन! बोधिसत्त्व ने दुष्करचर्या का अभ्यास करते हुए कहा था— 'इस कठोर दुष्करचर्या से मैं उस अलौकिक परमज्ञान को साक्षात् नहीं कर सकूँगा। बुद्धत्व पाने का क्या कोई दूसरा मार्ग होगा?' तो क्या उस समय मार्ग निश्चित करने में बोधिसत्त्व किङ्कर्तव्यविमूढ़ गये थे?"

"महाराज! चित्त को दुर्बल बना देने वाली पचीस बातें हैं, जिनके कारण आस्रवों का क्षय करने में चित्त स्थिर नहीं हो पाता। कौन सी पचीस बातें? महाराज! १. क्रोध, २. डाह, ३. डींग मारना, ४. घमण्ड, ५. ईर्ष्या, ६. लोलुपता, ७. झूठी शान, ८. शठता, ९. दुराग्रह, १०. कलहप्रियता, ११–१२. अपने को बड़ा, सबसे बड़ा समझना, १३. मद, १४. प्रमाद, १५. स्त्यान, १६. तन्द्रा, १७. आलस्य, १८. दुर्जन–मित्रता, १९. रूप, २०. शब्द, २१. गन्ध, २२. स्पर्श, २३. भूख, २४. प्यास, २५. असन्तोष— महाराज! चित्त को दुर्बल बना देने वाली ये पचीस बातें हैं; जिनके कारण आस्रवों का क्षय करने में चित्त स्थिर नहीं हो पाता।

"महाराज! उस समय इनमें से भूख और प्यास बोधिसत्त्व के शरीर को दबाये हुई थी। भूख और प्यास से शरीर के इस प्रकार दबे रहने के कारण आस्रवों का क्षय करने में उनका चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा था। महाराज! चार असंख्य एक लाख कल्पों से बोधिसत्त्व जन्म–जन्म में चार आर्यसत्यों को साक्षात्कार करने में प्रयत्नशील थे। तो क्या अन्तिम जन्म में आकर जब उन्हें आर्यसत्यों का साक्षात्कार होने वाला था; वे अपने मार्ग से विचलित हो जाते! महाराज! अपितु बोधिसत्त्व को यह संकेत मिल गया था कि अवश्य कोई न कोई दूसरा ही मार्ग होगा। महाराज! बोधिसत्त्व तो पहले ही, जब वे केवल एक महीने के थे, अपने पिता शाक्य शुद्धोदन के काम में फँसे रहने के समय जम्बू (जामुन) वृक्ष की ठण्ढी

पल्लङ्कं आभुजित्वा निसिन्नो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासि .... पे० .... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि। ञाणं परिपाचेन्तो बोधिसत्तो दुक्करकारिकं अकासी'' ति।

३. कुसलाकुसलबलवतरपञ्हो

५. ''भन्ते नागसेन, कतमं अधिमत्तं बलवतरं, कुसलं वा अकुसलं वा'' ति? ''कुसलं, महाराज, अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा अकुसलं'' ति। ''नाहं, भन्ते नागसेन, तं वचनं सम्पटिच्छामि—'कुसलं अधिमत्तं बलवतरं नो तथा अकुसलं' ति। दिस्सन्ति, भन्ते नागसेन, इध पाणातिपातिनो अदिन्नादायिनो कामेसु मिच्छाचारिनो मुसावादिनो गामघातका पन्थदूसका नेकतिका वञ्चनिका, सब्बे ते तावतकेन पापेन लभन्ति हत्थच्छेदं पादच्छेदं हत्थपादच्छेदं कण्णच्छेदं नासच्छेदं कण्णनासच्छेदं बिलङ्गथालिकं सङ्खमुण्डिकं राहुमुखं जोतिमालिकं हत्थपज्जोतिकं एरकवत्तिकं चीरकवासिकं एणेय्यकं बळिसमंसिकं कहापणकं खारापतच्छिकं पलिघपरिवत्तिकं पलालपीठकं, तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चनं, सुनखेहि पि खादापनं, सूलारोपनं, असिना पि सीसच्छेदनं। केचि रत्तिं पापं कत्वा रत्तिं येव विपाकं अनुभवन्ति, केचि रत्तिं कत्वा दिवा येव अनुभवन्ति, केचि दिवा कत्वा दिवा येव अनुभवन्ति, केचि दिवा कत्वा रत्तिं येव अनुभवन्ति। केचि द्वे तयो दिवसे वीतिवत्ते अनुभवन्ति। सब्बे पि ते दिट्ठेव धम्मे विपाकं अनुभवन्ति। अत्थि पन, भन्ते नागसेन, कोचि एकस्स वा द्विन्नं वा

छाया में सुन्दर पलने पर पद्मासन लगा कर बैठे, काम और अकुशल धर्मों से रहित हो, वितर्क और विचार के साथ, विवेक से उत्पन्न, प्रीतिसुख वाले उस प्रथम ध्यान तक पहुँच गये थे। उसी तरह, उन्होंने दूसरा, तीसरा और चौथा ध्यान भी प्राप्त कर लिया था।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। मैं आपका कथन मान लेता हूँ कि अपने ज्ञान को पूर्ण करते हुये बोधिसत्त्व ने दुष्करचर्या का अभ्यास किया था।''

३. पापपुण्यबलविषयकप्रश्न— ५. ''भन्ते नागसेन! अधिक बलवान् कौन होता है, पाप या पुण्य?'' ''महाराज! पुण्य ही अधिक बलवान् होता है; पाप नहीं होता।'' ''भन्ते नागसेन! कितने लोग हैं, जो हत्या कर डालते हैं, चोरी, व्यभिचार, असत्य–भाषण, सारे गाँव में लूटपाट, रहजनी, ठगी या छल करते हैं। उतने ही पाप के लिये उनका हाथ काट दिया जाता है, पैर काट दिया जाता है, हाथ और पैर दोनों काट दिये जाते हैं, कान काट दिया जाता है, नाक काट दी जाती है, कान और नाक दोनों काट दिया जाते हैं, और उन्हें बिलङ्गथालिक, ... इत्यादि १७ कठोर राजदण्ड[1] दिये जाते हैं, और जिस रात्रि में पाप करते हैं, उसी रात्रि में उसका फल भी भोग लेते हैं; कितने लोग जिस रात्रि में पाप करते हैं, उसे दूसरे दिन ही फल पाते हैं; कितने लोग जिस दिन या रात्रि में पाप करते हैं, उसी दिन उसका फल पा लेते हैं, कितने लोग आज पाप कर दो तीन दिन बाद उसका फल पाते हैं। वे सभी देखते–देखते इसी जन्म में अपनी करनी का फल पा लेते हैं। भन्ते नागसेन! किन्तु क्या ऐसा भी कोई है जिसने परिष्कारों के साथ एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस, सौ, हजार या लाख भिक्षुओं को दान देकर, अथवा शील–

---

१. इन १७ राजदण्डों का वर्णन पीछे आ चुका है; इसलिये यहाँ उनके नाम नहीं दिये गये।

तिण्णं वा चतुन्नं वा पञ्चन्नं वा दसन्नं वा सतस्स वा सतसहस्सस्स वा सपरिवारं दानं दत्वा दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा सुखं वा अनुभविता, सीलेन वा उपोसथकम्मेन वा'' ति?

६. ''अत्थि, महाराज, चत्तारो पुरिसा दानं दत्वा सीलं समादियित्वा उपोसथकम्मं कत्वा दिट्ठेव धम्मे तेनेव सरीरदेहेन तिदसपुरे समनुप्पत्ता'' ति। ''को च को च, भन्ते'' ति? ''मन्धाता, महाराज! राजा, निमि राजा, साधीनो राजा, गुत्तिलो च गन्धब्बो'' ति।

''भन्ते नागसेन, अनेकेहि तं भवसहस्सेहि अन्तरितं, द्विन्नं पि अम्हाकं एतं परोक्खं। यदि समत्थो सि, वत्तमानके भवे भगवतो धरमानकाले कथेही'' ति? ''वत्तमानके पि, महाराज, भवे पुण्णको दासो थेरस्स सारिपुत्तस्स भोजनं दत्वा तदहेव सेट्ठिट्ठानं अज्झुपगतो, सो एतरहि 'पुण्णको सेट्ठो' ति पञ्ञायि। गोपालमाता देवी अत्तनो केसे विक्किणित्वा लद्धेहि अट्ठहि कहापणेहि थेरस्स महाकच्चायनस्स अत्तट्ठमकस्स पिण्डपातं दत्वा तदहेव रञ्ञो चण्डपज्जोतस्स अग्गमहेसित्तं पत्ता। सुप्पिया उपासिका अञ्ञतरस्स गिलानभिक्खुनो अत्तनो ऊरुमंसेन पटिच्छादनियं दत्वा दुतियदिवसे येव रुळ्हवणा सच्छवी अरोगा जाता। मल्लिका देवी भगवतो अभिदोसिकं कुम्मासपिण्डं दत्वा तदहेव रञ्ञो कोसलस्स अग्गमहेसी जाता। सुमनो मालाकारो अट्ठहि सुमनपुप्फमुट्ठीहि भगवन्तं पूजेत्वा तं दिवसं येव महासम्पत्तिं पत्तो। एकसाटको ब्राह्मणो उत्तरसाटकेन भगवन्तं पूजेत्वा तं दिवसं येव सब्बट्ठकं लभि। सब्बे पेते, महाराज, दिट्ठधम्मिकं भोगं च यसं च अनुभविंसू'' ति।

''भन्ते नागसेन, विचिनित्वा परियेसित्वा छ जने येव अद्दसासी'' ति। ''आम, महाराजा'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो यथा अकुसलं।

पालन कर, या उपोसथ व्रत रख कर अपने देखते ही देखते इसी जन्म में सम्पत्ति, यश या सुख पा लिया हो?''

६. ''हाँ, महाराज! ऐसे चार पुरुष हैं, जो दान देकर शील का पालन कर और उपोसथ व्रत रखकर अपने देखते ही देखते शरीर से देवलोक में भी प्रतिष्ठित हुए हैं।'' ''भन्ते! वे कौन कौन हैं?'' ''महाराज! १. राजा मान्धाता, २. राजा निमि, ३. राजा स्वाधीन, और ४. गुत्तिल गन्धर्व।''

''भन्ते! ये राजा हम लोगों से कई हजार वर्ष पूर्व के हैं। न उन्हें आपने देखा और न मैंने। क्या भगवान् के समय की कोई ऐसी बात हम कह सकते हैं?'' ''महाराज! इस युग में भी १. पुण्णक नाम का दास स्थविर शारिपुत्र को भोजन देकर उसी दिन सेठ हो गया था। वह आज भी 'पुण्णक सेठ' के नाम से जाना जाता है। २. रानी गोपालमाता अपने शिर के केशों को आठ कार्षापण (उस समय का सिक्का) में बेच कर महाकात्यायन और उनके सात साथियों को पिण्डपात (भिक्षा) दे कर उसी दिन चण्डप्रद्योत राजा की पटरानी हो गयी। ३. सुप्रिया नाम की उपासिका किसी रोगी भिक्षु को अपनी जाँघ के माँस का पथ्य देकर दूसरे ही दिन स्वस्थ हो गयी थी, और उसका व्रण भर गया था। ४. मल्लिका देवी भगवान् को कुल्मासपिण्ड मट्ठा दे कर उसी दिन कोसलराज की पटरानी हो गयी थी। ५. सुमन नाम का माली आठ मुट्ठी फूलों से भगवान् का पूजन कर उसी दिन महासम्पत्तिशाली हो गया था। ६. एकसाटक नामक ब्राह्मण भगवान् की उत्तरसाटक (चीवर) से पूजा कर उसी दिन सर्वार्थसम्पन्न हो गया। महाराज! ये सभी अपने देखते ही देखते इसी जन्म में भोग और यश को प्राप्त हुये थे।''

''भन्ते नागसेन! बहुत खोज कर आप ने इन छह लोगों का नाम गिनाया! भन्ते नागसेन! इससे

अहं हि, भन्ते नागसेन, एक दिवसं येव दस पि पुरिसे पस्सामि पापस्स कम्मस्स विपाकेन सूलेसु आरोपेन्ते, वीसतिं पि तिंसं पि चत्ताळीसं पि पञ्ञासं पि पुरिसे पुरिससतं पि पुरिससहस्सं पि पस्सामि पापस्स कम्मस्स विपाकेन सूलेसु आरोपेन्ते। नन्दकुलस्स, भन्ते नागसेन, भद्दसालो नाम सेनापतिपुत्तो अहोसि, तेन च रञ्ञा चन्दगुत्तेन सङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। तस्मिं खो पन, भन्ते नागसेन, सङ्गामे उभतो बलकाये असीति कबन्धरूपानि अहेसुं। एकस्मिं किर सीसकलन्दे परिपाते एकं कबन्धरूपं उट्ठहति, सब्बे पेते पापस्स येव कम्मस्स विपाकेन अनयब्यसनं आपन्ना। इमिना पि, भन्ते नागसेन, कारणेन भणामि— 'अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं'' ति।

''सुय्यति, भन्ते नागसेन, इमस्मिं बुद्धसासने कोसलेन रञ्ञा असदिसदानं दिन्नं'' ति?''आम, महाराज, सुय्यती'' ति।''अपि नु खो, भन्ते नागसेन, कोसलराजा तं असदिसदानं दत्वा ततोनिदानं किञ्चि दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा पटिलभी'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, कोसलराजा एवरूपं अनुत्तरं दानं दत्वा पि न लभि ततोनिदानं दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा सुखं वा, तेन हि, भन्ते नागसेन, अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं'' ति?

''परित्तता, महाराज, अकुसलं खिप्पं परिणमति, विपुलत्ता कुसलं दीघेन कालेन परिणमति। उपमाय पि, महाराज, एतं उपपरिक्खितब्बं। यथा, महाराज, अपरन्ते जनपदे कुमुदभण्डिका नाम धञ्ञजाति मासलूना अन्तोगेहगता होति, सालियो छप्पञ्चमासेहि परिणमन्ति। किं पनेत्थ, महाराज, अन्तरं को विसेसो कुमुदभण्डिकाय च सालीनं चा'' ति?

तो यही ज्ञात होता है कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं। भन्ते नागसेन! मैं तो केवल एक ही दिन दस, तीस, चालीस, पचास, सौ और हजार पुरुषों को भी अपने पाप के कारण शूली पर चढ़ते देखता हूँ। भन्ते नागसेन! नन्द वंश के सेनापति को भद्रशाल नामक एक पुत्र था। उसका राजा चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में दोनों सेनाओं की ओर से अस्सी कबन्धरूप थे। एक शीर्षकबन्ध (सिर कटे धड़) के गिर जाने पर दूसरा शीर्षकबन्ध उठ खड़ा होता था। ये सभी अपने पाप के कारण ही यह घोर दुःख झेल रहे थे। भन्ते नागसेन! इसलिये मैं कहता हूँ कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं।

"भन्ते नागसेन! बुद्धधर्म में सुना जाता है कि कोसलराज ने अनुपम दान दिया था?" "हाँ, महाराज! सुना तो जाता है।" "भन्ते नागसेन! क्या कोसलराज ने यह अनुपम दान करने के बाद, उसके कारण, देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ भोग, यश या सुख पाया था?" "नहीं, महाराज!" "यदि कोसलराज को ऐसा अलौकिक दान करने से भी देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ ऐश्वर्य, यश या सुख नहीं मिला तो इससे यही ज्ञात होता है कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं।"

"महाराज! पर्याप्त (थोड़ा) होने के कारण पाप शीघ्र ही अपना फल दिखा देता है; अपर्याप्त (बड़ा) होने के कारण पुण्य का फल देर से मिलता है। महाराज! उपमा देकर भी यह समझाया जा सकता है— महाराज! जैसे अपरान्त देश में कुमुदभण्डिका नामक जाति का एक धान है, जो एक ही महीने में काट कर घर में ले आया जाता है। शालि धान पाँच छह महीनों में पकता है। महाराज! तो यहाँ कुमुदभण्डिका और शालि धान में क्या अन्तर है, क्या भेद है?" "भन्ते! कुमुदभण्डिका का छोटा होना

"परित्तता, भन्ते, कुमुदभण्डिकाय, विपुलता च सालीनं। सालियो, भन्ते नागसेन, राजारहा राजभोजनं, कुमुदभण्डिका दासकम्मकरानं भोजनं" ति। "एवमेव खो, महाराज, परित्तता अकुसलं खिप्पं परिणमति, विपुलत्ता कुसलं दीघेन कालेन परिणमती" ति।

"यं तत्थ, भन्ते नागसेन, खिप्पं परिणमति तं नाम लोके अधिमत्तं बलवतरं। तस्मा अकुसलं अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं। यथा नाम, भन्ते नागसेन, यो कोचि योधो महतिमहायुद्धं पविसित्वा पटिसत्तुं उपकच्छके गहेत्वा आकड्ढित्वा खिप्पतरं सामिनो उपनेय्य, सो योधो लोके समत्थो सूरो नाम। यो च भिसक्को खिप्पं सल्लं उद्धरति रोगमपनेति, सो भिसक्को छेको नाम। यो गणको सीघसीघं गणेत्वा खिप्पं दस्सयति, सो गणको छेको नाम। यो मल्लो खिप्पं पटिमल्लं उक्खिपित्वा उत्तानकं पातेति, सो मल्लो समत्थो सूरो नाम। एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यं खिप्पं परिणमति कुसलं वा अकुसलं वा, तं लोके अधिमत्तं बलवतरं" ति?

"उभयं पि तं, महाराज, कम्मं सम्परायवेदनीयमेव, अपि च खो अकुसलं सावज्जताय खणेन दिट्ठधम्मवेदनीयं होति। पुब्बकेहि, महाराज, खत्तियेहि ठपितो एसो नियमो— 'यो पाणं हनति सो दण्डारहो, यो अदिन्नं आदियति....यो परदारं गच्छति....यो मुसा भणति....यो गामं घातेति.... यो पन्थं दूसेति.... यो निकतिं करोति....यो वञ्चनं करोति सो दण्डारहो वधितब्बो छेत्तब्बो भेत्तब्बो हन्तब्बो' ति। तं ते उपादाय विचिनित्वा विचिनित्वा दण्डेहि वधेन्ति छिन्दन्ति भिन्दन्ति हनन्ति च। अपि नु, महाराज, अत्थि केहिचि ठपितो नियमो— 'यो दानं वा देति, सीलं वा रक्खति, उपोसथकम्मं वा करोति, तस्स धनं वा यसं वा दातब्बं'

और शालि धान का बड़ा होना। इसी से एक बहुत जल्दी तैयार हो जाता है और दूसरा विलम्ब से। भन्ते! शालि चावल राजभोग्य होता है, उसे राजा लोग खाते हैं, और कुमुदभण्डिका चावल दास-दासी खाते हैं।" "इसी तरह महाराज! छोटा होने के कारण पाप शीघ्र ही अपना फ़ल दिखा देता है; बड़ा होने के कारण पुण्य का फल विलम्ब से मिलता है।"

"भन्ते नागसेन! ठीक है! तो भी जिसका फल शीघ्र मिल जाता है, वही संसार में अधिक बलवान् समझा जाता है। इसलिये पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं। भन्ते नागसेन! (१) जो सिपाही घमासान युद्ध में घुसकर शत्रु को काँख से पकड़ जल्द ही अपने स्वामी के पास घसीट लाता है, वही वीर और बहादुर कहा जाता है। (२) जो वैद्य शीघ्रता से शल्य-चिकित्सा कर रोगी को ठीक कर देता है, वही वैद्य चतुर समझा जाता है। (३) जो मुनीम (गणक) शीघ्रता से गणना लगाकर खाता मिला देता है, वही योग्य समझा जाता है। (४) जो पहलवान् अपने प्रतिद्वन्द्वी को शीघ्र पटक कर चित्त कर देता है, वही अच्छा समझा जाता है। भन्ते नागसेन! तैसे ही पाप या पुण्य जो अपना फल शीघ्र दिखा देता है, वही अधिक बलवान् है?"

"महाराज! दोनों कर्मों का फल दूसरे जन्म में मिलेगा; किन्तु पाप अशुभ होने के कारण यहाँ भी अशुभ परिणाम लाता है। महाराज! पूर्व काल के राजाओं ने यह नियम बना दिया था कि जो हत्या करेगा उसे दण्ड दिया जायगा; जो चोरी करेगा, जो झूठ बोलेगा, जो गाँव में लूट-पाट मचावेगा, जो रहजनी करेगा, जो ठगी करेगा और जो छल करेगा, उसे दण्ड दिया जायगा, उसे फाँसी दे दी जायगी, उसके अङ्ग काट लिये जायेंगे तथा उसे कोड़े लगाये जायेंगे। उसी के अनुसार वे (आज भी) समीक्षा कर दण्ड देते हैं। महाराज! क्या ऐसा भी नियम किसी ने बनाया है कि जो दान करेगा, शील का पालन

ति? अपि नु तं विचिनित्वा विचिनित्वा धनं वा यसं वा देन्ति, चोरस्स कतकम्मस्स वधबन्धनं विया'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''यदि, महाराज, दायकानं विचिनित्वा विचिनित्वा धनं वा यसं वा ददेय्युं, कुसलं पि दिट्ठधम्मवेदनीयं भवेय्य। यस्मा च खो, महाराज, दायके न विचिनन्ति— 'धनं वा यसं वा दस्सामा' ति, तस्मा कुसलं न दिट्ठधम्मवेदनीयं। इमिना, महाराज, कारणेन अकुसलं दिट्ठधम्मवेदनीयं, सम्पराये व सो अधिमत्तं बलवतरं वेदनं वेदियतो'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, तवादिसेन बुद्धिमन्तेन विना नेसो पञ्हो सुनिब्बेठियो। लोकियं, भन्ते नागसेन, लोकुत्तरेन विञ्ञापितं'' ति।

४. पुब्बपेतादिसपञ्हो

७. ''भन्ते नागसेन, इमे दायका दानं दत्वा पुब्बपेतानं आदिसन्ति—'इमं तेसं पापुणातू' ति। अपि नु ते कञ्चि ततोनिदानं विपाकं पटिलभन्ती'' ति? ''केचि, महाराज, पटिलभन्ति, केचि न पटिलभन्ती'' ति। ''के, भन्ते, पटिलभन्ति, के न पटिलभन्ती'' ति? ''निरयूपपन्ना, महाराज, न पटिलभन्ति, सग्गगता न पटिलभन्ति, तिरच्छानयोनिगता न पटिलभन्ति, चतुन्नं पेतानं तयो पेता न पटिलभन्ति— वन्तासिका, खुप्पिपासिनो, निज्झामतण्हिका। लभन्ति पेता परदत्तूपजीविनो, ते पि सरमाना येव लभन्ती'' ति।

''तेन हि, भन्ते नागसेन, दायकानं दानं विस्सोसितं होति अफलं, येसं उद्दिस्स कतं यदि ते न पटिलभन्ती'' ति? ''न हि तं, महाराज, दानं अफलं होति अविपाकं, दायका येव

करेगा, या उपोसथ व्रत रखेगा, उसे पुरस्कार और सम्मान दिया जायगा। क्या कोई पुण्य करने वालों को पुरस्कार देता है, जैसे चोरों को दण्ड?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! यदि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने का नियम बना दिया जाय तो भी पुण्य भी (पाप की तरह) इसी जन्म में फल देने वाला हो जाय। महाराज! क्योंकि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने के नियम नहीं है, इसीलिये, पुण्य इसी जन्म में फलप्रद नहीं होता; महाराज! इसी कारण पाप इस जन्म में ही फल देता है (किन्तु पुण्य नहीं) पुण्य तो दूसरे जन्म में ही अत्यन्त प्रभावशाली फल दिखाता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ कोई दूसरा इस प्रश्न का इतना स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकता था। भन्ते! जिस प्रश्न को मैंने लौकिक दृष्टि से पूछा था, उसे आपने लोकोत्तर विचार से समझा दिया।"

४. प्रेतनिमित्तक दान— ७. "भन्ते नागसेन! कितने लोग दान दे कर उसका पुण्य मरे हुए पूर्वजों को देते हैं। उससे क्या उनको कुछ फल मिलता है?" "महाराज! कुछ को मिलता है और कुछ को नहीं।" "भन्ते! किनको मिलता है और किनको नहीं?" "महाराज! जो निरय (नरक) स्वर्ग पहुँच गये हैं, पशु-पक्षी आदि नीच योनियों में जिनका जन्म हो गया हो या प्रेतयोनि में आये तीन प्रकार के पूर्वजों को नहीं मिलता— (१) वन्तासिक (वमन खाने वाले), (२) खुप्पिपासी (जो भूख और प्यास से बेचैन रहते हैं) और (३) निज्झामतण्हिक (प्यास से जलते हुए)। परन्तु जो 'परदत्तोपजीवी' प्रेत हैं, उन्हें अवश्य मिलता है। उन्हें भी स्मरण रखने से ही मिलता है।"

"भन्ते नागसेन! तब तो उनका दान निरर्थक होता है, जिसका कुछ फल ही नहीं। जिसके नाम से दान दिया जाता है, उसे कोई पुण्य न मिलने से वह दान तो व्यर्थ ही हुआ?" "नहीं, महाराज! वह

तस्स फलं अनुभवन्ती'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति? ''इध, महाराज, केचि मनुस्सा मच्छमंससुराभत्तखज्जकानि पटियादेत्वा ञातिकुलं गच्छन्ति। यदि ते ञातका तं उपायनं न सम्पटिच्छेय्युं, अपि नु तं उपायनं विस्सोसितं गच्छेय्य विनस्सेय्य वा'' ति?'' न हि, भन्ते, सामिकानं येव तं होती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, दायका येव तस्स फलं अनुभवन्ति। यथा वा पन, महाराज, पुरिसो गब्भं पविट्ठो असति पुरतो निक्खमनमुखे केन निक्खमेय्या'' ति? ''पविट्ठेनेव, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, दायका येव तस्स फलं अनुभवन्ती'' ति। ''होतु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि— 'दायका, येव तस्स फलं अनुभवन्ति। न मयं तं कारणं विलोमेमा' '' ति।

''भन्ते नागसेन, यदि इमेसं दायकानं दिन्नं दानं पुब्बपेतानं पापुणाति, ते च तस्स विपाकं अनुभवन्ति, तेन हि यो पाणातिपाती लुद्धो लोहितपाणी पदुट्ठमनसङ्कप्पो मनुस्से घातेत्वा दारुणं कम्मं कत्वा पुब्बपेतानं आदिसेय्य— 'इमस्स मे कम्मस्स विपाको पुब्बपेतानं पापुणातू' ति, अपि नु विपाको तस्स पुब्बपेतानं पापुणाती'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति।

''भन्ते नागसेन, को तत्थ हेतु, किं कारणं येन कुसलं पापुणाति अकुसलं न पापुणाती'' ति? ''नेसो, महाराज, पञ्हो पुच्छितब्बो; मा च त्वं महाराज, 'विस्सज्जको अत्थी' ति अपुच्छितब्बं पुच्छि। किस्स आकासो निरालम्बो? किस्स गङ्गा उद्धमुखा न सन्दति? किस्स इमे मनुस्सा च दिजा च द्विपदा? मिगा चतुप्पदा? ति, तं पि मं त्वं पुच्छिस्ससी'' ति। ''नाहं तं, भन्ते नागसेन, विहेसापेक्खो पुच्छामि, अपि च निब्बाहनत्थाय सन्देहस्स पुच्छामि। बहुमनुस्सा लोके वामगामिनो विचक्खुका, 'किं ति ते ओतारं न लभेय्युं' ति एवाहं तं पुच्छामी'' ति।

दान विना किसी फल वाला और व्यर्थ नहीं होता। देने वाले को ही उसका फल मिलता है।" "भन्ते! कृपया इसे कारण दे कर समझावें।" "महाराज! जैसे कोई मछली, मांस, मद्य, भात या अन्य भोजन तैयार कर अपने सम्बन्धी कुल में ले जाय! यदि उसके सम्बन्धी उस भेंट को स्वीकार न करें तो क्या वह सब कुछ नष्ट हो जायगा?" "नहीं, भन्ते! वह जिसका था, उसी का रहेगा।" "महाराज! इसी तरह, देने वाले को ही उसका फल मिलता है। अथवा, महाराज! जैसे कोई आदमी किसी कोठरी में प्रविष्ट हो जिससे निकलेने का कोई दूसरा द्वार सामने न हो, तो वह किस रास्ते से निकलेगा?" "भन्ते! उसी रास्ते से जिस रास्ते से घुसा था।" "महाराज! इसी तरह, देने वाले को ही उसका फल मिलता है।" "भन्ते! अस्तु, यही सही! मैं मान लेता हूँ कि उसका फल देने वाले को ही मिलता है। इस बात को मैं और नहीं काटता।

"भन्ते! यदि दिये हुये दान का पुण्य पूर्वजों तक पहुँच जाता है और वे इसका फल पा लेते हैं, तब यदि कोई हत्यारा, रक्तपिपासु नीच विचार से मनुष्यों को मार कर घोर पाप कर, उस कर्म को पूर्वजों के नाम दे दे— 'इसका फल पूर्वजों को मिले'— तो क्या यथार्थ में उसका फल पूर्वजों को मिलेगा?"
"नहीं, महाराज!"

"भन्ते नागसेन! इसका क्या कारण है कि पुण्य कर्मों के फल तो पूर्वजों तक पहुँचा दिये जा सके हैं, किन्तु पाप कर्मों के नहीं?" "महाराज! यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं था। महाराज! यह समझ कर कि कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा ही आप विना सिर–पैर के प्रश्न न पूछें। इसके बाद सम्भवतः आप यह पूछने लगें— आकाश निरालम्ब क्यों है? गङ्गा उलटी धारा में क्यों नहीं बहती? मनुष्य और पक्षी को दो

८. "न सक्का, महाराज, सह अकतेन अननुमतेन सह पापं कम्मं संविभजितुं। यथा, महाराज, मनुस्सा उदकनिब्बाहनेन उदकं सुविदूरं पि हरन्ति, अपि नु, महाराज, सक्का धनमहासेलपब्बतो निब्बाहनेन यथिच्छितं हरितुं" ति ? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं।

"यथा वा पन, महाराज, सक्का तेलेन पदीपो जालेतुं, अपि नु, महाराज, सक्का उदकेन पदीपो जालेतुं" ति ? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं। यथा वा पन, महाराज, कस्सका तळाकतो उदकं नीहरित्वा धञ्ञं परिपाचेन्ति, अपि नु खो, महाराज, सक्का महासमुद्दतो उदकं नीहरित्वा धञ्ञं परिपाचेतुं" ति ? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं" ति।

"भन्ते नागसेन, केन कारणेन सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं ? कारणेन मं सञ्ञापेहि, नाहं अन्धो अनालोको, सुत्वा वेदिस्सामी" ति ? "महाराज, अकुसलं थोकं, कुसलं बहुकं, थोकत्ता कत्तारं येव परियादियति, बहुकत्ता कुसलं सदेवकं लोकं अज्झोत्थरती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, परित्तं एकं उदकबिन्दु पठवियं निपतेय्य, अपि नु खो तं, महाराज, उदकविन्दु दस पि द्वादस पि योजनानि अज्झोत्थरेय्या" ति ? "न हि, भन्ते, यत्थ तं उदकबिन्दु

ही पैर क्यों होते हैं? मृग चौपाये क्यों हैं?" "भन्ते नागसेन! मैं आप से परिहास के लिये नहीं, किन्तु अपना सन्देह मिटाने के लिये ही पूछ रहा हूँ। संसार में कितने लोग बड़े बढ़े और उलटी समझवाले होते हैं, 'अपने को वे क्यों न सुधार लें– इसी विचार से मैं पूछता हूँ? "

८. "महाराज! पाप का फल उसे नहीं लग सकता, जिसे न तो उसने किया हो और न उसके लिये अपनी सम्मति दी हो। महाराज! जैसे नाली से लोग जल को दूर–दूर तक ले जाते हैं; क्या उसी तरह वे घने पत्थर का पहाड़ भी ले जा सकते हैं?" "नहीं, भन्ते !" "महाराज! उसी तरह पुण्यकर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पापकर्म के नहीं।

"महाराज! जैसे तैल से तो दीपक जलाया ही जाता है, क्या जल से भी कोई जला सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, पुण्यकर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पाप कर्म के नहीं। महाराज! किसान तालाब से पानी ला कर धान को सींचते हैं, क्या समुद्र से ला कर भी सींच सकते हैं?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, पुण्य कर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पाप कर्म के नहीं।"

"भन्ते नागसेन! किन्तु ऐसी बात क्यों है? कृपया कारण देकर समझावें। मैं अन्धा और बुद्धिहीन नहीं हूँ। पुष्ट प्रमाण को सुनकर ही मानूँगा?" "महाराज! पाप लघु है; पुण्य महान् है। पाप लघु होने के कारण कर्त्ता को ही फल दे सकता है। पुण्य महान् होने के कारण देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को आवृत कर लेता है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे पृथ्वी पर एक बूँद जल गिर जाय तो क्या वह दस बारह योजन तक फैल सकता है?" "नहीं, भन्ते! एक बूँद जल तो जहाँ गिरेगा, वहीं सूख जायगा।" "महाराज! ऐसा क्यों होता

निपतितं तत्थेव परियादियती'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तता, भन्ते, उदकबिन्दुस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, परित्तं अकुसलं, परित्तता कत्तारं येव परियादियति, न सक्का संविभजितुं।

''यथा वा पन, महाराज, महतिमहामेघो अभिवस्सेय्य तप्पयन्तो धरणितलं, अपि नु खो सो, महाराज, महामेघो समन्ततो ओत्थरेय्या'' ति? ''आम, भन्ते, पूरयित्वा सो महामेघो सोब्भसरसरितसाखाकन्दरपदरदहतळाकउदपानपोक्खरणियो दस पि द्वादस पि योजनानि अज्झोत्थरेय्या'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''महन्तत्ता, भन्ते, मेघस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, कुसलं बहुकं, बहुकत्ता सक्का देवमनुस्सेहि पि संविभजितुं'' ति।

''भन्ते नागसेन, केन कारणेन अकुसलं थोकं, कुसलं बहुतरं'' ति? ''इध, महाराज, यो कोचि दानं देति सीलं समादियति, उपोसथकम्मं करोति, सो हट्ठो पहट्ठो हसितो पमुदितो पसन्नमानसो वेदजातो होति। तस्स अपरापरं पीति उप्पज्जति। पीतिमनस्स भिय्यो भिय्यो कुसलं पवड्ढति।

''यथा, महाराज, उदपाने बहुसलिलसम्पुण्णे एकेन देसेन उदकं पविसेय्य एकेन निक्खमेय्य, निक्खमन्ते पि अपरापरं उप्पज्जति, न सक्का होति खयं पापेतुं; एवमेव खो, महाराज, कुसलं भिय्यो भिय्यो पवड्ढति। वस्ससते पि चे, महाराज, पुरिसो कतं कुसलं आवज्जेय्य, आवज्जिते आवज्जिते भिय्यो कुसलं पवड्ढति, तस्स तं कुसलं सक्का होति यथिच्छकेहि सद्धिं संविभजितुं। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन कुसलं बहुतरं।

अकुसलं पन, महाराज, करोन्तो पच्छा विप्पटिसारी होति, विप्पटिसारिनो चित्तं पटिलीयति पटिकुटति पटिवत्तति, न सम्पसारीयति, सोचति तप्पति हायति खीयति, न

है?'' ''भन्ते! क्योंकि बूँद बहुत छोटी है।'' ''महाराज! इसी तरह, पाप बहुत स्वल्प है। स्वल्प होने के कारण करने वाले को ही फल दे सकता है, दूसरों में बाँटा नहीं जा सकता।''

''महाराज! जैसे कभी अत्यधिक मूसलाधार जल बरसे तो क्या वह सभी ओर फैल जायगा?'' ''अवश्य! दस बारह योजन तक के गड़हे, नदी–नाले, तालाब, ह्रद, छोटी तलैया, पुष्करिणी और बावड़ी–सभी किनारों तक भर जायेंगे।'' ''महाराज! ऐसा क्यों होता है?'' ''भन्ते! क्योंकि मेघ बहुत महान् है।'' ''महाराज! इसी तरह, पुण्य महान् है। महान् होने के कारण देवताओं और मनुष्यों में भी बाँटा जा सकता है।''

''भन्ते नागसेन! पाप छोटा और पुण्य महान् क्यों है?'' ''महाराज! जो कोई दान देता है, शील का पालन करता है, उपोसथ व्रत रखता है, वह अत्यन्त आनन्दित प्रसन्न और पुलकित होता है। उसे अधिकाधिक प्रीति होती है; उसका मन प्रीति से भर कर और पुण्य की ओर लगता है।

''महाराज! जैसे अधिक जल वाला कोई कूआ हो। उसमें एक ओर से जल आवे और दूसरी ओर से बह निकले। निकलने पर भी अधिकधिक जल आता जाय, घटे नहीं; महाराज! इसी तरह, पुण्य अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है। सौ वर्षों तक कोई पुण्य बाँटता रहे तो भी अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। वह जितनों को चाहे उन्हें पुण्य दे सकता है। महाराज! यही कारण है कि दोनों में पुण्य इतना महान् है।

''महाराज! पाप करने के बाद पश्चात्ताप होता है। पश्चात्ताप होने से मन गिर जाता है, पाप की

परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति। यथा, महाराज, सुक्खाय नदिया महापुलिनाय उन्नतावनताय कुटिलसङ्कुटिलाय उपरितो परित्तं उदकं आगच्छन्तं हायति खीयति, न परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति; एवमेव खो, महाराज, अकुसलं करोन्तस्स चित्तं पटिलीयति पटिकुटति, पटिवत्तति, न सम्पसारीयति, सोचति तप्पति हायति खीयति, न परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन अकुसलं थोकं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. सुपिनपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, इमस्मिं लोके नरनारियो सुपिनं पस्सन्ति कल्याणं पि, पापकं पि, दिट्ठपुब्बं पि, अदिट्ठपुब्बं पि, कतपुब्बं पि, अकतपुब्बं पि, खेमं पि, सभयं पि, दूरे पि, सन्तिके पि, बहुविधानि पि अनेकवण्णसहस्सानि दिस्सन्ति। किं चेतं सुपिनं नाम, को चेतं पस्सती'' ति?

१०. ''निमित्तमेत्तं, महाराज, सुपिनं नाम यं चित्तस्स आपाथमुपगच्छति। छयिमे, महाराज, सुपिनं पस्सन्ति—वातिको सुपिनं पस्सति, पित्तिको सुपिनं पस्सति, सेम्हिको सुपिनं पस्सति, देवतूपसंहारतो सुपिनं पस्सति, समुदाचिण्णतो सुपिनं पस्सति, पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति। तत्र, महाराज, यं पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति तं येव सच्चं, अवसेसं मिच्छा'' ति।

''भन्ते नागसेन, यो पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति, किं तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं निमित्तं विचिनाति, तं वा निमित्तं चित्तस्स आपाथमुपगच्छति, अञ्ञो वा आगन्त्वा तस्स आरोचेती'' ति? ''न, महाराज, तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं निमित्तं विचिनाति, नापि अञ्ञो

ही तरफ बार–बार दौड़ता है, शान्ति नहीं मिलती, शोक करता है, अनुताप करता है, नष्ट भ्रष्ट होता है और ऊपर नहीं उठ सकता, वहीं का वहीं बना रहता है। महाराज! जैसे कोई सूखी हुई बालू की नदी बड़ी ऊँची नीची और टेढ़ी मेढ़ी हो, यदि उस पर थोड़ा जल बरसे तो वहीं सूखकर समाप्त हो जायगा; महाराज! इसी तरह, पाप करने वाले का चित्त गिर जाता है....। महाराज! यही कारण है, जिससे पाप बहुत लघु होता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जो समझाया, मैं उसे मान लेता हूँ।"

५. स्वप्नविषयकप्रश्न—९. "भन्ते नागसेन! इस लोक में सभी स्त्री–पुरुष स्वप्न देखते हैं—अच्छे भी और बुरे भी, पहले का देखा हुआ भी, न देखा हुआ भी, पहले का किया हुआ भी, न किया हुआ भी, शान्ति देने वाला भी और घबरा देने वाला भी, दूर का भी और निकट का भी आदि अनेक प्रकार के हजारों तरह के यह स्वप्न हैं क्या? कौन इनको देखा करता है?"

१०. "महाराज! स्वप्न चित्त के सामने वाला दर्पणमात्र है। महाराज! छह प्रकार से स्वप्न आते हैं—१. वायु भर जाने से, २. पित्त के प्रकोप से, ३. कफ बढ़ जाने से, ४. देवताओं के प्रभाव से, ५. बार–बार कोई कार्य करते रहने से, ६. भविष्य में होने वाली बातों का भी कभी–कभी स्वप्न आता है। महाराज! इन छहों में अन्तिम समय में होने वाली बातों का स्वप्न ही सत्य होता है, बाकी दूसरे मिथ्या।"

"भन्ते नागसेन! भविष्य में होने वाली बातों का भला कैसे स्वप्न आता है? क्या उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना ले आता है? या भविष्य में होने वाली बातें स्वयं

कोचि आगन्त्वा तस्स आरोचेति; अथ खो तं येव निमित्तं चित्तस्स आपातमुपगच्छति। यथा, महाराज, आदासो न सयं कुहिञ्चि गन्त्वा छायं विचिनाति, नापि अञ्ञो कोचि छायं आनेत्वा आदासं आरोपति, अथ खो यतो कुतोचि छाया आगन्त्वा आदासस्स आपातमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, न तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं चित्तं विचिनाति, नापि अञ्ञो कोचि आगन्त्वा आरोपेति, अथ खो यतो कुतोचि निमित्तं आगन्त्वा चित्तस्स आपातमुपगच्छती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यं तं चित्तं सुपिनं पस्सति, अपि नु तं चित्तं जानाति—'एवं नाम विपाको भविस्सति खेमं भयं वा'' ति? ''न हि, महाराज, तं चित्तं जानाति—'एवं विपाको भविस्सति खेमं वा भयं वा' ति। निमित्ते पन उप्पन्ने अञ्ञेसं कथेति, ततो ते अत्थं कथेन्ती'' ति।

''इङ्घ, भन्ते नागसेन, कारणं मे दस्सेही'' ति? ''यथा, महाराज, सरीरे तिलका पिळका दद्दूनि उट्ठहन्ति लाभाय वा अलाभाय वा यसाय व अयसाय वा निन्दाय वा पसंसाय वा सुखाय वा दुक्खाय वा, अपि नु ता, महाराज, पिळका जानित्वा उप्पज्जन्ति—'इमं नामं मयं अत्थं निप्फादेस्सामा'' ति?''न हि, भन्ते, यादिसे ता ओकासे पिळका सम्भवन्ति तत्थ ता पिळका दिस्वा नेमित्तका ब्याकरोन्ति—'एवं नाम विपाको भविस्सती' '' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यं तं चित्तं सुपिनं पस्सति, न तं चित्तं जानाति—'एवं नाम विपाको भविस्सति एवं वा भयं वा' ति। निमित्ते पन उप्पन्ने अञ्ञेसं कथेति, ततो ते अत्थं कथेन्ती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यो सुपिनं पस्सति सो निद्दायन्तो, उदाहु जागरन्तो पस्सती'' ति? ''यो सो, महाराज, सुपिनं पस्सति न सो निद्दायन्तो पस्सति नापि जागरन्तो पस्सति। अपि च ओक्कन्ते मिद्धे असम्पत्ते भवङ्गे एत्थन्तरे सुपिनं पस्सति। मिद्धसमारूळ्हस्स, महाराज, चित्तं

उसके चित्त में चली आती है? या कोई दूसरा आकर उसे बता जाता है?'' ''महाराज! न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना ले आता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बताता है, अपितु भविष्य में होने वाली बातें स्वयं उसके चित्त में चली आती हैं। महाराज! दर्पण स्वयं बाहर के बिम्ब को खोज कर अपने में नहीं ले आता, और न कोई दूसरा दर्पण में बिम्ब डालता है। किन्तु बाहर की चीजों की छाया स्वयं जाकर दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब बनाती है; महाराज! इसी तरह न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना लाता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बताता है। अपितु बातें स्वयं ही जहाँ तहाँ से आ कर उसके चित्त में प्रतिबिम्बित हो जाती है।''

''भन्ते नागसेन! जो चित्त स्वप्न देखता है, क्या वह जानता है कि इसका फल कैसा होगा—सुखकर या भयप्रद?'' ''महाराज! वह नहीं जानता कि इसका फल कैसा होगा—सुखकर या भयप्रद। कुछ ऐसा—वैसा स्वप्न देख कर वह दूसरों को बताता है, वे उसका अर्थ लगाते हैं।''

''भन्ते! बहुत अच्छा, कृपया इसे उदाहरण देकर समझाइये।'' ''महाराज! जैसे मनुष्य के शरीर में तिल, व्रण या दाद उसके लाभ या हानि, यश या अपयश, प्रशंसा या निन्दा, सुख या दुःख के लिये होता है। महाराज! तो क्या वे दाद, व्रण या तिल जान कर उठते हैं कि मैं ऐसा फल निकालूँगा?'' ''नहीं, भन्ते! किन्तु ज्यौतिषी या वैद्य ही तिल या व्रण उठने के स्थान के अनुसार देखकर बताते हैं कि इसका फल ऐसा होगा।'' ''महाराज! इसी तरह, जो चित्त स्वप्न देखता है, वह नहीं जानता कि....।''

''भन्ते नागसेन! जो स्वप्न देखता है, वह सोते हुए देखता है या जागते हुए?'' ''महाराज! जो स्वप्न देखता है वह न तो सोते हुए देखता है और न जागते हुए। किन्तु गाढी निद्रा के हल्का हो जाने पर

भवङ्गगतं होति, भवङ्गगतं चित्तं नप्पवत्तति, अप्पवत्तं चित्तं सुखदुक्खं नप्पजानाति। अप्पटि-विजानन्तस्स सुपिनो न होति, पवत्तमाने चित्ते सुपिनं पस्सति।

''यथा, महाराज, तिमिरे अन्धकारे अप्पभासे सुपरिसुद्धे पि आदासे छाया न दिस्सति; एवमेव खो, महाराज, मिद्धसमारूळ्हे चित्ते भवङ्गगते तिट्ठमाने पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, अप्पवत्ते चित्ते सुपिनं न पस्सति। यथा, महाराज, आदासो एवं सरीरं दट्ठब्बं, यथा अन्धकारो एवं मिद्धं दट्ठब्बं, यथा आलोको एवं चित्तं दट्ठब्बं।

''यथा वा पन, महाराज, महिकोत्थटस्स सुरियस्स पभा न दिस्सति, सन्ता येव सुरियरस्मि अप्पवत्ता होति। अप्पवत्ताय सुरियरस्मिया आलोको न होति। एवमेव खो, महाराज, मिद्धसमारूळ्हस्स चित्तं भवङ्गगतं होति, भवङ्गगतं चित्तं नप्पवत्तति, अप्पवत्ते चित्ते सुपिनं न पस्सति। यथा, महाराज, सुरियो एवं सरीरं दट्ठब्बं, यथा महिकोत्थरणं एवं मिद्धं दट्ठब्बं, यथा सुरियरस्मि एवं चित्तं दट्ठब्बं।

''द्विन्नं महाराज, सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति—मिद्धसमारूळ्हस्स भवङ्गगतस्स सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, निरोधसमापन्नस्स सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति; जागरन्तस्स, महाराज, चित्तं लोलं होति विवटं पाकटं अनिबद्धं, एवरूपस्स चित्ते निमित्तं आपातं न उपेति। यथा, महाराज, पुरिसो विवटं पाकटं अकिरियं अरहस्स रहस्सकामा परिवज्जेन्ति; एवमेव खो, महाराज, जागरन्तस्स दिब्बो अत्थो आपातं न उपेति, तस्मा जागरन्तो सुपिनं न पस्सति। यथा वा पन, महाराज, भिक्खुं भिन्नाजीवं अनाचारं पापचित्तं दुस्सीलं

जो तन्द्रा (खुमारी) की सी अवस्था होती है, उसी में स्वप्न आते हैं। महाराज! घोर निद्रा में चित्त विस्मृत (भवङ्गगत) हो जाता है, विस्मृत चित्त कार्य नहीं करता, और तब उसे सुख–दुःख का भी ज्ञान नहीं होता। जब चित्त कुछ नहीं जानता है तो उसे स्वप्न भी नहीं आते। चित्त के कार्य करने पर ही स्वप्न आते हैं।

''महाराज! जैसे घोर अन्धकार में स्वच्छ दर्पण पर भी प्रतिबिम्ब (परछाईं) नहीं पड़ता; महाराज! वैसे ही गाढ़ निद्रा में चित्त के विस्मृत हो जाने पर शरीर बने रहने से भी चित्त कार्य नहीं करता। जब चित्त ही काम नहीं करता तो स्वप्न भी नहीं आते। महाराज! जैसे दर्पण वैसे शरीर को समझना चाहिये; जैसे अन्धकार वैसे ही गाढ़ निद्रा को समझना चाहिये; जैसे प्रकाश वैसे चित्त को समझना चाहिये।

''महाराज! जैसे घना कुहरा छा जाने पर सूर्य का प्रकाश कुछ कार्य नहीं करता, सूर्य की किरणें रहने पर भी दब जाती है, सूर्य की किरणें दब जाने पर प्रकाश नहीं होता; महाराज! इसी तरह, गाढ़ी निद्रा में चित्त विस्मृत हो जाता है, ऐसा हो जाने से वह कार्य नहीं करता, चित्त के कार्य न करने से स्वप्न भी नहीं आते। महाराज! जैसे सूर्य है वैसे शरीर को समझना चाहिये; जैसे कुहरा है, वैसे गाढ़ निद्रा को समझना चाहिये; जैसी सूर्य की किरणें हैं, वैसे चित्त को समझना चाहिये।

''महाराज! दो अवस्थाओं में शरीर के बने रहने पर भी चित्त रुक (मृद्ध हो) जाता है—१. गाढ़ी निद्रा में चित्त के काम न करने (भवङ्गगत) से शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है, २. निरोध–अवस्था में शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है। महाराज! जाग्रत अवस्था में चित्त चञ्चल, खुला हुआ, प्रकट और स्वच्छन्द होता है, इस अवस्था में कोई निमित्त नहीं आता। महाराज! जैसे अपने को छिपा कर रखने की इच्छा करने वाला पुरुष किसी खुले स्थान में सब के सामने चुपचाप बैठ दूसरे पुरुष से नजर बचा कर रहना चाहता है; इसी तरह, महाराज! जागते हुये चित्त में दिव्य अर्थ नहीं

कुसीतं हीनवीरियं कुसला बोधिपक्खिया धम्मा आपातं न उपेन्ति; एवमेव खो, महाराज, जागरन्तस्स दिब्बो अत्थो आपातं न उपेति। तस्मा जागरन्तो सुपिनं पस्सति।

"भन्ते नागसेन, अत्थि मिद्धस्स आदिमज्झपरियोसानं" ति? "आम, महाराज, अत्थि मिद्धस्स आदिमज्झपरियोसानं" ति। "कतमं आदि, कतमं मज्झं, कतमं परियोसानं" ति? "यो महाराज, कायस्स ओनाहो परियोजनाहो, दुब्बल्यं, मन्दता, अकम्मञ्ञता कायस्स— अयं मिद्धस्स आदि। यो महाराज, कपिनिद्दापरेतो वोकिण्णकं जगति—इदं मिद्धस्स मज्झं। भवङ्गगति परियोसानं। मज्झूपगतो, महाराज, कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सति। यथा, महाराज, कोचि यतचारी समाहितचित्तो ठितधम्मो अचलबुद्धि पहीनकोतूहलसद्दं वनमज्झोगाहित्वा सुखमं अत्थं चिन्तयति, न च सो तत्थ मिद्धं ओक्कमति, सो तत्थ समाहितो एकग्गचित्तो सुखुमं अत्थं पटिविज्झति; एवमेव खो, महाराज, जागरो न मिद्धसमापन्नो मज्झूपगतो कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सति। यथा, महाराज, कोतूहलसद्दो एवं जागरणं दट्ठब्बं, यथा विवित्तं वनं एवं कपिनिद्दापरेतो दट्ठब्बो, यथा सो कोतूहलसद्दं ओहाय मिद्धं विवज्जेत्वा मज्झत्तभूतो सुखुमं अत्थं पटिविज्झति, एवं जागरो न मिद्धसमापन्नो कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

६. अकालमरणपञ्हो

११. "भन्ते नागसेन, ये ते सत्ता मरन्ति सब्बे ते काले येव मरन्ति, उदाहु अकाले पि मरन्ती" ति? "अत्थि, महाराज, काले पि मरणं, अत्थि अकाले पि मरणं" ति।

आते। इसी लिये जागता पुरुष स्वप्न नहीं देखता। महाराज! जिस प्रकार मिथ्या जीविका वाले, दुराचारी, पापमित्र, शीलभ्रष्ट, कायर और उत्साहरहित भिक्षु के पास ज्ञानी लोगों के गुण नहीं आते, उसी प्रकार जागते हुये के पास दिव्य अर्थ नहीं आते। इसीलिये जागता हुआ पुरुष स्वप्न नहीं देखता।"

"भन्ते नागसेन! क्या गाढ़ निद्रा के आदि, मध्य और अन्त होते हैं?" "हाँ महाराज! गाढ़ निद्रा का भी आदि होता है, मध्य होता है और अन्त भी होता है।" "उसका आदि क्या है, मध्य क्या है, और अन्त क्या है?" "महाराज! शरीर थका और टूटता हुआ-सा ज्ञात होता है, दुर्बलता ज्ञात होने लगती है, शरीर मन्द और ढीला पड़ जाता है—यही उसका आदि है। महाराज! बन्दर की नींद की तरह जब वह आधा जागता और आधा सोता है— यह उसका मध्य है। महाराज! जब वह अपने को सर्वथा भूल जाता है, विस्मृत (भवङ्गगत) हो जाता है— यह उसका अन्त है। महाराज! इसमें जो मध्य की अवस्था है उसी में स्वप्न आते है। महाराज! जैसे कोई संयम-शील अपने को वश में रखने वाला, शान्त चित्त, धर्मधीर तथा दृढ़विचारक, लोगों के कोलाहल से बहुत दूर जंगल में जाकर, गम्भीर बातों का अनुसन्धान करे। वह वहाँ सो न जाय, वह वहाँ एक मन से उसी गम्भीर समस्या के सुलझाने में लगा रहे; महाराज! इसी तरह, सोने और जागने की बीच अवस्था में पड़ा बन्दर की तरह नींद लेता हुआ पुरुष स्वप्न देखता है। महाराज! जो लोगों का कोलाहल है, वैसे ही जाग्रत अवस्था को समझें। जो एकान्त जंगल है वैसे ही 'बन्दर की नींद' समझें। जो कोलाहल से हट कर नींद को रोक कर बीच की अवस्था में रह कर गहरी बात का मनन करना है, वैसी ही 'बन्दर की नींद' वाली स्थिति में स्वप्न आते हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है, मैं इसे मान लेता हूँ।"

"के, भन्ते नागसेन, काले मरन्ति, के अकाले मरन्ती" ति? "दिट्ठपुब्बा पन, महाराज, तया अम्बरुक्खा वा जम्बुरुक्खा वा अञ्ञस्मा वा पन फलरुक्खा फलानि पतन्तानि आमानि च पक्कानि चा" ति? "आम, भन्ते" ति। "यानि तानि, महाराज, फलानि रुक्खतो पतन्ति सब्बानि तानि काले येव पतन्ति, उदाहु अकाले पी" ति? "यानि तानि, भन्ते नागसेन, फलानि परिपक्कानि विलीनानि पतन्ति सब्बानि तानि काले पतन्ति। यानि पन तानि अवसेसानि फलानि तेसु कानिचि किमिविद्धानि पतन्ति, कानिचि लकुटहतानि पतन्ति, कानिचि वातप्पहतानि पतन्ति, कानिचि अन्तोपूतिकानि हुत्वा पतन्ति, सब्बानि तानि अकाले पतन्ती" ति। "एवमेव खो, महाराज, ये ते जरावेगहता मरन्ति ते येव काले मरन्ति। अवसेसा केचि कम्मपटिबाळ्हा मरन्ति, केचि गतिपटिबाळ्हा, केचि किरियपटिबाळ्हा मरन्ती" ति।

"भन्ते नागसेन, ये ते कम्मपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते गतिपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते किरियपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते जरावेगपटिबाळ्हा मरन्ति, सब्बे ते काले येव मरन्ति। यो पि मातुकुच्छिगतो मरति, सो तस्स कालो, काले येव सो मरति। यो पि विजातघरे मरति सो तस्स कालो, सो पि काले येव मरति। यो पि मासिको मरति ....पे०.... यो पि वस्ससतिको मरति, सो तस्स कालो, काले येव सो मरति। तेन हि, भन्ते नागसेन, अकाले मरणं नाम न होति। ये केचि मरन्ति, सब्बे ते काले येव मरन्ती" ति?

१२. "सत्तिमे, महाराज, विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मि अकाले मरन्ति। कतमे सत्त? जिघच्छिको, महाराज, भोजनं अलभमानो उपहतब्भन्तरो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मि

---

६. अकालमृत्युविषयकप्रश्न—११. "भन्ते नागसेन! जितने जीव मरते हैं, सभी कालमृत्यु (जीवन पूर्ण हो जाने) से ही मरते हैं या कुछ अकालमृत्यु से भी?" "महाराज! कुछ कालमृत्यु से और कुछ अकालमृत्यु से।"

"भन्ते नागसेन! कौन कालमृत्यु से मरते हैं और कौन अकालमृत्यु से?" "महाराज! क्या आप ने देखा है कि आम, जामुन या किसी दूसरे फलवृक्ष से फल पक जाने पर भी गिरते हैं और पकने के पहले भी?" "हाँ, भन्ते! देखा है।" "महाराज! वृक्ष से जो फल गिरते हैं, वे सभी काल से ही गिरते हैं या अकाल से भी?" "भन्ते! जो फल पक और बढ़ कर गिरते हैं, वे काल से गिरते हैं; किन्तु जो कीड़ा खा जाने, लाठी चलाये जाने, आँधी–पानी या भीतर ही भीतर सड़ जाने से गिरते हैं, वे अकाल से गिरते कहलाते हैं।" "महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध हो कर मरते हैं वे 'कालमृत्यु' से मरते है। और जो अपने कर्म के कारण, बहुत चलने फिरने के कारण या कार्य के अधिक भार रहने के कारण मरते हैं, उनकी 'अकालमृत्यु' समझी जानी चाहिये'।"

"भन्ते! जो कर्म के कारण बहुत चलने फिलने के कारण, काम के अधिक भार होने के कारण, या पूर्ण वृद्ध होने के कारण मरते हैं, सभी की तो कालमृत्यु ही हुई। जो माता की कोख में ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये; इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु ही हुई। जो प्रसवगृह में ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये—इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु हुई। जो एक महीने का होते ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये; इस तरह उसी भी कालमृत्यु हुई। जो सौ वर्ष का वृद्ध होकर मरता है, उसका वही काल समझना चाहिये। इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु हुई। भन्ते! इस तरह तो अकालमृत्यु कभी होती ही नहीं। जो भी कोई मरते हैं, सभी की कालमृत्यु ही होती है?"

१२. "महाराज! सात प्रकार के लोग आयु पूर्ण होने के पहले ही मर जाते हैं; उनकी अकालमृत्यु होती है। कौन से सात? महाराज! १. भूखा आदमी भोजन न मिलने के कारण अपने पेट

अकाले मरति। पिपासितो, महाराज, पानीयं अलभमानो परिसुक्खहदयो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। अहिना दट्ठो, महाराज, विसवेगाभिहतो तिकिच्छकं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। विसमासितो, महाराज, डय्हन्तेसु अङ्गपच्चङ्गेसु अगदं अलभमानो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। अग्गिगतो, महाराज, झायमानो निब्बापनं अलभमानो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। उदकगतो, महाराज, पतिट्ठं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। सत्तिहतो, महाराज, आबाधिको भिसक्कं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। इमे खो, महाराज, सत्त विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरन्ति। तत्रापाहं, महाराज, एकंसेन वदामि।

अट्ठविधेन, महाराज, सत्तानं कालकिरिया होति—वातसमुट्ठानेन, पित्तसमुट्ठानेन, सेम्हसमुट्ठानेन, सन्निपातिकेन, उतुविपरिणामेन, विसमाहारेन, ओपक्कमिकेन, कम्मविपाकेन, महाराज, सत्तानं कालकिरिया होति। तत्र, महाराज, यदिदं कम्मविपाकेन कालकिरिया सा येव तत्थ सामयिका कालकिरिया। अवसेसा असामयिका कालकिरिया ति। भवति च—

'जिघच्छाय पिपासाय, अहिदट्ठो विसेन च।
अग्गिउदकसत्तीहि, अकाले तत्थ मीयति॥
'वातपित्तेन सेम्हेन, सन्निपातेनुतूहि च।
विसमोपक्कमकम्मेहि, अकाले तत्थ मीयति' ति॥

"केचि, महाराज, सत्ता पुब्बे कतेन तेन तेन अकुसलकम्मविपाकेन मरन्ति। इध, महाराज, यो पुब्बे परे जिघच्छाय मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि जिघच्छाय परिपीळितो छातो परिकिलन्तो सुक्खमिलातहदयो बुभुक्खितो विसुक्खितो झायन्तो अब्भन्तरं परिडय्हन्तो जिघच्छाय येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

की आग से तप कर, २. प्यासा आदमी पानी न मिलने के कारण हृदय सूख जाने से, ३. साँप का काटा आदमी अच्छे विषवैद्य के न मिलने से जहर चढ़ जाने के कारण, ४. विष दिया गया आदमी उचित दवा न मिलने के कारण अङ्ग–प्रत्यङ्ग जल जल कर, ५. अग्नि में पड़ गया आदमी किसी से न बुझाये जाने के कारण, ६. जल में डूबा आदमी कोई आश्रय न मिलने से घुट–घुट कर, और ७. बाण लगा आदमी अच्छे वैद्य के न मिलने के कारण उसी व्रण से अकाल में ही मर जाता है। महाराज! ये सात प्रकार के लोग आयु पूर्ण होने से पहले मर जाते हैं; इनकी अकालमृत्यु होती है। इन सब को मैं एक ही कोटि में गिनता हूँ।"

"महाराज! जीव सात प्रकार से मरते हैं– १. वायु के उठने से, २. पित्त के बिगड़ने से, ३. कफ के बढ़ने से, ४. तीनों के सन्निपात से, ५. ऋतु बिगड़ जाने से, ६. भोजन में गड़बड़ हो जाने से, ७. किसी भी बाह्य कारण से हुए कर्मफल के आने से। महाराज! इनमें जो कर्मफल से मृत्यु होती है, वही अपने समय पर मरना है; वही कालमृत्यु है। बाकी समय के पहले अकाल में मरना है। कहा भी गया है—

'भूख–प्यास, साँप काटने से, अन्य विष से, अग्नि, जल, बाण तथा तीर से अकालमृत्यु हो जाती है। वायु, पित्त और कफ से सन्निपात ऋतु के कारण, भोजन की गड़बड़, बाहरी कारण से उद्भूत कर्मफल से अकालमृत्यु हो जाती है।।'

"महाराज! कितने ही लोग अपने पूर्वजन्म में किये गये भिन्न–भिन्न पापों के फल से मर जाते

"यो पुब्बे परे पिपासाय मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि पेतो हुत्वा निज्झामतण्हिको समानो लूखो किसो परिसुक्खितहदयो पिपासाय येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे अहिना डंसापेत्वा मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि अजगरमुखेनेव अजगरमुखं कण्हसप्पमुखेनेव कण्हसप्पमुखं परिवत्तित्वा तेहि खायितखायितो अहीहि दट्ठो येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे विसं दत्वा मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि डय्हन्तेहि अङ्गपच्चङ्गेहि भिज्जमानेन सरीरेन कुणपगन्धं वायन्तो विसेनेव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे अग्गिना मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि अङ्गारपब्बतेनेव अङ्गारपब्बतं यमविसयेनेव यमविसयं परिवत्तित्वा दड्ढविदड्ढगत्तो अग्गिना येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे उदकेन मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि हतविलुत्तभग्गदुब्बलगत्तो खुब्भितचित्तो उदके येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे सत्तिया मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि छिन्नभिन्नकोट्टितविकोट्टितो

हैं। महाराज! जो इस जन्म में दूसरों को भूखा रखकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक बुढ़ापे, जवानी या बाल्यावस्था में भूख से छटपटाकर तड़प-तड़पकर पेट को अग्नि से भीतर ही भीतर हृदय के सूख जाने के कारण जल-जल कर मरता है। यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को प्यासा रखकर मार देता है वह लाखों वर्ष तक प्यास से व्याकुल प्रेत हो, दुबला, पतला और शुष्क हृदय वाला हो, अपने बुढ़ापे जवानी या बचपन में प्यास से ही मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को साँप से कटवा कर मार देता है; वह लाखों वर्ष तक अजगर के मुँह से दूसरे अजगर के मुँह में, और एक काले साँप के मुँह से दूसरे काले साँप के मुँह में पड़ कर उनसे काटा जाकर अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को विष देकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में ऐसे विष से मरता है, जिससे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जलने लगते हैं, शरीर कट-कटकर गिरने लगता है और शव की सी दुर्गन्ध आती है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को अग्नि से जलाकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक एक अग्निपर्वत से दूसरे अग्निपर्वत पर, तथा एक यमलोक से दूसरे यमलोक में ले जाया जाकर अग्नि से शरीर के जला भुना दिये जाने से मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को जल में डुबाकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक दुबला-पतला, रोगी और कमजोर, तथा चिन्ताओं में पड़ा रह....पानी में ही डूब कर मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को भाला या तीर चलाकर मारता है, वह लाखों वर्ष

सत्तिमुखसमाहितो सत्तिया येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"भन्ते नागसेन, 'अकाले मरणं अत्थी' ति यं वदेसि, इङ्घ मे त्वं तत्थ कारणं अतिदिसा" ति? "यथा, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो आदिन्नतिणकट्ठसाखापलासो परियादिन्नभक्खो उपादानसङ्खया निब्बायति, सो अग्गि वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये निब्बुतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'समये मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो आदिन्नतिणकट्ठसाखापलासो अस्स, तं अपरियादिन्ने येव तिणकट्ठसाखापलासे महतिमहामेघो अभिप्पवस्सित्वा निब्बापेय्य, अपि नु खो, महाराज, महाअग्गिक्खन्धो समये निब्बुतो नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो अग्गिक्खन्धो पुरिमेन अग्गिक्खन्धेन समसमगतिको नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, मेघेन पटिपीळितो सो अग्गिक्खन्धो असमये निब्बुतो" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा पित्तसमुट्ठानेन वा सेम्हसमुट्ठानेन वा सन्निपातिकेन वा उतुपरिणामजेन वा विसमपरिहारजेन वा ओपक्कमिकेन वा जिघच्छाय वा पिपासाय वा सप्पदट्ठेन वा विसमासितेन वा अग्गिना वा उदकेन वा सत्तिवेगप्पटिपीळितो अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन अकाले मरणं अत्थि।

"यथा वा पन, महाराज, गगने महतिमहावलाहको उट्ठहित्वा निन्नं च थलं च

तक काटा, मारा और पीटा जाकर भाले या तीर से ही विंध कर मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"भन्ते! जो आप कहते है कि 'अकालमृत्यु' होती है; उसे कृपया कारण देकर समझावें।" "महाराज! जैसे घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई अग्नि की विशाल राशि उन्हें जलाकर समाप्त कर देने के बाद ही बुझती है। लोग कहते हैं कि वह अग्नि विना किसी विघ्न–बाधा के अपने पूरे समय तक जलने के बाद बुझी; महाराज! इसी तरह जो हजारों दिन तक जीवित रह कर वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद विना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, तो उसकी यह मृत्यु 'समय पाकर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई कोई विशाल अग्नि की राशि हो। उसके जल कर समाप्त होने के पहले ही अत्यधिक जल पड़ने लगे जिससे अग्नि बुझ कर ठंढी हो जाय। महाराज! तो क्या आप कहेंगे कि वह अग्नि अपने समय को पा कर ही बुझी?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! वह भी पहली अग्नि की बराबर हो क्यों नहीं कहीं जाती?" "भन्ते! बीच ही मे मेघ बरस जाने से वह अग्नि असमय बुझ गयी।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, पित्त के बिगड़ जाने, कफ बढ़ जाने, सन्निपात हो जाने, ऋतु बिगड़ जाने, भोजन में गड़बड़ होने, किसी दुर्घटना, भूख, प्यास, साँप के काटने, विष दिये जाने, अग्नि में पड़ जाने, पानी में डूब जाने या तीर–भाला लग जाने से अकाल में ही मर जाता है; महाराज! इसी तरह अकालमृत्यु होती है।

परिपूरयन्तो अभिवस्सति, सो वुच्चति—'मेघो अनीतिको अनुपद्दवो वस्सती' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'समये मरणमुपगतो' ति।

''यथा वा पन, महाराज, गगने महतिमहावलाहको उट्ठहित्वा अन्तरायेव महता वातेन अब्भत्थं गच्छेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, महावलाहको समये विगतो नाम होती'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो वलाहको पुरिमकेन वलाहकेन समसमगतिको नाहोसी'' ति? ''आगन्तुकेन, भन्ते, वातेन पटिपीळितो सो वलाहको असमयप्पत्तो येव विगतो'' ति।''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा ....पे०.... सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''यथा वा पन, महाराज, बलवा आसीविसो कुपितो कञ्चिदेव पुरिसं डंसेय्य, तस्स तं विसं अनीतिकं अनुपद्दवं मरणं पापेय्य, तं विसं वुच्चति—'अनीतिकमनुपद्दवं कोटिगतं' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो जीवितकोटिगतो सामयिकं मरणमुपगतो' ति।

''यथा वा पन, महाराज, बलवता आसीविसेन दट्ठस्स अन्तरा येव अहितुण्डिको अगदं दत्वा अविसं करेय्य, अपि नु खो, महाराज, तं विसं समये विगतं नाम होती'' ति?''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन तं, महाराज, पच्छिमं विसं पुरिमेन विसेन समसमगतिकं

"महाराज! यदि कोई भारी मेघ उठ कर जमीन और गड्ढों को भरते हुए घनघोर वर्षा बरसावे, तो लोग कहते हैं कि वह मेघ विना किसी विघ्न–बाधा के खूब बरसा; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे आकाश में उठे भारी मेघ तेज हवा के आ जाने से झकोरे खा कर तितर बितर हो जाँय, तो क्या आप यह कहेंगे कि वह मेघ समय पा कर नष्ट हुआ?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! पहला मेघ पिछले मेघ के बराबर ही क्यों नहीं समझा जाता?" "भन्ते! अकस्मात् हवा के चल जाने से वह मेघ बिना समय पाये ही उड़ गया।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, पित्त के बिगड़ जाने, कफ बढ़ जाने, सन्निपात हो जाने, ऋतु बिगड़ जाने, भोजन में गड़बड़ होने, किसी दुर्घटना, भूख, प्यास, साँप के काटने, विष दिये जाने, अग्नि में पड़ जाने, पानी में डूब जाने या तीर–भाला लग जाने से अकाल में ही मर जाता है; महाराज! इसी तरह अकालमृत्यु होती है।

"महाराज! जैसे कोई क्रुद्ध जहरीला साँप किसी आदमी को काट दे। वह विष विना किसी बाधा के फैल जाय और उसे मार दे। तो लोग कहेंगे कि उस विष ने विना किसी बाधा के अपना काम कर ही डाला; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है तो उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे कोई क्रुद्ध जहरीला सर्प किसी आदमी को काट तो दे; किन्तु कोई सँपेरा आ कर उस विष को झाड़ दें। महाराज! तो क्या आप कहेंगे विष अपना काम कर के ही हटा?" "नहीं,

नाहोसी'' ति ? ''आगन्तुकेन, भन्ते, अगदेन पटिपीळितं विसं अकोटिगतं येव विगतं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा.... पे०.... सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''यथा वा पन, महाराज, इस्सासो सरं पातेय्य, सचे सो सरो यथागतिगमनपथमत्थकं गच्छति, सो सरो वुच्चति—'अनीतिको अनुपद्दवो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

''यथा वा पन, महाराज, इस्सासो सरं पातेय्य, तस्स तं सरं तस्मिं येव खणे कोचि गण्हेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, सरो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नाम होती'' ति ? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो सरो पुरिमेन सरेन समसमगतिको नाहोसी'' ति ? ''आगन्तुकेन, भन्ते नागसेन, गहणेन तस्स सरस्स गमनं उपच्छिन्नं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा...पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''यथा वा पन, महाराज, यो कोचि लोहमयं भाजनं आकोटेय्य, तस्स आकोटनेन सद्दो निब्बत्तित्वा यथागतिगमनपथमत्थकं गच्छति, सो सद्दो वुच्चति—'अनीतिको अनुपद्दवो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सा वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

भन्ते!'' ''महाराज! यह पिछला विष पहले विष के बराबर ही क्यों नहीं हुआ?'' ''भन्ते! यह विष तो चढ़ने के पहले ही आये हुए सँपेरे द्वारा झाड़ दिया गया।'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकाल मृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकाल मृत्यु' होती है।

''महाराज! जैसे कोई धनुर्धारी बाण चलावे। यदि वह वाण ठीक लक्ष्य पर जा कर लग जाय तो लोग कहेंगे कि वह विना किसी बाधा के ठीक अपने लक्ष्य पर पहुँच गया; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के विना मरता है, तो उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

''महाराज! जैसे कोई धनुर्धारी तीर चलावे, किन्तु बीच में ही कोई दूसरा उसे काट कर गिरा दे; तो क्या आप कहेंगे कि वह तीर विना किसी रुकावट या बाधा के ठीक अपने लक्ष्य तक पहुँच गया?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! पिछला तीर पहले के समान ही क्यों नहीं समझा गया?'' ''भन्ते! उसे तो किसी ने बीच ही में गिरा दिया।'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकाल मृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु वा पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

''महाराज! जैसे कोई लोहे का पात्र पीटे। उससे ध्वनि निकल कर पूरी दूर तक जाय तो लोग कहेंगे कि उसकी आवाज बिना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गयी। महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध.... 'समय पा कर हुई कही जाती है।

"यथा वा पन, महाराज, यो कोचि लोहमयं भाजनं आकोटेय्य, तस्स सद्दो निब्बत्तेय्य; निब्बत्ते सद्दे अदूरगते कोचि आमसेय्य, सह आमसनेन सद्दो निरुज्झेय्य; अपि नु खो सो, महाराज, सद्दो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन, महाराज, पच्छिमो सद्दो पुरिमेन सद्देन समसमगतिको नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, आमसनेन सो सद्दो उपरतो" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा ....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

"यथा वा पन, महाराज, खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं सम्मा पवत्तमानेन वस्सेन ओततविततआकिण्णबहुफलं हुत्वा सस्सुट्ठानसमयं पापुणाति, तं धञ्ञं वुच्चति— 'अनीतिकमनुपद्दवं समयप्पत्तं नाम होती" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं उदकेन विकलं मरेय्य, अपि नु खो तं, महाराज, धञ्ञं समयसम्पत्तं नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन तं, महाराज, पच्छिमं धञ्ञं पुरिमेन धञ्ञेन समसमगतिकं नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, उण्हेन पटिपीळितं तं धञ्ञं मतं" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन अकाले मरणं अत्थी ति।

"सुतपुब्बं तया, महाराज— 'सम्पन्नं तरुणसस्सं किमयो उट्ठहित्वा समूलं नासेन्ती" ति? "सुतपुब्बं चेव तं, भन्ते नागसेन, अम्हेहि दिट्ठपुब्बं चा" ति। "किं नु खो तं, महाराज,

---

"महाराज! जैसे कोई लोहे का पात्र पीटे। किन्तु, उसकी ध्वनि निकलते ही कोई आ कर उसे (पात्र को) पकड़ ले, जिससे वह तत्काल बन्द हो जाय। तो क्या आप कहेंगे कि उसकी ध्वनि विना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गयी?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! वह पिछली आवाज पहली ध्वनि के समान ही क्यों नहीं कही जाती?" "भन्ते! बीच में किसी के द्वारा आकर पात्र पकड़ लेने से ध्वनि बन्द हो गयी।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु वा पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

"महाराज! जैसे खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान समय पर जल बरसने से फैल–फैल कर घनी बालियों से लद जाता है और कटने के समय तक पूरा तैयार हो जाता है। तब लोग कहते हैं कि यह फसल विना किसी विघ्न–बाधा के अच्छी हुई; महाराज! इसी तरह जो पूर्ण वृद्ध उसकी मृत्यु 'समय पाकर हुई' कही जाती है।

"महाराज! यदि खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान जल के विना सूख कर मर जाय तो क्या आप कहेंगे कि उपज अच्छी हुई?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! पिछली उपज पहली के बराबर ही क्यों नहीं कही जाती?" "भन्ते! वह तो बीच ही में गर्मी से ही सूख गई।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह सहसा या तो वायु वा पित्त बिगड़ जाने से...अकाल ही में मर जाता है।

"महाराज! क्या आप ने सुना है कि हरा–भरा धान कीड़े लग जाने से सर्वथा नष्ट हो जाता

सस्सं काले नट्ठं उदाहु अकाले नट्ठं'' ति? ''अकाले, भन्ते ति। यदि खो तं, भन्ते, सस्सं किमयो न खादेय्युं सस्सुद्धरणसमयं पापुणेय्या'' ति। ''किं पन, महाराज, आगन्तुकेन उपघातकेन सस्सं विनस्सति, निरुपघातं सस्सं सस्सुद्धरणसमयं पापुणाती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''सुतपुब्बं पन तया, महाराज—'सम्पन्ने सस्से फलभारनमिते मञ्जरितपत्ते करकवस्सं नाम वस्सजाति निपतित्वा विनासेति अफलं करोती'' ति? ''सुतपुब्बं चेव, भन्ते, अम्हेहि दिट्ठपुब्बं चा'' ति। ''अपि नु खो, महाराज, तं सस्सं काले नट्ठं, उदाहु अकाले नट्ठं'' ति? ''अकाले, भन्ते। यदि खो तं, भन्ते; सस्सं करकवस्सं न वस्सेय्य सस्सुद्धरणसमयं पापुणेय्या'' ति। ''किं पुन, महाराज, आगन्तुकेन उपघातेन सस्सं विनस्सति, निरुपघातं सस्सं सस्सुद्धरणसमयं पापुणाती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा पित्तसमुट्ठानेन वा सेम्हसमुट्ठानेन वा सन्निपातिकेन वा उतुपरिणामजेन वा विसमपरिहारजेन वा ओपक्कमिकेन वा जिघच्छाय वा पिपासाय वा सप्पदट्ठेन वा विसमासितेन वा अग्गिना वा उदकेन वा सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। यदि पन आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो न भवेय्य, समये येव मरणं पापुणेय्य। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं भन्ते नागसेन! सुदस्सितं कारणं, सुदस्सितं ओपम्मं अकाले मरणस्स परिदीपनाय। 'अत्थि अकाले मरणं' ति उत्तानीकतं पाकटं कतं

है?'' ''हाँ, भन्ते! सुना भी है और देखा भी है।'' ''महाराज! तो क्या वह धान काल में नष्ट हुआ या अकाल में?'' ''भन्ते! अकाल में; यदि उसमें कीड़े न लगते तो कटने तक अच्छा तैयार हो जाता।'' ''महाराज! इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है न कि विना किसी बाधा के खेती अच्छी होती है और बीच में कुछ दुर्घटना हो जाने पर वह नष्ट हो जाती है!'' ''हाँ, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त ....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

''महाराज! क्या आपने सुना है कि खेती तैयार हो जाने और बालियों के भार से झुक जाने पर भी उपलवृष्टि उसे नष्ट कर देती है?'' ''हाँ भन्ते! सुना भी है और देखा भी है।'' ''महाराज! तो क्या वह धान काल में मरा या अकाल में?'' ''भन्ते! अकाल में मरा। यदि ओले की वर्षा न होती तो कटने तक खेती अच्छी तैयार हो जाती।'' ''महाराज! इससे तो यही न निष्कर्ष निकलता है कि विना किसी विघ्न-बाधा के आये हुए खेती अच्छी होती है, और बीच में कुछ दुर्घटना के हो जाने पर वह नष्ट हो जाती है।'' ''हाँ, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त बिगड़ जाने से....अकाल ही में मर जाता है। यदि ये बातें बीच में न हो तो 'समय पाकर ही मृत्यु' होगी।

''भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है! आपने (मृत्यु के) कारणों को अच्छी तरह दिखाया। 'अकालमृत्यु होती है'— इसे सिद्ध करने के लिये कितनी उपमाएँ देकर अकालमृत्यु होती है इसे स्पष्ट कर दिया, प्रकट कर दिया और दृढ़ कर दिया। भन्ते नागसेन! कोई क्षिप्त या दुर्बुद्धि भी आप की एक ही उपमा से मान लेगा कि अकालमृत्यु होती है। बुद्धिमानों की तो बात ही क्या! आपकी पहली ही उपमा

विभूतिं कतं। अचित्तविक्खित्तको पि, भन्ते नागसेन, एकमेकेन पि ताव ओपम्मेन निट्ठं गच्छेय्य— 'अत्थि अकाले मरणं' ति, किं पन मनुजो सचेतनो! पठमोपम्मेनेवाहं, भन्ते, सञ्ञत्तो— 'अत्थि अकाले मरणं' ति। अपि च अपरापरं निब्बाहनं सोतुकामो न सम्पटिच्छि'' ति।

७. चेतियपाटिहारियपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, सब्बेसं परिनिब्बुतानं चेतिये पाटिहीरं होति, उदाहु एकच्चानं येव होती'' ति?

१४. ''एकच्चानं, महाराज, होति, एकच्चानं न होती'' ति। ''कतमेसं, भन्ते, होति, कतमेसं न होती'' ति? ''तिण्णन्नं, महाराज, अञ्ञतरस्स अधिट्ठाना परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। कतमेसं तिण्णन्नं? इध, महाराज, अरहा देवमनुस्सानं अनुकम्पाय तिट्ठन्तो अधिट्ठाति— 'एवं नाम चेतिये पाटिहीरं होतू' ति, तस्स अधिट्ठानवसेन चेतिये पाटिहीरं होति। एवं अरहतो अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (१)

''पुन च परं, महाराज, देवता मनुस्सानं अनुकम्पाय परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं दस्सेन्ति— 'इमिना पाटिहीरेन सद्धम्मो निच्चसम्पग्गहितो भविस्सति, मनुस्सा च पसन्ना कुसलेन अभिवड्ढिस्सन्ती' ति। एवं देवतानं अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (२)

''पुन च, महाराज, इत्थी वा पुरिसो वा सद्धो पसन्नो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी बुद्धिसम्पन्नो योनिसो चिन्तयित्वा गन्धं वा मालं वा दुस्सं वा अञ्ञतरं वा किञ्चि अधिट्ठहित्वा चेतिये उक्खिपति— 'एवं नाम होतू' ति। तस्स पि अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। एवं मनुस्सानं अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (३)

सुन कर मैं समझ गया था कि अकालमृत्यु होती है तो भी, आपकी दूसरी दूसरी बातों को सुनने के लिये मैं उत्सुक था, उसी से नहीं रुका।"

७. चैत्यअलौकिकताविषयकप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! निर्वाण पाये हुये सभी सन्तों के चैत्य (साधु-सन्तों के मृत शरीर की अस्थि-भस्म पर बनाया जाने वाला समाधि-गृह) में अलौकिक बातें होती हैं या कुछ के ही चैत्य में?"

१४. "महाराज! किसी के चैत्य में होती हैं और किसी के चैत्य में नहीं।" "भन्ते! किनके चैत्य में होती है और किनके चैत्य में नहीं?" "महाराज! तीन में से किसी एक का अधिष्ठान (अध्यास) करने से निर्वाण प्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं।" "किन तीन में से एक का अधिष्ठान करने से?" "महाराज! कोई अर्हत् अपने जीते जी देवताओं और मनुष्यों पर अनुकम्पा करके यह अधिष्ठान कर दे कि 'मेरे इस चैत्य में अलौकिक बातें हों', ऐसा अधिष्ठान करने से उसके चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। इस तरह, अर्हत् के अधिष्ठान करने से निर्वाणप्राप्त साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (१)

"महाराज! देवता लोग मनुष्यों पर अनुकम्पा करके निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें दिखाते हैं, जिससे कि उन चमत्कारों को देखकर लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा बनी रहे; और उस तरह मनुष्य श्रद्धालु हो कर अधिकाधिक पुण्य करे; इस तरह देवताओं के अधिष्ठान से निर्वाण प्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (२)

"महाराज! कोई श्रद्धालु भक्त, पण्डित, विवेकी और बुद्धिमान् स्त्री या पुरुष को सच्चे भाव से

"इमेसं खो, महाराज, तिण्णन्नं अञ्ञतरस्स अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति।

"यदि, महाराज, तेसं अधिट्ठानं न होति, खीणासवस्स पि छळभिञ्ञस्स चेतोवसिप्पत्तस्स चेतिये पाटिहीरं न होति। असति पि, महाराज, पाटिहीरे चरितं दिस्वा सुपरिसुद्धं ओकप्पेतब्बं निट्ठं गन्तब्बं सद्दहितब्बं— 'सुपरिनिब्बुतो अयं बुद्धपुत्तो' " ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

८. धम्माभिसमयपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, ये ते सम्मा पटिपज्जन्ति तेसं सब्बेसं येव धम्माभिसमयो होति, उदाहु कस्सचि न होती" ति? "कस्सचि, महाराज, होति, कस्सचि न होती" ति। "कस्स, भन्ते, होति, कस्स न होती" ति?

१६. "तिरच्छानगतस्स, महाराज, सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति, पेत्तिविसयूपपन्नस्स....मिच्छादिट्ठिकस्स....कुहकस्स....मातुघातकस्स....पितुघातकस्स.... अरहन्तघातकस्स.... सङ्घभेदकस्स.... लोहितुप्पादकस्स.... थेय्यसंवासकस्स....तित्थियपक्कन्तस्स.... भिक्खुनिदूसकस्स.... तेरसन्नं गरुकापत्तीनं अञ्ञतरं आपज्जित्वा अवुट्ठितस्स....पण्डकस्स.... उभतोब्यञ्जनकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। यो पि मनुस्सदहरको ऊनकसत्तवस्सिको, तस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। इमेसं खो, महाराज, सोळसन्नं पुग्गलानं सुप्पटिपन्नानं पि धम्माभिसमयो न होती" ति।

गन्ध, माला, वस्त्र या कोई दूसरी चीज चढ़ा कर 'ऐसा हो' यह अधिष्ठान करने से ठीक वैसा ही हो जाता है, इस तरह मनुष्यों के अधिष्ठान करने से भी निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (३)

"महाराज! इन्हीं तीनों में से किसी एक का अधिष्ठान करने से भी निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिकता होती है।

"महाराज! यदि उनका अधिष्ठान न हो तो क्षीणास्रव, छह अभिज्ञाओं को पाने वाले तथा चित्त को पूर्णतः वश में करने वाले सन्त के भी चैत्य में अलौकिक बातें नहीं होती। महाराज! यदि कोई अलौकिक बात न हो तो भी, उनका पवित्र जीवन दृष्टि में रख कर, उस चैत्य के पास जाना चाहिये और इस बात को गौरव के साथ मन में लाना चाहिये कि 'यह बुद्धपुत्र निर्वाण पा चुका है'।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! यह ऐसी ही बात है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

८. धर्माभिसमयप्रश्न— १५. "भन्ते नागसेन! क्या सत्यमार्ग पर चलने वाले सभी को ज्ञान का साक्षात्कार (धर्माभिसमय) हो जाता है या किसी को भी नहीं होता?" "महाराज! किसी को होता है और किसी को नहीं।" "भन्ते! किसको होता है और किसको नहीं?"

१६. "महाराज! १. पशु आदि नीच योनि में उत्पन्न हुए व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता, २. प्रेत योनि में उत्पन्न हुए, ३. झूठे सिद्धान्त को मानने वाले, ४. उलटे सीधे दूसरों को ठगने वाले, ५. माता के हत्यारे, ६. पिता के हत्यारे, ७. अर्हत् के हत्यारे, ८. सङ्घ में फूट पैदा करने वाले, ९. बुद्ध–शरीर से रक्त बहाने वाले, १०. चोरी से सङ्घ में प्रविष्ट होने वाले, ११. झूठे मत के आचार्यों का मत ग्रहण करने वाले, १२. भिक्षुणी के साथ व्यभिचार करने वाले, १३. तेरह बड़े पापों में से किसी को भी करके उसका प्रायश्चित्त न करने वाले, १४. नपुंसक (हिजड़े), १५. उभतोव्यञ्जक (= स्त्री और पुरुष दोनों लिङ्ग वाले) का सन्मार्ग पर चलने पर भी और १६. सात वर्ष से नीचे की आयु के

"भन्ते नागसेन, ये ते पन्नरस पुग्गला विरुद्धा येव, तेसं अभिसमयो होतु वा मा वा होतु, अथ केन कारणेन मनुस्सदहरकस्स ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति? एत्थ ताव पञ्हो भवति— 'ननु नाम दहरकस्स न रागो होति, न दोसो होति, न मोहो होति, न मानो होति, न मिच्छादिट्ठि होति, न अरति होति, न कामवितक्को होति, अमिस्सितो किलेसेहि सो नाम दहरको युत्तो च पत्तो च, अरहति च चत्तारि सच्चानि एकपटिविधेन पटिविज्झितुं'' ति?

"तं येवेत्थ, महाराज, कारणं, येनाहं कारणेन भणामि— 'ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती' ति। यदि, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स रजनीये रज्जेय्य, दुस्सनीये दुस्सेय्य, मोहनीये मुय्हेय्य, मदनीये मज्जेय्य, दिट्ठिं विजानेय्य, रतिं च अरतिं च विजानेय्य, कुसलाकुसलं वितक्केय्य, भवेय्य तस्स धम्माभिसमयो। अपि च, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चरितं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु गरुका भारिका विपुला महती। ऊनसत्तवस्सिको, महाराज, तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति गरुकं भारिकं विपुलं महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं। (१)

"यथा, महाराज, सिनेरुपब्बतराजा गरुको भारिको विपुलो महन्तो, अपि नु खो तं, महाराज, पुरिसो अत्तनो पाकतिकेन थामबलवीरियेन सक्कुणेय्य सिनेरुपब्बतराजं उद्धरितुं'' ति? '' न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''दुब्बलत्ता, भन्ते, पुरिसस्स,

---

बच्चे को भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता। महाराज! इन सोलह लोगों को सन्मार्ग पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता।"

"भन्ते नागसेन! ऊपर कहे गये पहले पन्द्रह लोगों को ज्ञान का साक्षात्कार हो या न हो (उसके विषय में मैं नहीं कहता), किन्तु इसका क्या कारण है कि सात वर्ष के नीचे के बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता? यहाँ सन्देह खड़ा होता है। बच्चे को तो राग, द्वेष, मोह, मान, झूठा सिद्धान्त, असन्तोष और कामवितर्क नहीं होते। यह लोकसम्मत बात ही है। बच्चा तो निष्पाप रहता है, वह तो एक ही बार में चार आर्यसत्यों की भीतरी बातों को पूरी तरह समझ सकता है।"

"महाराज! इसी से मैं कहता हूँ कि सात वर्ष से छोटे बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता। महाराज! यदि सात वर्ष से छोटे बच्चे को राग करने के विषयों में राग होता, द्वेष करने की जगहों में द्वेष होता, मोह लेने वाले पदार्थ मोह लेते, मद उत्पन्न करने वाली चीजें मद उत्पन्न कर देतीं, झूठे सिद्धान्त उसको धोखा दे पाते, सन्तोष और असन्तोष होता या पाप और पुण्य का ध्यान रहता, तब तो उसे ज्ञान का साक्षात्कार हो सकता था। महाराज! किन्तु सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त निर्बल, दुर्बल अल्प... मन्द और निर्बुद्धि रहता है; और निर्गुण निर्वाण, जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता, गम्भीर और महान् है। महाराज! तो वह निर्बल, दुर्बल, अल्प.... मन्द और निर्बुद्धि चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो गम्भीर और महान् है, जो कि शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।

"महाराज! जैसे सुमेरु पर्वतराज बड़ा है, भारी है, विशाल है और महान् है। महाराज! तो क्या उस सुमेरु पर्वत को कोई भी अपनी प्राकृतिक शक्ति से उखाड़ सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "क्यों नहीं?"

महन्तत्ता सिनेरुपब्बतराजस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु गरुका भारिका विपुला महता; ऊनसत्तवस्सिको तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति गुरुकं भारिकं विपुलं महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। (२)

''यथा वा पन, महाराज, अयं महापठवी दीघा आयता पुथुला वित्थता विसाला वित्थिण्णा विपुला महन्ता, अपि नु खो तं, महाराज, महापठविं सक्का परित्तकेन उदकबिन्दुकेन तेमेत्वा उदकचिक्खल्लं कातुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तत्ता, भन्ते, उदकबिन्दुस्स, महन्तत्ता महापठविया'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु दीघा आयता पुथुला वित्थता विसाला वित्थिण्णा विपुला महन्ता। ऊनसत्तवस्सिको तेन दुब्बलेन चित्ते परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। (३)

''यथा वा पन, महाराज, अबलदुब्बलपरित्तअप्पथोकमन्दग्गि भवेय्य, अपि नु खो, महाराज, तावतकेन मन्देन अग्गिना सक्का सदेवके लोके अन्धकारं विधमित्वा आलोकं दस्सेतुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''मन्दत्ता, भन्ते, अग्गिस्स, लोकस्स महन्तत्ता'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, महता च अविज्जन्धकारेन पिहितं, तस्मा दुक्करं ञाणालोकं दस्सयितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तकवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती ति।(४)

''यथा वा पन, महाराज, आतुरो किसो अणुपरिमितकायो सालककिमि हत्थिनागं तिधाप्पभिन्नं नवायतं तिवित्थतं दसपरिणाहं अट्ठरतनिकं सकट्ठानमुपगतं दिस्वा गिलितुं

''भन्ते! क्योंकि वह आदमी इतना कम शक्तिवाला है और सुमेरु पर्वत इतना महान् है। महाराज! इसी तरह, सात वर्ष के नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, अल्प....मन्द और बुद्धिहीन होता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता गुरु और महान् है। महाराज! तो वह निर्बल, दुर्बल, अल्प ... मन्द और निर्बुद्धि चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता, जो गुरु और महान् है तथा जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।

''महाराज! जैसे यह महापृथ्वी लम्बी, चौड़ी, विस्तृत, विशाल, विपुल और महान् है। महाराज! क्या इस महापृथ्वी को जल की एक छोटी बूँद से सींचकर कीचड़–कीचड़ किया जा सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' क्यों नहीं? भन्ते! क्योंकि पानी की बूँद इतनी छोटी और पृथ्वी अधिक विशाल है। महाराज! इसी तरह, सात वर्ष के बच्चे का चित्त अल्प....।

''महाराज! जैसे कहीं थोड़ा सा छोटासा टिमटिमाता अग्नि–कण हो तो क्या उस थोड़े से छोटे टिमटिमाते अग्नि–कण से देवताओं और मनुष्यों के साथ यह सारा लोक प्रकाशित किया जा सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्यों नहीं?'' ''भन्ते! क्योंकि अग्नि अल्प है और लोक बड़ा।'' ''महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से छोटे बच्चे का चित्त....।''

''महाराज! जैसे सालक जाति का एक, दुर्बल और सर्वथा छोटा रोगी कीड़ा हो। क्या वह कीड़ा

परिकड्ढेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, सालककिमि सक्कुणेय्य तं हत्थिनागं गिलितुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तता, भन्ते, सालककिमिस्स, महन्तता हत्थिनागस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, महती असङ्खता निब्बानधातु; सो तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती'' ति। (५)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

९. एकन्तसुखनिब्बानपञ्हो

१७. ''भन्ते नागसेन, किं एकन्तसुखं निब्बानं, उदाहु दुक्खेन मिस्सं'' ति। ''एकन्तसुखं, महाराज, निब्बानं दुक्खेन अमिस्सं'' ति। ''न मयं तं, भन्ते नागसेन, वचनं सद्दहाम– 'एकन्तसुखं निब्बानं' ति। एवमेत्थ मयं, भन्ते नागसेन, पच्चेम– 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' ति। कारणमेत्थ उपलभाम– 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' ति। कतमं एत्थ कारणं? ये ते, भन्ते नागसेन, निब्बानं परियेसन्ति, तेसं दिस्सति कायस्स च चित्तस्स च आतापो परितापो, ठानचङ्कम-निसज्जासयनाहारपरिग्गहो, मिद्धस्स च उपरोधो, आयतनानं च पटिपीळनं, धनधञ्ञ-पियञातिमित्तप्पजहनं। ये केचि लोके सुखिता सुखसमप्पिता, ते सब्बे पि पञ्चहि कामगुणेहि आयतने रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकबहुविधसुखनिमित्तेन रूपेन चक्खुं रमेन्ति ब्रूहेन्ति,

---

अपने बिल के पास तीन स्थानों से मद चूते हुये, नौ हाथ लम्बे, तीन हाथ चौड़े, दस हाथ मोटे, आठ रत्न ऊँचे किसी हस्तिराज को आया देखकर उसे निगल जाने के लिये बाहर आयगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्यों नहीं?'' ''क्योंकि भन्ते! सालक कीड़ा छोटा जीव है और हस्तिराज महान् है।'' ''महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त.... महान् है, जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता। महाराज! इसीलिये, सन्मार्ग पर चलते रहने पर भी सात वर्ष से छोटे बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं यह बात समझ गया।''

९. एकान्तसुखमयनिर्वाणविषयकप्रश्न– १७. ''भन्ते नागसेन! क्या निर्वाण में सुख ही सुख है या कुछ दुःख भी होता है?'' ''महाराज! निर्वाण में सुख ही सुख है, दुःख का लेश भी नहीं रहता।'' ''भन्ते नागसेन! इस बात को हम नहीं मान सकते कि निर्वाण में सुख ही सुख है, दुःख का लेश भी नहीं रहता। भन्ते नागसेन! मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि निर्वाण में भी अवश्य कुछ न कुछ दुःख लगा ही रहता है। 'निर्वाण में भी अवश्य कुछ न कुछ दुःख लगा रहता है'– इसके लिये मेरे पास एक युक्ति है। कौन सी युक्ति? भन्ते नागसेन! जो निर्वाण की खोज करते हैं, वह शरीर और मन दोनों से तप करते देखे जाते हैं। वे खड़े चंक्रमण करते या आसन लगाये बैठे रहते हैं, पड़े रहते हैं, भोजन में बहुत संयम रखते हैं, निद्रा पर निग्रह करते हैं, इन्द्रियों को दबा देते हैं तथा अपने धन–धान्य, प्रिय बन्धु–बान्धव और मित्रों से नाता तोड़ लेते हैं। किन्तु जो सुख उठाने तथा विलासमय जीवन बिताने वाले लोग हैं वे पाँचों इन्द्रियों से संसार में भोग करते हैं और मस्त रहते हैं; अनेक प्रकार के अभिलषित सौन्दर्य को आँखों से देख कर भोग करते हैं; अनेक प्रकार के अभीष्ट गीत–वाद्य को कान से सुन कर उसका स्वाद चखते हैं; अनेक प्रकार के मनचाहे गीत फूल, फल, पत्ते, छाल, जड़ या हीर के इत्र या गन्ध को नाक से सूँघ कर प्रसन्न होते हैं; अनेक प्रकार की मनचाही, चिकनी, बारीक, कोमल और मृदु वस्तुओं के स्पर्श का सुख लेते हैं; अनेक प्रकार के मनचाहे अच्छे–बुरे या पाप पुण्य के ध्यान से मन ही मन प्रसन्न रहते हैं,

मनापिकमनापिकगीतवादितबहुविधसुभनिमित्तेन सद्देन सोतं रमेन्ति ब्रूहन्ति, मनापिकमनापिक-पुप्फफलपत्ततचमूलसारबहुविधसुभनिमित्तेन गन्धेन घानं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिक-खज्जभोज्जलेय्हपेय्यसायनीयबहुविधसुभनिमित्तेन रसेन जिव्हं रमेन्ति ब्रूहन्ति, मनापिकमनापिक-सण्हसुखुममुदुमद्दवबहुविधसुभनिमित्तेन फस्सेन कायं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिक-कल्याणपापकसुभासुभबहुविधवितक्कमनसिकारेन मनं रमेन्ति ब्रूहेन्ति। तुम्हे तं चक्खुसोत-घानजिव्हाकायमनाब्रूहनं हनथ उपहनथ छिन्दथ उपच्छिन्दथ रुन्धथ उपरुन्धथ, तेन कायो पि परितप्पति, चित्तं पि परितप्पति, काये परितत्ते कायिकं दुक्खं वेदनं वेदियति, चित्ते परितत्ते चेतसिकं दुक्खं वेदनं वेदियति। ननु मागन्दियो पि परिब्बाजको भगवन्तं गरहमानो एवमाह— 'भूनहु समणो गोतमो' ति। *(म० नि०, मा० सु०)* इदमेत्थ, भन्ते, कारणं, येनाहं कारणेन ब्रूमि— 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' '' ति।

१८. ''न हि, महाराज, निब्बानं दुक्खेन मिस्सं, एकन्तसुखं निब्बानं। यं पन त्वं, महाराज, ब्रूसि— 'निब्बानं दुक्खं' ति, नेतं दुक्खं निब्बानं नाम। निब्बानस्स पन सच्छिकिरियाय पुब्बभागो एसो, निब्बानपरियेसनं एतं। एकन्तसुखं येव, महाराज, निब्बानं, न दुक्खेन मिस्सं। तत्थ कारणं वदामि। अत्थि, महाराज, राजूनं रज्जसुखं नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थि राजूनं रज्जसुखं'' ति। ''अपि नु खो तं, महाराज, रज्जसुखं दुक्खेन मिस्सं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, राजानो पच्चन्ते कुपिते तेसं पच्चन्तनिस्सितानं पटिसेधाय अमच्चेहि परिणायकेहि भटेहि बलत्थेहि परिवुता पवासं गन्त्वा डंसमकसवातातपपटिपीळिता समविसमे परिधावन्ति, महायुद्धं च करोन्ति, जीवितसंसयं च पापुणन्ती'' ति? ''नेतं, भन्ते

इसके विपरीत, आप लोग आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन की इच्छाओं को दबा देते हैं, काट देते हैं, उखाड़ देते हैं, रोक देते हैं और बन्द कर देते हैं, इससे शरीर को भी कष्ट होता है और मन को भी। शारीरिक दुःख भी होता है और मानसिक भी। मागन्दिय परिव्राजक ने भगवान् की निन्दा करते हुये कहा न था— 'श्रमण गौतम लोगों का प्राण निकाल लेने वाले हैं!' यही युक्ति है, जिसके बल पर मैं कहता हूँ कि निर्वाण भी दुःखसम्पृक्त है?"

१८. "नहीं, महाराज! निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। निर्वाण सुख ही सुख है। महाराज! जो आप कहते हैं कि निर्वाण में दुःख है, वह दुःख यथार्थतः निर्वाण में नहीं है। यह तो निर्वाण साक्षात् करने के पहले की बात है; यह तो निर्वाण की खोज करने की अवस्था है। महाराज! सचमुच निर्वाण में सुख ही सुख है; निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। इसका कारण बताता हूँ— "महाराज! राजाओं को 'राज्यसुख' नाम की कोई चीज मिलती है?" "हाँ, भन्ते! राजाओं को राज्यसुख मिलता है।" "महाराज! राजाओं का वह राज्यसुख क्या दुःख से सम्पृक्त होता है।" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! जब कभी सीमान्त के लोगों के विद्रोही हो जाने पर उन्हें दबाने के लिये राजा अपना घर–बार छोड़कर अधिकारी, मन्त्री, सेना और सिपाही आदि के साथ मक्खी–मच्छर, हवा और गर्मी का दुःख झेलते हुए ऊँची और नीची भूमि पर आक्रमण कर बड़ा युद्ध छेड़ देते हैं, यहाँ तक कि अपने प्राणों को सङ्कट में डाल देते हैं?" "भन्ते नागसेन! यह राज्यसुख नहीं है। यह तो राज्यसुख पाने से पूर्व का प्रयास है। भन्ते नागसेन! बड़ी कठिनाई के बाद राजा राज्य पाता है और उसके सुख का भोग करता है। भन्ते नागसेन! इस तरह, राज्य–सुख अपने दुःख से मिला नहीं है। राज्यसुख दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी।" "महाराज! वैसे ही, निर्वाण में सुख ही सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं। जो उस निर्वाण की खोज करते

नागसेन, रज्जसुखं नाम, रज्जसुखस्स परियेसनाय पुब्बभागो एसो। दुक्खेन, भन्ते नागसेन, राजानो रज्जं परियेसित्वा रज्जसुखं अनुभवन्ति। एवं, भन्ते नागसेन, रज्जसुखं दुक्खेन अमिस्सं, अञ्ञं तं रज्जसुखं, अञ्ञं दुक्खं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं। ये पन ते निब्बानं परियेसन्ति कायं च चित्तं च आतापेत्वा ठानचङ्कमनिसज्जासयनाहारं परिग्गहेत्वा मिद्धं उपरुन्धित्वा आयतनानि पटिपीळेत्वा कायं च जीवितं च परिच्चजित्वा दुक्खेन निब्बानं परियेसित्वा एकन्तसुखं निब्बानं अनुभवन्ति, निहतपच्चामित्ता च राजानो रज्जसुखं। एवं, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं निब्बानं, अञ्ञं दुक्खं'' ति।

''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि— 'एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं दुक्खं, अञ्ञं निब्बानं' ति। अत्थि, महाराज, आचरियानं सिप्पवन्तानं सिप्पसुखं नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थि आचरियानं सिप्पवन्तानं सिप्पसुखं'' ति। ''अपि नु खो तं, महाराज, सिप्पसुखं दुक्खेन मिस्सं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, आचरियानं अभिवादनपच्चुट्ठानेन उदकाहरणघरसम्मज्जनदन्तकट्ठमुखोदकानुप्पदानेन उच्छिट्ठ-प्पटिग्गहणउच्छादननहापनपादपरिकम्मेन सकचित्तं निक्खिपित्वा परिचित्तानुवत्तनेन दुक्ख-सेय्याय विसमभोजनेन कायं आतापेन्ती'' ति? ''नेतं, भन्ते नागसेन, सिप्पसुखं नाम, सिप्पपरियेसनाय पुब्बभागो एसो। दुक्खेन, भन्ते नागसेन, आचरिया सिप्पं परियेसित्वा सिप्पसुखं अनुभवन्ति। एवं, भन्ते नागसेन, सिप्पसुखं दुक्खेन अमिस्सं, अञ्ञं तं सिप्पसुखं, अञ्ञं दुक्खं'' ति।

''एवमेव खो, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, ये पन तं निब्बानं

हैं, उन्हें शरीर और मन से तप करना ही होता है। उन्हें खड़े रहना, चंक्रमण करना, आसन लगाकर बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, निद्रा और इन्द्रियों पर निग्रह रखना, तथा अपने धन, धान्य, प्रिय, बन्धु–बान्धव और मित्रों से सम्बन्ध तोड़ लेना ही होता है। इतनी कठिनाई से निर्वाण पाकर वह सुख ही सुख पाते हैं। जैसे शत्रुओं का दमन करने के बाद ही राजा को राज्यसुख मिलता है, वैसे ही निर्वाण दूसरी ही चीज है और दु:ख दूसरी।''

''महाराज! एक और कारण सुनें कि 'निर्वाण सुख ही सुख है, उसमें दु:ख का लेश भी नहीं, दु:ख दूसरी चीज है और निर्वाण दूसरी।'' ''महाराज! बड़े–बड़े शिल्पियों को क्या अपनी कला में आनन्द आता है?'' ''हाँ, भन्ते! बड़े–बड़े शिल्पियों को अपनी कला में आनन्द आता है।'' ''महाराज! क्या वह सुख दु:खसम्पृक्त होता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! तो क्यों वे अपनी गुरु की सेवा में उठ कर स्वागत करते हैं? क्यों जल लाना, घर में झाड़ू लगाना, दतुवन लाना, मुँह धोने के लिये जल लाना इत्यादि सेवा करते हैं? क्यों उनका जूठा खाते हैं? क्यों उनका मलना, नहलाना और पैर रगड़ना करते हैं? अपनी इच्छा को छोड़ दूसरे की इच्छा से क्यों सब कार्य करते हैं? कठोर बिस्तर पर क्यों सोते हैं? रूखा सूखा खा कर अपना गुजारा क्यों कर लेते हैं?'' ''भन्ते नागसेन! कला का आनन्द यह नहीं है, कला सीखने के लिये ही ऐसा किया जाता है। भन्ते! शिल्पी बहुत कठिनाई से कला सीख कर उसका आनन्द लेता है। कला अपने दु:ख से सम्पृक्त नहीं है। कला दूसरी ही चीज है और दु:ख दूसरी।''

''महाराज! वैसे ही, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण में दु:ख का लेश भी नहीं हैं। जो उस निर्वाण की खोज करते हैं, उन्हें शरीर और मन का निग्रह करना ही होता है। उन्हें खड़े रहना, चंक्रमण

परियेसन्ति ते कायं च चित्तं च आतापेत्वा ठानचङ्कमनिसज्जासयनाहारं परिग्गहेत्वा मिद्धं उपरुन्धित्वा आयतनानि पटिपीळेत्वा कायं च जीवितं च परिच्चजित्वा दुक्खेन निब्बानं परियेसित्वा एकन्तसुखं निब्बानं अनुभवन्ति, आचरिया विय सिप्पसुखं। एवं, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं, न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं दुक्खं, अञ्ञं निब्बानं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं सम्पटिच्छामी'' ति।

१०. निब्बानरूपसण्ठानपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, 'निब्बानं, निब्बानं' ति यं वदेसि, सक्का पन तस्स निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति? ''अप्पटिभागं, महाराज, निब्बानं, न सक्का निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति: ''एतम्पाहं, भन्ते नागसेन, न सम्पटिच्छामि। यं अत्थिधम्मस्स निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा अपञ्ञापनं, कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति? ''होतु, महाराज, कारणेन तं सञ्ञापेस्सामि। अत्थि, महाराज, महासमुद्दो नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थेसो महासमुद्दो'' ति।

२०. ''सचे तं, महाराज, कोचि एवं पुच्छेय्य—'कित्तकं, महाराज, समुद्दस्स उदकं, कति पन ते सत्ता ये महासमुद्दे पटिवसन्ती' ति? एवं पुट्ठो त्वं, महाराज, किं ति तस्स व्याकरेय्यासी'' ति? ''सचे मं, भन्ते, कोचि एवं पुच्छेय्य—'कित्तकं, महाराज, महासमुद्दे उदकं, कति पन ते सत्ता ये महासमुद्दे पटिवसन्ती' ति, तमहं, भन्ते, एवं वदेय्यं—'अपुच्छितब्बं

करना, आसन लगाये बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, नींद और इन्द्रियाँ दबा कर रखना तथा अपने धन-धान्य, प्रिय, बन्धु-बान्धव और मित्रों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना ही होता है। इतनी कठिनाई के बाद निर्वाण पा कर सुख ही सुख उठाते हैं, जैसे शिल्पी कला में आनन्द लेता है। महाराज! इस तरह, निर्वाण एकान्ततः सुख ही सुख है। उसमें दुःख का लेश भी नहीं है। दुःख दूसरी चीज है और निर्वाण दूसरी।

"ठीक है, भन्ते! अब मैं ठीक-ठीक समझ गया।"

१०. निर्वाण के रूप-संस्थानविषयकप्रश्न– १९. "भन्ते नागसेन! आप जो यह 'निर्वाण' 'निर्वाण' कहते रहते हैं, वह है क्या? उपमा, व्याख्या, तर्क और कारणों के साथ क्या आप समझा सकते हैं कि निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार कैसे हैं?" "महाराज! निर्वाण में ऐसी कोई भी बात नहीं है। उपमा, व्याख्या, तर्क और कारणों के साथ निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार नहीं दिखाये जा सकते।" "भन्ते नागसेन! मैं यह नहीं मानता कि निर्वाण वर्तमान तो है, किन्तु उसके रूप, स्थान, काल या आकार न उपमा, न व्याख्या, न तर्क और न कारणों के साथ समझाये जा सकते हों। कृपा कर मुझे यह बात समझावें?" "बहुत अच्छा, महाराज! इसे मैं समझाता हूँ—महासमुद्र नाम की कोई वस्तु है क्या?" "हाँ, भन्ते! है। भला महासमुद्र को कौन नहीं जानता!"

२०. "महाराज! यदि कोई आप से पूछे– महाराज! भला यह तो बतावें कि समुद्र में कितना जल है? उन जीवों की क्या गणना है जो महासमुद्र में रहते हैं?– तो आप उसको क्या उत्तर देंगे?" "भन्ते नागसेन! यदि कोई मुझसे यह पूछे तो मैं यही कहूँगा– 'अरे भाई! तू मुझसे ऐसा प्रश्न पूछ रहा

मं त्वं, अम्भो पुरिस, पुच्छसि, नेसा पुच्छा केनचि पुच्छितब्बा, ठपनीयो एसो पञ्हो, अविभत्तो लोकक्खायिकेहि महासमुद्दो, न सक्का महासमुद्दे उदकं परिमिनितुं, सत्ता वा ये तत्थ वासमुपगता' ति एवाहं, भन्ते, तस्स पटिवचनं ददेय्यं'' ति!

''किस्स पन त्वं, महाराज, अत्थिधम्मे महासमुद्दे एवं पटिवचनं ददेय्यासि, ननु विगणेत्वा तस्स आचिक्खितब्बं— 'एत्तकं महासमुद्दे उदकं, एत्तका च सत्ता महासमुद्दे पटिवसन्ती' '' ति। ''न सक्का, भन्ते; अविसयो एसो पञ्हो'' ति।

''यथा, महाराज, अत्थिधम्मे येव महासमुद्दे न सक्का उदकं परिगणेतुं, सत्ता वा ये तत्थ वासमुपगता; एवमेव खो, महाराज, अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं। विगणेय्य, महाराज, इद्धिया चेतोवसिप्पत्तो महासमुद्दे उदकं तत्रासये च सत्ते, न त्वेव सो इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो सक्कुणेय्य निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं।

''अपरं पि, महाराज, उत्तरि कारणं सुणोहि— अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितु ति। अत्थि, महाराज, देवेसु अरूपकायिका नाम देवा'' ति?'' आम, भन्ते, सूयति— 'अत्थि देवेसु अरूपकायिका नाम देवा' '' ति। ''सक्का पन, महाराज, तेसं अरूपकायिकानं देवानं रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति?''न हि, भन्ते ति।''तेन हि, महाराज, नत्थि अरूपकायिका देवा'' ति?''अत्थि, भन्ते, अरूपकायिका देवा, न च सक्का तेसं रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा

है जो पूछा ही नहीं जाना चाहिये, यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं, इस प्रश्न को छोड़ देना चाहिये। भूशास्त्रवेत्ताओं ने भी इस पर विचार नहीं किया। महासमुद्र में कितना जल है, भला इसकी कौन गणना कर सकता है! भला यह कौन गिन सकता है कि उसमें कितने जीव रहते हैं'!''

''महाराज! समुद्र के वर्तमान रहने पर भी आप ऐसा उत्तर क्यों देंगे, आप को तो गणना कर ठीक–ठीक उसे बता देना चाहिये कि 'महासमुद्र में इतना जल है और इतने जीव रहते हैं'।'' ''भन्ते! यह असम्भव बात है। इस प्रश्न को उठाने का कोई प्रयोजन ही नहीं।''

''महाराज! जैसे समुद्र के रहने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें कितना जल है या कितने जीव रहते हैं; वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमायें दिखाकर व्याख्या करके तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते। महाराज! चित्त वश में रखने वाला कोई ऋद्धिमान् पुरुष भले ही यह बता दे कि महासमुद्र में कितना जल है या जीव रहते हैं, किन्तु वह भी निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार को.... नहीं समझा सकता।

''महाराज! एक और कारण सुनें, जिससे निर्वाण के होने पर भी उपमायें दिखा....उसके रूप, स्थान, काल या आकार नहीं समझाये जा सकते। महाराज! देवताओं में 'अरूपकायिक' नामक देवता हैं, या नहीं?'' ''हाँ भन्ते! ऐसा सुना जाता है कि 'अरूपकायिक' नामक देवता हैं।'' ''महाराज! क्या उन 'अरूपकायिक' देवताओं के रूप, स्थान, काल या आकार उपमायें दिखाकर व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ समझाये जा सकते हैं?'' ''नहीं, भन्ते! नहीं समझाये जा सकते?'' ''महाराज! तब

कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति। ''यथा, महाराज, अत्थिसत्तानं येव अरूपकायिकानं देवानं न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं; एवमेव खो, महाराज, अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा करणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति।

''भन्ते नागसेन, होतु एकन्तसुखं निब्बानं। न च सक्का तस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं। अत्थि पन, भन्ते, निब्बानस्स गुणं अञ्ञेहि अनुपविट्ठं, किञ्चि ओपम्मनिदस्सनमत्तं'' ति? ''सरूपतो, महाराज, नत्थि; गुणतो पन, महाराज, सक्का किञ्चि ओपम्मनिदस्सनमत्तं उपदस्सयितुं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, यथाहं लभामि निब्बानस्स गुणतो पि एकदेसपरिदीपनमत्तं, तथा सीघं ब्रूहि, निब्बापेहि मे हदयपरिळाहं विनयसीतलमधुरवचनमालुतेना'' ति।

''पदुमस्स, महाराज, एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो, उदकस्स द्वे गुणा, अगदस्स तयो गुणा, महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा, भोजनस्स पञ्च गुणा, आकासस्स दस गुणा, मणिरतनस्स तयो गुणा, लोहितचन्दनस्स तयो गुणा, सप्पिमण्डस्स तयो गुणा, गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति।

''भन्ते नागसेन, 'पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो' ति यं वदेसि, कतमो पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो'' ति? ''यथा, महाराज, पदुमं अनुपलित्तं उदकेन;

अरूपकायिक देवता हैं ही नहीं।'' ''भन्ते! 'अरूपकायिक' देवता हैं तो अवश्य, किन्तु उनके रूप, स्थान, काल या आकार–प्रकार उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते।'' ''महाराज! जैसे 'अरूपकायिक' देवताओं के रहने पर भी उनके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते; वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते।''

''भन्ते नागसेन! ठीक है, मैं मान लेता हूँ कि निर्वाण सुख ही सुख है; और उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखाकर व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते। भन्ते! क्या उपमा के सहारे निर्वाण के गुण की और किसी दूसरे ने कुछ संकेत भर भी किया है?'' ''महाराज! निर्वाण का रूप तो है ही नहीं, किन्तु उपमा के सहारे थोड़ा बहुत इस ओर संकेत किया जा सकता है कि वह कैसा है!''

''अच्छा भन्ते! 'निर्वाण कैसा है'– इसका ही कुछ संकेत मिल जाय! अतः शीघ्र ही अपने मन्द, शीतल एवं मधुरवचनरूपी मारुत से मेरे हृदय की उत्सुकतारूपी जलन मिटा दें।''

''महाराज! कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है; जल के दो गुण निर्वाण में मिलते हैं, अगद के तीन गुण मिलते हैं; समुद्र के चार गुण मिलते हैं; भोजन के पाँच गुण मिलते हैं; आकाश के दश गुण मिलते हैं; मणि–रत्न के तीन गुण मिलते हैं; लाल चन्दन के तीन गुण मिलते हैं, घी (नवनीत) के तीन गुण और पहाड़ की चोटी के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं।''

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है वह कौन सा

एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बकिलेसेहि अनुपलित्तं। अयं, महाराज, पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुप्पविट्ठो'' ति। (१)

''भन्ते नागसेन, 'उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति वदेसि, कतमे उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुप्पविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, उदकं सीतलं परिळाहनिब्बापनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सीतलं सब्बकिलेसपरिळाहनिब्बापनं, अयं महाराज, उदकस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, उदकं किलन्ततसितपिपासित-घम्माभितत्तानं जनपसुपजानं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं कामतण्हाभवतण्हाविभव-तण्हापिपासाविनयनं। अयं, महाराज, उदकस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (२)

''भन्ते नागसेन, 'अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, अगदो विसपीळितानं सत्तानं पटिसरणं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं किलेसविसपीळितानं सत्तानं पटिसरणं। अयं, महाराज, अगदस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, अगदो रोगानं अन्तकरो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बदुक्खानं अन्तकरं। अयं, महाराज, अगदस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, अगदो अमतं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अमतं। अयं, महाराज, अगदस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (३)

''भन्ते नागसेन, 'महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुप्पविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, महासमुद्दो सुञ्ञो

गुण है?'' ''महाराज! जिस तरह कमल जल से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसी तरह निर्वाण सभी क्लेशों से अलिप्त रहता है। महाराज! कमल का यह एक गुण निर्वाण में मिलता है।'' (१)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि जल के दो गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे कौन से दो गुण हैं?'' ''महाराज! १. जैसे जल शीतल होता है और गर्मी दूर करता है; वैसे ही निर्वाण भी शीतल है, जो सभी क्लेशों का ताप शान्त कर देता है। महाराज! यह जल का पहला गुण है, जो निर्वाण में पाया जाता है। २. और फिर, जैसे जल थके, माँदे, प्यासे और धूप से पीड़ित आदमी या पशु को, उनकी प्यास बुझाकर, शान्त कर देता है; वैसे ही निर्वाण भी लोगों की कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा की प्यास को दूर कर देता है। महाराज! यह जल का दूसरा गुण है, जो निर्वाण में पाया जाता है।'' (२)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि औषध (अगद) के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे विष से पीड़ित लोगों के लिये औषध ही बचने का रास्ता है; वैसे ही क्लेशरूपी विष से पीड़ित लोगों के लिये निर्वाण ही एकमात्र बचने का रास्ता है। महाराज! औषध का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. और जैसे अगद सभी रोगों का अन्त कर देती है; वैसे ही निर्वाण सभी दुःखों का अन्त कर देता है। महाराज! औषध का यह दूसरा गुण भी निर्वाण में मिलता है। ३. फिर जैसे यह औषध अमृत है; वैसे ही निर्वाण भी अमृत है। महाराज! औषध का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! औषध के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (३)

''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि महासमुद्र के चार गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे चार गुण कौन

सब्बकुणपेहि; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सुञ्ञं सब्बकिलेसकुणपेहि। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो ति। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तो अनोरपारो, न पूरति सब्बसवन्तीहि; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं महन्तं अनोरपारं, न पूरति सब्बसत्तेहि। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तानं भूतानं आवासो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं महन्तानं अरहन्तानं विमलखीणासवबलप्पत्तवसीभूतमहाभूतानं आवासो। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो अपरिमितविविधविपुलवीचि-पुप्फसङ्कुसुमितो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अपरिमितविविधविपुलपरिसुद्धविज्जा-विमुत्तिपुप्फसङ्कुसुमितं। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (४)

''भन्ते नागसेन, 'भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं आयुधारणं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं जरामरणनासनतो आयुधारणं। अयं, महाराज, भोजनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं बलवड्ढनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं इद्धिबलवड्ढनं। अयं, महाराज, भोजनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं वण्णजननं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं गुणवण्णजननं। अयं, महाराज, भोजनस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं दरथवूपसमनं;

से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे महासमुद्र अपने में किसी मृत शरीर को नहीं रहने देता; वैसे ही निर्वाण में भी कोई क्लेश रह नहीं पाते। महाराज! महासमुद्र का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे महासमुद्र महान् और अपरम्पार है, सब नदियों के गिरने से भी नहीं भरता; वैसे ही निर्वाण भी महान् और अपरम्पार है, सब जीवों केआने पर भी नहीं भरता। महाराज! महासमुद्र का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे महासमुद्र में बड़े-बड़े जीव रहते हैं; वैसे ही निर्वाण में बड़े-बड़े क्षीणास्रव, शुद्ध, बली और आत्मसंयमी अर्हत् रहते हैं। महाराज! महासमुद्र का यह तीसरा गुण भी निर्वाण में मिलता है। ४. जैसे महासमुद्र नाना प्रकार के अनन्त बड़े-बड़े तरङ्ग रूपी फूलों से भरा रहता है; वैसे ही निर्वाण भी नाना प्रकार के अनन्त बड़े-बड़े शुद्ध विद्या और विमुक्ति के फूलों से भरा रहता है। महाराज! महासमुद्र का यह चौथा गुण निर्वाण में भी मिलता है। महाराज! महासमुद्र के ये चार गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (४)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भोजन के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे पाँच गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे भोजन सभी जीवों की प्राणरक्षा करता है; वैसे ही साक्षात्कृत निर्वाण जरा-मरण से रक्षा करता है। महाराज! भोजन का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे भोजन सभी जीवों के बल की वृद्धि करता है; वैसे ही निर्वाण साक्षात् करने से दिव्यबल की वृद्धि होती है। महाराज! भोजन का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे भोजन सभी जीवों का सौन्दर्य बनाये रखता है; वैसे ही साक्षात् किया गया निर्वाण जीवों में सद्गुण का सौन्दर्य बनाये रखता है! महाराज! भोजन का यह तीसरा गुण निर्वाण में भी मिलता है। ४. जैसे भोजन सभी जीवों का कष्ट दूर कर देता है; वैसे ही निर्वाण सभी जीवों का क्लेश रूपी कष्ट दूर कर देता है। महाराज! भोजन का यह

एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं सब्बकिलेसदरथवूपसमनं। अयं, महाराज, भोजनस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं जिघच्छा-दुब्बल्यपटिविनोदनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं सब्बदुक्खजिघच्छा-दुब्बल्यपटिविनोदनं। अयं, महाराज, भोजनस्स पञ्चमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति (५)

''भन्ते नागसेन, 'आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, आकासो न जायति, न जीयति, न मीयति, न चवति, न उप्पज्जति, दुप्पसहो, अचोराहरणो, अनिस्सितो, विहगगमनो, निरावरणो, अनन्तो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उप्पज्जति, दुप्पसहं अचोराहरणं अनिस्सितं अरियगमनं निरावरणं अनन्तं। इमे खो, महाराज, आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (६)

''भन्ते नागसेन, 'मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, मणिरतनं कामददं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं कामददं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च, महाराज, मणिरतनं हासकरं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं हासकरं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, मणिरतनं उज्जोतत्थकरं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं उज्जोतत्थकरं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (७)

चौथा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ५. जैसे भोजन सभी जीवों की भूख, दुर्बलता हटा देता है; वैसे ही निर्वाण जीवों के सारे दुःख, भूख और दुर्बलता आदि दूर कर देता है। महाराज! भोजन का यह पाँचवाँ गुण निर्वाण में भी मिलता है। महाराज! भोजन के ये पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (५)

''भन्ते! आप जो कहते हैं कि आकाश के दश गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे दश गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! जैसे आकाश १. न पैदा होता है, २. न पुराना होता है, ३. न मरता है, ४. न आवागमन करता है, ५. दुर्ज्ञेय है, ६. चोरों से नहीं चुराया जा सकता, ७. किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, ८. स्वच्छन्द गति है, ९. खुला और १०. अनन्त है; वैसे ही निर्वाण भी न पैदा होता, न पुराना होता, न मरता, न आवागमन करता है, दुर्ज्ञेय है, चोरों से भी नहीं चुराया जा सकता, किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, स्वच्छन्द, खुला और अनन्त है। महाराज! आकाश के ये दश गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (६)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि मणिरत्न के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे कौन से तीन गुण हैं?'' ''महाराज! १. जैसे मणिरत्न समग्र इच्छाएँ पूर्ण कर देता है; वैसे ही निर्वाण भी समग्र इच्छाएँ पूर्ण कर देता है। महाराज! मणिरत्न का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. मणिरत्न की तरह निर्वाण भी अत्यन्त मनोहर होता है। महाराज! मणिरत्न का यह दूसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे मणिरत्न प्रकाशवान् और अत्यन्त उपयोगी होता है; वैसे ही निर्वाण भी अत्यन्त प्रकाशवान् और उपयोगी होता है। महाराज! मणिरत्न का यह तीसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! मणिरत्न के ये तीन गुण निर्वाण में भी मिलते हैं।'' (७)

"भन्ते नागसेन, 'लोहितचन्दनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे लोहितचन्दनस्स तयो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, लोहितचन्दनं दुल्लभं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं दुल्लभं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, लोहितचन्दनं असमसुगन्धं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं असमसुगन्धं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, लोहितचन्दनं सज्जनपसत्थं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अरियसज्जनपसत्थं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, लोहितचन्दस्स तयो गुणा निब्बानममनुपविट्ठा" ति। (८)

"भन्ते नागसेन, 'सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, सप्पिमण्डो वण्णसम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं गुणवण्णसम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स पठमो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो ति। पुन च परं, महाराज, सप्पिमण्डो गन्धसम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सीलगन्धसम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स दुतियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, सप्पिमण्डो रससम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं रससम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति। (९)

"भन्ते नागसेन, 'गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, गिरिसिखरं अच्चुग्गतं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अच्चुग्गतं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स पठमो गुणो

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि लाल चन्दन के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. जैसे लाल चन्दन दुर्लभ होता है; वैसे ही निर्वाण का पाना भी बहुत कठिन है। महाराज! लाल चन्दन का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे लाल चन्दन की सुगन्ध अपनी निराली होती है; वैसे ही निर्वाण की सुगन्ध भी निराली होती है। महाराज! लाल चन्दन का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. लाल चन्दन की तरह निर्वाण भी सज्जनों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित है। महाराज! लाल चन्दन का यह तीसरा गुण निर्वाण में मिलता है। महाराज! लाल चन्दन के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।" (८)

"भन्ते! आप कहते हैं कि मक्खन के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. मक्खन की तरह निर्वाण भी सद्गुणों से विभूषित होता है। महाराज! मक्खन का यह पहला गुण निर्वाण में भी मिलता है। २. जैसे मक्खन की गन्ध बहुत अच्छी होती है; वैसे ही निर्वाण भी शीलगन्धयुक्त होता है। महाराज! मक्खन का यह दूसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे मक्खन का स्वाद अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है; वैसे ही निर्वाण भी अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है। महाराज! मक्खन का यह तीसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! मक्खन के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।" (९)

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि पर्वत-शिखर (पहाड़ की चोटी) के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे पाँच गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. जैसे पहाड़ की चोटी बहुत ऊँची होती है; वैसे ही निर्वाण भी बहुत ऊँचा है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २.

निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं अचलं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अचलं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं दुरधिरोहं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं दुरधिरोहं सब्बकिलेसानं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं सब्बबीजानं अविरूहनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बकिलेसानं अविरूहनं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अनुनयपटिघविप्पमुत्तं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स पञ्चमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा'' ति। (१०)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

११. निब्बानसच्छिकरणपञ्हो

२१. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ– 'निब्बानं न अतीतं न अनागतं न पच्चुप्पन्नं न उप्पन्नं न अनुप्पन्नं न उप्पादनीयं' ति। इध, भन्ते नागसेन, यो कोचि सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति सो उप्पन्नं सच्छिकरोति, उदाहु उप्पादेत्वा सच्छिकरोती'' ति? ''यो कोचि, महाराज, सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति, सो न उप्पन्नं सच्छिकरोति, न उप्पादेत्वा सच्छिकरोति। अपि च, महाराज, अत्थेसा निब्बानधातु यं सो सम्मापटिपन्नो सच्छिकरोती'' ति।

''मा, भन्ते नागसेन, इमं पञ्हं पटिच्छन्नं कत्वा दीपेहि, विवटं पाकटं कत्वा दीपेहि छन्दजातो उस्साहजातो, यं ते सिक्खितं तं सब्बं एत्थेवाकिराहि, एत्थायं जनो सम्मूळ्हो विमतिजातो संसयपक्खन्नो, भिन्देतं अन्तोदोससल्लं'' ति?

पहाड़ की चोटी की तरह निर्वाण भी अचल होता है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह दूसरा गुण निर्वाण में भी मिलता है। ३. जैसे पहाड़ की चोटी पर चढ़ना बहुत कठिन है; वैसे ही निर्वाण पाना बहुत कठिन है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह तीसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ४. और जैसे पहाड़ की चोटी पर कोई बीज नहीं जम सकता; वैसे ही निर्वाण में कोई क्लेश नहीं पैदा सकते। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह चौथा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। ५. पहाड़ की चोटी की तरह ही निर्वाण में भी किसी के प्रति न राग रहता है और न द्वेष। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह पाँचवाँ गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! पहाड़ की चोटी के ये पाँच गुण हैं, जो निर्वाण में मिलते हैं।'' (१०)

''ठीक है, भन्ते नागसेन! यह बात मैं मान लेता हूँ।''

११. निर्वाण–साक्षात्कारविषयकप्रश्न– २१. ''भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं– 'निर्वाण भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों से आगे की चीज है। निर्वाण न तो उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता है और न उत्पन्न किया जा सकता है।' भन्ते नागसेन! तब जो कोई सन्मार्ग पर चलकर निर्वाण को साक्षात् करता है; क्या वह उत्पन्न हुए निर्वाण को साक्षात् करता है?'' ''महाराज! जो कोई सन्मार्ग पर चल कर निर्वाण साक्षात् करता है, वह न तो उत्पन्न हुए निर्वाण का साक्षात् और न अपने नये सिरे से निर्वाण को उत्पन्न कर उसे साक्षात् करता है। महाराज! इस पर भी निर्वाण यथार्थतः है, जिसे कोई सन्मार्ग पर चल कर साक्षात्कार कर सकता है।''

''भन्ते नागसेन! इस प्रश्न को और भी धुँधला बना कर उत्तर न दें। इसे अच्छी तरह खोल कर

२२. "अत्थेसा, महाराज, निब्बानधातु सन्ता सुखा पणीता, तं सम्मापटिपन्नो जिनानुसिट्ठिया सङ्खारे सम्मसन्तो पञ्ञाय सच्छिकरोति। यथा, महाराज, अन्तेवासिको आचरियानुसिट्ठिया विज्जं पञ्ञाय निब्बानं सच्छिकरोति; एवमेव खो, महाराज, सम्मापटिपन्नो जिनानुसिट्ठिया पञ्ञाय निब्बानं सच्छिकरोति। कथं पन तं निब्बानं दट्ठब्बं ति ? अनीतितो निरुपद्दवतो अभयतो खेमतो सन्ततो सुखतो साततो पणीततो सुचितो सीतलतो दट्ठब्बं।

"यथा, महाराज, पुरिसो बहुकट्ठपुञ्जेन जलितकट्ठितेन अग्गिना डय्हमानो वायामेन ततो मुञ्चित्वा निरग्गिकोकासं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगततिविधग्गिसन्तापं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, अग्गि एवं तिविधग्गि दट्ठब्बो, यथा अग्गिगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा निरग्गिकोकासो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (क)

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो अहिकुक्कुरमनुस्सकुणपसरीरवळञ्जकोट्ठासरासिगतो कुणपजटाजटितन्तरमनुपविट्ठो वायामेन ततो मुञ्चित्वा निक्कुणपोकासं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन ब्यपगतकिलेसकुणपं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, कुणपं एवं पञ्च कामगुणा दट्ठब्बा, यथा कुणपगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा निक्कुणपोकासो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (ख)

स्पष्ट कर दें। विना किसी सङ्कोच के उत्साहपूर्वक आपने जो सीखा है, सब बता दें। इस विषय में मैं सर्वथा मूढ़ हूँ, भटका हुआ हूँ, सन्देह में पड़ गया हूँ, भीतर ही भीतर चुभने वाले मेरे इस कण्टक (दोष) को दूर करें?"

२२. "महाराज! यह निर्वाण शान्त, सुखमय और प्रणीत है। सन्मार्ग पर चलकर बुद्धोपदेश के अनुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की दृष्टि से) देखते हुए कोई प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जैसे शिष्य गुरु से शिक्षा लेकर अपनी समझ से विद्या का साक्षात्कार कर लेता है; वैसे ही कोई भी सन्मार्ग पर चलकर बुद्धोपदेशानुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की दृष्टि से) देखते हुए प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार करता है। निर्वाण का दर्शन कैसे हो सकता है? विघ्नों से रहित होने से, निरुपद्रव होने से, अभय, कुशल, शान्त, सुखमय, प्रसन्न, नम्र एवं शुद्ध होने से तथा शीलपालन करने से निर्वाण का दर्शन हो सकता है।

"महाराज! जैसे कोई मनुष्य किसी बड़े अग्निकुण्ड में पड़ जाने पर जैसे-तैसे कूद-फाँद कर बाहर निकल आता है और तब उसे बहुत सुख मिलता है; वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चल, मन को सही लक्ष्य पर लगा, तीन प्रकार की अग्नि के सन्ताप से छूटकर परमसुख निर्वाण साक्षात् करता है। महाराज! जो यहाँ अग्नि है, उसे तीन प्रकार की अग्नि (राग, द्वेष, और मोह) समझना चाहिये। जो यहाँ अग्नि में पड़ गया मनुष्य है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो अग्नि के बाहर आ जाना है उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (क)

"महाराज! जैसे मरे हुये साँप, कुत्ते और मनुष्यों से भरा कोई गढ़ा हो, जिसकी गन्दगी से अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही हो। उन मुर्दों के बीच में दबा हुआ कोई जीवित आदमी हाथ पैर चलाकर अत्यन्त प्रयास के बाद बाहर निकल आवे, और तब उसे बड़ा सुख मिले; महाराज! वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चलकर, मन को लक्ष्य पर लगाकर क्लेशरूपी मृत-समूह से बाहर परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ मृत हैं उन्हें पाँच काम-वासनाएँ और जो यहाँ मुर्दों के बीच में दबा जीवित

''यथा वा पन, महाराज, पुरिसो भीतो तसितो कुपितो विपरीतविब्भन्तचित्तो वायामेन ततो मुञ्चित्वा दळ्हं थिरं अचलं अभयट्ठानं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगतभयसन्तासं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, भयं एवं जातिजराव्याधिमरणं पटिच्च अपरापरं पवत्तभयं दट्ठब्बं, यथा भीतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा अभयट्ठानं एवं निब्बानं दट्ठब्बं।(ग)

''यथा वा पन, महाराज, किलिट्ठमलिनकललकद्दमदेसे पतितो वायामेन तं कललकद्दमं अपवाहेत्वा परिसुद्धविमलदेसमुपगन्त्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगतकिलेसमलकद्दमं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, कललं एवं लाभसक्कारसिलोको दट्ठब्बो, यथा कललगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा परिसुद्धविमलदेसो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (घ)

''तं च पन निब्बानं सम्मापटिपन्नो किं ति सच्छिकरोति ? यो सो, महाराज, सम्मापटिपन्नो सो सङ्खारानं पवत्तं सम्मसति, पवत्तं सम्मसमानो तत्थ जातिं पस्सति जरं पस्सति ब्याधिं पस्सति मरणं पस्सति, न तत्थ किञ्चि सुखं सातं पस्सति, आदितो पि मज्झतो पि परियोसानतो पि, सो तत्थ न किञ्चि गय्हूपगं पस्सति। (ङ)

''यथा, महाराज, पुरिसो दिवससन्तत्ते अयोगुले जलिते तत्ते कठिते आदितो पि मज्झतो पि परियोसानतो पि न किञ्चि गय्हूपगं पदेसं पस्सति; एवमेव खो, महाराज, यो

आदमी है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ मुर्दों के बीच से बाहर आ जाना है, उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (ख)

"महाराज! जैसे कोई पुरुष किसी संकट में पड़कर बहुत डर गया हो, घबरा गया हो, काँप रहा हो, भ्रान्त हो गया, पागल हो गया हो। वह अपने प्रयास से उस संकट से बाहर निकल आवे जहाँ पूरी स्थिरता हो, भय का कोई अवसर न हो, वहाँ उसे अत्यन्त सुख मिले; महाराज! वैसे ही, कोई सन्मार्ग पर चल मन को ठीक ओर लगा, डर या भय से रहित परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ संकट का भय है उसे जन्म लेना, बूढ़ा होना, बीमार पड़ना, मर जाना इत्यादि के कारण होने वाले संसार के इस अपार भय को समझना चाहिये। जो यहाँ भयभीत पुरुष है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ संकट से निकलकर स्थिरता और निर्भयता की जगह पर आना है, उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (ग)

"महाराज! जैसे मैले और गन्दे कीचड़ में पड़ा हुआ कोई आदमी उद्योग कर पवित्र स्थान में चला जाय और सुख पावे; वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चलकर मन को ठीक तरफ लगा कर क्लेशरूपी गन्दगी से निकल परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ कीचड़ है, उसे संसार का लाभ, सत्कार और प्रशंसा समझना चाहिये। जो यहाँ कीचड़ में पड़ा मनुष्य है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ पवित्र स्थान है, उसे निर्वाण समझना चाहिये। (घ)

"सन्मार्ग पर चलकर कोई कैसे निर्वाण का साक्षात्कार करता है?" "महाराज! जो सन्मार्ग पर चलता है, वह संसार के सभी संस्कारों की अनित्य, अनात्म और दुःखमय देखभाल कर उस पर विचार करता है। विचार करते हुये वहाँ पैदा होना, पुराना होना, रोग और मरण देखता है। यों, वहाँ कुछ भी सुख नहीं देखता। आदि मध्य और अन्त से भी किसी वस्तु को ग्राह्य नहीं पाता। (ङ)

"महाराज! जैसे कोई पुरुष दिन भर अग्नि में गर्म किये फिर बाहर निकाल कर रखे, लपलपाते

सङ्खारानं पवत्तं सम्मसति सो पवत्तं सम्मसमानो तत्थ जातिं पस्सति जरं पस्सति ब्याधिं पस्सति मरणं पस्सति, न तत्थ किञ्चि सुखं सातं पस्सति, आदितो पि मज्झतो पि परिसोयानतो पि, सो तत्थ न गय्हूपगं पस्सति। तस्स गय्हूपगं अपस्सन्तस्स चित्ते अरति सण्ठाति, कायस्मिं डाहो ओक्कमति, सो अत्ताणो असरणो असरणीभूतो भवेसु निब्बिन्दति। (च)

"यथा, महाराज, पुरिसो जलितजालं महन्तं अग्गिक्खन्धं पविसेय्य, सो तत्थ असरणो असरणीभूतो अग्गिम्हि निब्बिन्देय्य; एवमेव खो, महाराज, तस्स गय्हूपगं अपस्सन्तस्स चित्ते अरति सण्ठाति, कायस्मिं डाहो ओक्कमति, सो अत्ताणो असरणो असरणीभूतो भवेसु निब्बिन्दति।

"तस्स पवत्ते भयदस्साविस्स एवं चित्तं उप्पज्जति—'सन्तत्तं खो पनेतं पवत्तं सम्पज्जलितं बहुदुक्खं बहुपायासं। यदि कोचि लभेथ अपवत्तं एतं सन्तं एतं पणीतं, यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं' ति। इति हिदं तस्स अपवत्ते चित्तं पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धं खो मे निस्सरणं' ति।(छ)

"यथा, महाराज, पुरिसो विप्पनट्ठो विदेसपक्खन्नो निब्बाहनमग्गं दिस्वा तत्थ पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धो मे निब्बाहनमग्गो' ति; एवमेव खो, महाराज, पवत्ते भयदस्साविस्स अप्पवत्ते चित्तं पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धं खो मे निस्सरणं' ति।

हुये जलते लोहे के गोले को चारों ओर से देखते हुये उसका कोई भी भाग पकड़ने योग्य नहीं समझता; वैसे ही महाराज! जो संसार के सभी संस्कारों की प्रवृत्ति को देख-भाल कर उस पर विचार करता है, वह वहाँ पैदा होना, पुराना होना, रोग और मरण देखता है। वहाँ कुछ भी सुख नहीं देखता। आदि, मध्य और अन्त से किसी वस्तु को ग्राह्य नहीं समझता। इससे उसका चित्त संसार की ओर से उचट जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की उद्विग्नता समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या त्राण नहीं पाता। आवागमन के चक्र से थक जाता है। (च)

"महाराज! जैसे कोई आदमी किसी ज्वालायुक्त अग्नि की बड़ी राशि में पड़ जाय, वहाँ अपने को असहाय और अशरण पावे; महाराज! इसी तरह, सांसरिक विषयों से उसका मन उचट जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की उद्विग्नता समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या त्राण नहीं पाता। आवागमन के चक्र से थक जाता है।

"वह सब तरफ केवल भय ही देखता है और उसके मन में यह बात आती है—'अरे! यह सारा संसार जल रहा है! धधक रहा है! दुःख से भरा है, केवल परेशानी है! यदि कोई इस जञ्जाल से छूटना चाहता है तो उसके लिये परमशान्त और प्रणीत निर्वाण ही एकमात्र शरण है, जहाँ सारे संस्कार सदा के लिये रुक जाते हैं, सारी उपाधियाँ मिट जाती हैं, तृष्णा का नाम भी नहीं रह जाता, राग का अन्त हो जाता है और आवागमन का निरोध हो जाता है।' इस तरह, आवागमन से छूटने में ही और उसका चित्त लगता है, इधर ही श्रद्धा और विश्वास बढ़ते हैं। वह आनन्द से बोल उठता है—'अहो! मुझे सहारा मिल गया।' (छ)

"महाराज! जैसे अज्ञात जंगल में भटका कोई यात्री ठीक रास्ता पाकर आनन्दमग्न हो जाता है और बोल उठता है—'अरे! सही रास्ता मिल गया', वैसे ही संसार के प्रपञ्च में भय ही देखने वाला आवागमन से छूटने ही की तरफ चित्त लगाता है, उधर उसके श्रद्धा, विश्वास बढ़ते हैं। तब वह आनन्द से बोल उठता है—'अरे! मुझे सहारा मिल गया।'

"सो अप्पवत्ताय मग्गं आयूहति गवेसति भावेति बहुलीकरोति, तस्स तदत्थं सति सन्तिट्ठति, तदत्थं विरियं सन्तिट्ठति, तदत्थं पीति सन्तिट्ठति, तस्स तं चित्तं अपरापरं मनसिकरोतो पवत्तं समतिक्कमित्वा अप्पवत्तं ओक्कमति। अप्पवत्तमनुप्पत्तो, महाराज, सम्मापटिपन्नो 'निब्बानं सच्छिकरोती' ति वुच्चती" ति। (ज)

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

१२. निब्बानसन्निहितपञ्हो

२३. "भन्ते नागसेन, अत्थि सो पदेसो पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय, उद्धं वा अधो वा तिरियं वा यत्थ निब्बानं सन्निहितं" ति? "नत्थि, महाराज, सो पदेसो पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय, उद्धं वा अधो वा तिरियं वा यत्थ निब्बानं सन्निहितं" ति।

"यदि, भन्ते नागसेन, नत्थि निब्बानस्स सन्निहितोकासो, तेन हि नत्थि निब्बानं, येसं च तं निब्बानं सच्छिकतं तेसं पि सच्छिकिरिया मिच्छा। कारणं तत्थ वक्खामि—यथा, भन्ते नागसेन, महिया धञ्ञुट्ठानं खेत्तं अत्थि, गन्धुट्ठानं गुम्बो अत्थि, फलुट्ठानं रुक्खो अत्थि, रतनुट्ठानं आकरो अत्थि; तत्थ यो कोचि यं यं इच्छति सो तत्थ गन्त्वा तं तं हरति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानं अत्थि, तस्स निब्बानस्स उट्ठानोकासो पि इच्छितब्बो। यस्मा च खो, भन्ते नागेसन, निब्बानस्सुट्ठानोकासो नत्थि, तस्मा 'नत्थि निब्बानं' ति ब्रूमि, 'येसं च निब्बानं सच्छिकतं, तेसं सच्छिकिरिया मिच्छा" ति।

२४. "नत्थि, महाराज, निब्बानस्स सन्निहितोकासो, अत्थि चेतं निब्बानं; सम्मापटिपन्नो

"वह निर्वाण पाने का रास्ता ढूँढता है, उसी की भावना करता है और उसी को मनन द्वारा दृढ़ करता है। अपना ध्यान, प्रयास और उत्साह उसी ओर लगा देता है। उसी का बराबर ध्यान करने से उसका चित्त सांसारिक विषयों से हट कर वैराग्य की ओर झुक जाता है। महाराज ! वैराग्य को पूर्ण कर सन्मार्ग पर चलते हुए निर्वाण का साक्षात्कार करता है।" (ज)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं सर्वथा समझ गया।"

१२. निर्वाणसन्निहितप्रश्न—२३. "भन्ते नागसेन! क्या वह स्थान पूर्व दिशा की तरफ है, या पश्चिम या उत्तर दिशा या दक्षिण दिशा की तरफ या ऊपर या नीचे या तिरछे जहाँ निर्वाण छिपा हो?" "महाराज! वह जगह न तो पूर्व दिशा की तरफ है, न पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की तरफ, न ऊपर, न नीचे और न तिरछे जहाँ निर्वाण छिपा हो।"

"भन्ते! यदि निर्वाण कहीं भी नहीं है तो वह हुआ ही नहीं। निर्वाण नाम की कोई चीज नहीं है। निर्वाण का साक्षात्कार करना सर्वथा झूठी बात है। इसके लिए मेरा तर्क यह है—भन्ते नागसेन! जैसे संसार में खेती उगाने के लिये खेत हैं, गन्ध निकालने के लिये फूल हैं, फूल उगाने के लिये पुष्पवाटिका है, फल खाने के लिये वृक्ष हैं और रत्न निकालने के लिये खान (आकर) है। जिस आदमी को जिस चीज की आवश्यकता होती है, वह वहाँ जा कर उसे पैदा कर सकता है; भन्ते नागसेन! इसी तरह यदि निर्वाण है तो उसका कोई उत्पादक स्थान भी होना चाहिये। भन्ते! यदि ऐसी बात नहीं हैं तो मैं यही समझूँगा कि 'निर्वाण' नाम की कोई चीज है ही नहीं। निर्वाण का साक्षात्कार सर्वथा झूठी बात है?"

२४. "महाराज! निर्वाण के पाये जाने का कोई स्थान नहीं हैं तो भी निर्वाण है और सन्मार्ग पर

योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोति। यथा पन, महाराज, अत्थि अग्गि नाम, नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, द्वे कट्ठानि सङ्घट्टेन्तो अग्गिं अधिगच्छति; एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, सम्मापटिपन्नो योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोति।

"यथा वा पन, महाराज, अत्थि सत्त रतनानि नाम, सेय्यथीदं— चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनं। *(दी० नि०, चक्कवत्तिसुत्तं)*। न च तेसं रतनानं सन्निहितोकासो अत्थि, खत्तियस्स पन सम्मापटिपन्नस्स पटिपत्तिबलेन तानि रतनानि उपगच्छन्ति; एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं, नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, सम्मापटिपन्नो योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोती" ति।

"भन्ते नागसेन, निब्बानस्स सन्निहितोकासो मा होतु; अत्थि पन तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति? "आम, महाराज, अत्थि तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति। "कतमं पन, भन्ते, तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति? "सीलं, महाराज, ठानं, सीले पतिट्ठहित्वा योनिसो मनसिकरोन्तो सक्कयवने पि चीनविलाते पि अलसन्दे पि निकुम्बे पि कासिकोसले पि कस्मीरे पि गन्धारे पि नगमुद्धनि पि ब्रह्मलोके पि यत्थ कत्थचि पि ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, यो कोचि चक्खुमा पुरिसो सक्कयवने पि चीनविलाते पि अलसन्दे पि निगुम्बे पि कासिकोसले पि कस्मीरे पि गन्धारे पि नगमुद्धनि पि ब्रह्मलोके पि यत्थ कत्थचि पि ठितो आकासं पस्सति; एवमेव खो, महाराज, सीले पतिट्ठितो योनिसो मनसिकरोन्तो सक्कयवने पि....पे०....यत्थ कत्थचि पि ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति।

चल कर, मन को सम्यक्प्रतिपन्न कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है। महाराज! जैसे अग्नि है तो सही, किन्तु उसके ठहरने का कोई स्थान नहीं है। काठ के दो टुकड़े घिस देने से ही अग्नि निकल आती है; महाराज! वैसे ही निर्वाण है तो सही, किन्तु उसके ठहरने का कोई स्थान नहीं है। सन्मार्ग पर चल मन को सम्यक्प्रतिपन्न कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जाता है।

"महाराज! जैसे १. चक्ररत्न, २. हस्तिरत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपतिरत्न, ७. परिणायकरत्न (चक्रवर्ती राजा के) ये सात रत्न है। किन्तु इन रत्नों के पाये जाने का कोई विशेष स्थान नहीं है। उनका व्रत पालन करने से ही राजा को ये रत्न प्राप्त होते हैं; महाराज! वैसे ही निर्वाण है तो अवश्य, किन्तु उसके ठहरने की कोई जगह नहीं है। सन्मार्ग पर चल कर, मन को स्थिर कर निर्वाण साक्षात् किया जाता है।"

"भन्ते नागसेन! निर्वाण के पाये जाने का स्थान भले ही न हो, परन्तु क्या कोई ऐसा स्थान भी है, जहाँ खड़े हो कर सन्मार्ग पर चल कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है?" "महाराज! ऐसा स्थान है जहाँ खड़े होकर..... ....निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है।" "भन्ते! वह कौन सा स्थान हैं जहाँ खड़े होकर....निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है?" "महाराज! मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। शक या यवन के देशों में रह कर भी, चीन या विलायत (विदेश) में रह कर भी, अलसन्द या निकुम्ब में रह कर भी, काशी या कोसल में रह कर भी, काश्मीर या गान्धार में रह कर भी, पहाड़ की चोटी या ब्रह्मलोक में रह कर भी इस तरह कहीं भी रह कर शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुए मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। महाराज! जैसे आँख वाला आदमी शक या यवन, चीन या विलायत, अलसन्द, निकुम्ब, काशी, कोसल, काश्मीर या गान्धार में, पहाड़ की

"यथा वा पन, महाराज, सक्कयवने पि.... पे० .... यत्थ कत्थचि पि ठितस्स पुब्बदिसा अत्थि; एवमेव खो, महाराज, सीले पतिट्ठितस्स योनिसो मनसिकरोन्तस्स सक्कयवने पि.... पे०.... यत्थकत्थचि ठितस्स सम्मापटिपन्नस्स अत्थि निब्बानसच्छिकिरिया" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, देसितं तया निब्बानं, देसिका निब्बानसच्छिकिरिया, परिक्खिता सीलगुणा, दस्सिता सम्मापटिपत्ति; उस्सापितो धम्मद्धजो, सण्ठापिता धम्मनेत्ति, अवञ्झो सुप्पयुत्तानं सम्मापयोगो। एवमेतं गणिवरपवर, तथा सम्पटिच्छामी" ति॥

तितियो वेस्सन्तरवग्गो निट्ठितो॥

(इमस्मिं वग्गे द्वादस पञ्हा)

४. अनुमानवग्गो

१. अनुमानपञ्हो

१. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा ञातुकामो सोतुकामो धारेतुकामो, ञाणालोकं दट्ठुकामो, अञ्ञाणं भिन्दितुकामो, ञाणालोकं उप्पादेतुकामो, अविज्जन्धकारं नासेतुकामो, अधिमत्तं धितिं च उस्साहं च सतिं च सम्पजञ्ञं च उपट्ठपेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—

२. "भन्ते नागसेन, किं पन बुद्धो तया दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "किं पन ते आचरियेहि बुद्धो दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "भन्ते नागसेन, न किर तया

चोटी पर, ब्रह्मलोक में या चाहे कहीं भी रह कर आकाश को देख सकता है; वैसे ही शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुए .... कहीं भी रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।"

"महाराज! जैसे .... कहीं भी रहने से मनुष्य के लिये पूर्व दिशा रहती ही है; वैसे ही शील पर प्रतिष्ठत हो मन को वश में करते हुए .... कही भी यथेच्छ रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप ने निर्वाण को बहुत अच्छा समझाया, निर्वाण का साक्षात्कार कैसे होता है— इसे बता दिया, शील के गुणों का आप ने प्रदर्शन कर दिया, सन्मार्ग दिखा दिया, धर्मध्वज फहरा दिया, धर्मस्तम्भ गाड़ दिया। शुद्ध (सच्चे) हृदय से साधना करने वालों का प्रयास कभी निष्फल नहीं जाता। इस बात को हे गणाचार्यप्रवर! मैं समझ गया।"

(इस वर्ग में बारह प्रश्न हैं।)

तृतीय वेस्सन्तरवर्ग समाप्त॥

४. अनुमानवर्ग

१. अनुमानप्रश्न—१. तब राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उस समय उसके मन में कुछ और बातों को जानने की उत्सुकता हो रही थी। नागसेन की बातें सुन कर उन्हें स्पष्टतः समझने की इच्छा हो रही थी। ज्ञान का प्रकाश देखने की चाह हो रही थी। वह अपना अज्ञान दूर कर ज्ञान पाने के लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। अतः वह बहुत धैर्य और उत्साह के साथ अपने मन को स्थिर कर शान्त भाव से भदन्त नागसेन के पास गया और यह पूछा—

२. "भन्ते नागसेन! आप ने क्या भगवान् को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "क्या आप के आचार्यों ने भगवान् को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते नागसेन! न तो आप ने भगवान् को देखा

बुद्धो दिट्ठो. नापि किर ते आचरियेहि बुद्धो दिट्ठो, तेन हि, भन्ते नागसेन, नत्थि बुद्धो, न हेत्थ बुद्धो पञ्ञायती'' ति।

''अत्थि पन ते, महाराज, पुब्बका खत्तिया ये ते तव खत्तियवंसस्स पुब्बङ्गमा'' ति? ''आम, भन्ते, को संसयो! अत्थि पुब्बका खत्तिया ये मम खत्तियवंसस्स पुब्बङ्गमा'' ति। ''दिट्ठपुब्बा तया, महाराज, पुब्बका खत्तिया'' ति। ''न हि, भन्ते'' ति। ''ये पन तं, महाराज, अनुसासन्ति, पुरोहिता सेनापतिनो अक्खदस्सा महामत्ता, तेहि पुब्बका खत्तिया दिट्ठपुब्बा'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''यदि पन ते, महाराज, पुब्बका खत्तिया न दिट्ठा, नापि किर ते अनुसासकेहि पुब्बका खत्तिया दिट्ठा, कत्थ पुब्बका खत्तिया? न हेत्थ पुब्बका खत्तिया पञ्ञायन्ती'' ति?

३. ''दिस्सन्ति, भन्ते नागसेन, पुब्बकानं खत्तियानं अनुभूतानि परिभोगसण्डानि, सेय्यथीदं—सेतच्छत्तं, उण्हीसं, पादुका, वालबीजनी, खग्गरतनं, महारहानि च सयनानि, येहि मयं जानेय्याम सद्दहेय्याम—'अत्थि पुब्बका खत्तिया'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, मयं पेतं भगवन्तं जानेय्याम सद्दहेय्याम, अत्थि तं कारणं येन मयं कारणेन जानेय्याम सद्दहेय्याम—'अत्थि सो भगवा' ति।

४. ''कतमं तं कारणं? अत्थि खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन अनुभूतानि परिभोगसण्डानि, सेय्यथीदं—चत्तारो सतिपट्ठाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, येहि सदेवको लोको जानाति सद्दहति—'अत्थि सो भगवा' ति। इमिना, महाराज, कारणेन, इमिना हेतुना, इमिना नयेन, इमिना अनुमानेन ञातब्बं—'अत्थि सो भगवा' ति।

और न आप के आचार्यों ने, तो क्यों न मान लिया जाय कि भगवान् हुए ही नहीं; क्योंकि उन के होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता ?"

"महाराज! क्या पहले के वे राजा हुए हैं, जो आप के पूर्वज थे?" "हाँ भन्ते! इसमें क्या सन्देह है! पहले के राजा अवश्य हो चुके हैं जो मेरे पूर्वज थे।" "क्या, महाराज! आपने उनको देखा है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! क्या आप को परामर्श देने वाले इन पुरोहित, सेनापति, अधिकारी या राजमन्त्रियों ने उन पहले के राजाओं को देखा है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! यदि न तो स्वयं आपने और न आप के इन परामर्शदाताओं ने ही पहले के राजाओं को देखा है, तो क्या पता वे हुए हैं कि नहीं? क्योंकि उनके होने का कोई भी प्रमाण नहीं।"

३. "भन्ते! किन्तु आज भी वे वस्तुएँ देखी जाती हैं, जिनका पहले के राजाओं ने उपयोग किया था। जैसे उनके श्वेत–छत्र, राजमुकुट, जूते, चँवर, तलवार, महार्घ पलङ्ग आदि; जिससे हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं कि वे राजा अवश्य हुए होंगे।" "महाराज! इसी तरह, हम लोग भी भगवान् बुद्ध के विषय में जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं। इसका प्रमाण भी है, जिसके बल पर हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं कि भगवान् अवश्य हुए हैं।"

४. "वह कौन सा प्रमाण है?" "महाराज! वे चीजें अभी तक वर्तमान हैं, जिनको उन्होंने अपने उपयोग में लिया था। उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा प्रयुक्त चीजें ये हैं—१. चार स्मृतिप्रस्थान, २. चार सम्यक्प्रधान, ३. चार ऋद्धिपाद, ४. पाँच इन्द्रियाँ, ५. पाँच बल, ६. सात बोध्यङ्ग

"बहू जने तारयित्वा, निब्बुतो उपधिक्खये।
अनुमानेन ञातब्बं—'अत्थि सो दिपदुत्तमो' " ति॥

"भन्ते नागसेन, ओपम्मं करोही" ति। "यथा, महाराज, नगरवड्ढकी नगरं मापेतुकामो पठमं ताव समं अनुन्नतं अनोणतं असक्खरपासाणं निरुपद्दवमनवज्जं रमणीयं भूमिभागं अनुविलोकेत्वा यं तत्थ विसमं तं समं कारापेत्वा खाणुकण्टकं विसोधापेत्वा तत्थ नगरं मापेय्य सोभनं विभत्तं भागसो मितं उक्किण्णपरिखपाकारं दळ्हगोपुरट्टालकोट्टकं पुथुचच्चरचतुक्कसन्धिसिङ्घाटकं सुचिसमतलराजमग्गं सुविभत्तअन्तरापणं आरामुय्यानतळाकपोक्खरणीउदपानसम्पन्नं बहुविधदेवट्ठानपटिमण्डितं सब्बदोसविरहितं, सो तस्मिं नगरे सब्बथा वेपुल्लतं पत्ते अञ्ञं देसं उपगच्छेय्य; अथ तं नगरं अपरेन समयेन इद्धं भवेय्य फीतं सुभिक्खं खेमं समिद्धं सिवं अनीतिकं निरुपद्दवं नानाजनसमाकुलं, पुथू खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा हत्थारोहा अस्सारोहा रथिका पत्तिका धनुग्गहा थरुग्गहा चेलका चलका, पिण्डदायका उग्गा राजपुत्ता पक्खन्दिनो महानागा सूरा वम्मिनो योधिनो दासिकपुत्ता भट्टिपुत्ता मल्लका गणका आळारिका, सूदा कप्पका नहापका चुन्दा मालाकारा सुवण्णकारा सज्झुकारा सीसकारा तिपुकारा लोहकारा वट्टकारा अयोकारा मणिकारा पेसकारा कुम्भकारा वेणुकारा लोणकारा चम्मकारा रथकारा दन्तकारा रज्जुकारा कोच्छकारा सुत्तकारा विलीवकारा धनुकारा जियकारा उसुकारा चित्तकारा

और ७. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। इनको देख कर कोई भी जान सकता है कि भगवान् अवश्य हुए हैं। महाराज! इस कारण इस हेतु तथा इस तर्क और इस अनुमान से जान सकते हैं कि भगवान् हुए हैं—

'बहुत जनों को पार कराते हुए मानसिक उपाधि मिट जाने से वे निर्वाण प्राप्त कर चुके—इस अनुमान से जान लेना चाहिये कि वे पुरुषश्रेष्ठ हुए हैं।।'

"भन्ते नागसेन! कृपया इस बात को उपमा देकर समझावें।" "महाराज! जैसे नया नगर बसाने की इच्छा से कोई अभियन्ता (इंजीनियर = नगरवड्ढकी) पहले ऐसा स्थान ढूँढ़ता है, जो असम (ऊबड़-खाबड़), न कंकरीला या पथरीला न हो, जहाँ किसी उपद्रव (बाढ़, अग्नि, चोर, या शत्रु के आक्रमण इत्यादि) का भय न हो, जो अन्य सब दोषों से भी बचा हो और जो अत्यन्त रमणीय हो। इसके बाद उस ऊँचे-नीचे स्थान को समतल करवाता है और ठूँठ-झाड़ी कटवा कर साफ कर देता है। तब नगर का मानचित्र तैयार करता है—सुन्दरतया नाप-जोख कर उसे कई भागों में बाँट कर चारों ओर खाई और हाता, मजबूत द्वार, चौकस अटारियाँ, किलाबन्दी, बीच-बीच में खुले उद्यान, चौराहे, दोराहे, चौक, साफ-सुथरे और समतल राजमार्ग, बीच-बीच में दुकानों की पंक्तियाँ, आराम, बगीचे, बावड़ी, कूएं, देवस्थान बनवाता है। यों सुन्दर और सभी दोषों से रहित उस नगर के पूर्णतः बस जाने और अभ्युन्नत हो जाने पर वह किसी दूसरे देश में चला जाय। बाद में समय पा कर वह नगर बहुत बढ़ जाय, शोभासम्पन्न हो जाय, धनाढ्य हो जाय, निर्भय, समृद्ध, शिवमय और विघ्न-बाधारहित हो जाय, वहाँ किसी उपद्रव का भय न रहे, जनता भी बहुत बढ़ जाय, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, महावत, घुड़सवार, गाड़ी, रथ, पैदल चलने वाले, तीरन्दाज, तलवार चलाने वाले, साधु-सन्त, दान देने वाले, युद्धप्रिय उग्र राजपुत्र, बड़े बड़े शूरवीर, कवच धारण करने वाले योद्धा, नौकर-चाकर, मजदूर, पहलवानों के समूह, रसोइये, नाई, नहलाने वाले, लोहार, माली, सोनार, सीसा पीतल या किसी अन्य धातु का काम करने वाले, जौहरी, दूत, कुम्हार, नमक तैयार करने वाले, चर्मकार, गाड़ी बनाने वाले, हाथी दाँत के कारीगर, रस्सी बँटने वाले, कंघी बनाने वाले, सूत कातने वाले, सूप, डाली, धनुष्, ताँत, तीर, चित्र

रङ्गकारा रजका तन्तवाया तुन्नवाया हेराञ्ञका दुस्सिका गन्धिका, तिणहारका कट्ठहारका भतका पण्णिका फलिका मूलिका ओदनिका पूविका मच्छिका मंसिका मज्जिका नटका नच्चका लङ्घका, इन्दजालिका वेतालिका मल्ला छवडाहका पुप्फछड्डका, वेना नेसादा गणिका लासिका कुम्भदासियो, सक्क-यवन-चीनविलाता उज्जेनका भारुकच्छका कासिकोसला परन्तका, मागधका, साकेता, सोरेय्यका, पावेय्यका, कोटुम्बरमाधुरका अलसन्दकस्मीर-गन्धारा तं नगरं वासाय उपगता नानाविसयिनो जना नवं सुविभत्तं अदोसमनवज्जं रमणीयं तं नगरं पस्सित्वा अनुमानेन जानन्ति—'छेको वत, भो, सो नगरवड्ढकी यो इमस्स नगरस्स मापेता' ति; एवमेव खो, महाराज, सो भगवा असमो असमसमो अप्पटिसमो असदिसो अतुलो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो अपरिमेय्यो अमितगुणो गुणपारमिप्पत्तो अनन्तधिति अनन्ततेजो अनन्तविरियो अनन्तबलो, बुद्धबलपारमिं गतो ससेनं मारं पराजेत्वा दिट्ठिजालं पदालेत्वा अविज्जं खेपेत्वा विज्जं उप्पादेत्वा धम्मुक्कं धारयित्वा सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा विजितसङ्गामो धम्मनगरं मापेसि।

धम्मनगरं— ५. "भगवतो खो, महाराज, धम्मनगरं सीलपाकारं हिरिपरिखं ञाणद्वार-कोट्ठकं, विरियअट्टालकं सद्धाएसिकं सतिदोवारिकं, पञ्ञापासादं सुत्तन्तचच्चरं अभिधम्म-सिङ्घाटकं विनयविनिच्छयं सतिपट्ठानवीथिकं। तस्स खो पन, महाराज, सतिपट्ठानवीथियं एवरूपा आपणा पसारिता होन्ति। सेय्यथीदं—'पुप्फापणं गन्धापणं फलापणं अगदापणं ओसधापणं अमतापणं रतनापणं सब्बापणं' ति।

और रंग बनाने वाले, रंगरेज, जुलाहे, दर्जी, सोने के व्यापारी, बजाज, गन्धी, घसियारे, लकड़हारे, श्रमिक, फल के व्यापारी, जड़ी-बूटी या भात और पूआ बेचने वाले, मछुये, कसाई, भड्डदार, नाटक करने वाले, नाच दिखाने वाले, नट, मदारी, भाट, पहलवान, मुर्दा जलाने वाले, निषाद; रण्डी, वेश्या, रास रचने वाली, पनिहारिन, शक, चीन, यवन विलायत, उज्जैन, भरुकच्छ, काशी, कोसल, सीमान्त, मगध, साकेत (अयोध्या), सौराष्ट्र, पावा, औदुम्बर, मथुरा, अलसन्द, काश्मीर और गान्धार के लोग उस शहर में आकर बस जाँय। वे सभी उस शहर को उतना अच्छा बसा देख कर कहें-'अरे! वह अभियन्ता बहुत कुशल होगा जिसने इतना अच्छा नगर बसयाया'। महाराज! वैसे ही भगवान् अनुपम.... अतुल्य, अनन्त गुण वाले अप्रमेय, अपरिमेय..... सभी गुणों की पराकाष्ठा तक पहुँचे, सर्वज्ञ, अनन्त तेज वाले, अनन्त वीर्य, अनन्त बल तथा बुद्धि-बल की चरम सीमा तक पहुँचे हुए हैं। उन्होंने मार को उसकी सारी सेना के साथ हरा कर मिथ्या सिद्धान्तों को छिन्न भिन्न कर, अविद्या को हटा कर, विद्या उत्पन्न कर धर्मरूपी ज्योति को दिखा कर सर्वज्ञता पा कर विजितसंग्राम होकर यह धर्मनगर बसाया है।"

धर्मनगर—५. "महाराज! भगवान् के बसाये धर्मनगर के चारों ओर शील का प्राकार बना है; ह्री (पाप कर्म करने से हिचक) की परिखा (खाई) खुदी है, उसके फाटक पर 'ज्ञान' की सुरक्षा (चौकसी) है; वीर्य की अटारियाँ बनी है; श्रद्धा की नींव दी गयी है; स्मृति का द्वारपाल खड़ा है; प्रज्ञा के बड़े बड़े भवन बने है; उनके धर्मोपदेश के सूत्र उद्यान है; धर्म की चौक, विनय की कचहरी और स्मृतिप्रस्थान की सड़कें बनी हैं। महाराज! स्मृतिप्रस्थान की उन सड़कों के दोनों तरफ दुकानें लगी हैं—१. फूल की, २. गन्ध की, ३. फल की, ४. विषनाशक औषधियों की, ५. जड़ी-बूटियों की, ६. अमृत की, ७. रत्न की एवं ८. अन्य सभी चीजों की।"

६. ''भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो पुप्फापणं'' ति? ''अत्थि खो पन, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन आरम्मणविभत्तियो अक्खाता, सेय्यथीदं—अनिच्चसञ्ञा दुक्खसञ्ञा अनत्तसञ्ञा असुभसञ्ञा आदीनवसञ्ञा पहानसञ्ञा विरागसञ्ञा निरोधसञ्ञा सब्बलोके अनभिरतसञ्ञा, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चसञ्ञा, आनापानसति, उद्धुमातकसञ्ञा, विनीलकसञ्ञा, विपुब्बकसञ्ञा, विच्छिद्दकसञ्ञा, विक्खायतिकसञ्ञा, विक्खित्तकसञ्ञा, लोहितकसञ्ञा, पुळवकसञ्ञा, अट्ठिकसञ्ञा, मेत्तासञ्ञा, करुणासञ्ञा, मुदितासञ्ञा, उपेक्खासञ्ञा, मरणानुस्सति, कायगतासति। इमा खो, महाराज, बुद्धेन भगवता आरम्मणविभत्तियो अक्खाता। तत्थ यो कोचि जरामरणा मुच्चितुकामो, सो तेसु अञ्ञतरं आरम्मणं गण्हाति, तेन आरम्मणेन रागा विमुच्चति, दोसा ... मोहा... मानतो .... दिट्ठितो विमुच्चति, संसारं तरति, तण्हासोतं निवारेति; तिविधं मलं विसोधेति, सब्बकिलेसे उपहन्त्वा अमलं विरजं सुद्धं पण्डरं अजातिं अमरं सुखं सीतिभूतं अभयं नगरुत्तमं निब्बाननगरं पविसित्वा अरहत्ते चित्तं विमोचेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पुप्फापणं* ति।

''कम्ममूलं गहेत्वान, आपणं उपगच्छथ।
आरम्मणं किणित्वान, ततो मुच्चथ मुत्तिया'' ति॥

७. ''भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो गन्धापणं'' ति? ''अत्थि खो पन, महाराज, तेन भगवता सीलविभत्तियो अक्खाता, येन सीलगन्धेन अनुलित्ता भगवतो पुत्ता सदेवकं लोकं सीलगन्धेन धूपेन्ति, सम्पधूपेन्ति, दिसं पि अनुदिसं पि अनुवातं पि पटिवातं पि

---

६. ''भन्ते नागसेन! यह 'फूल की दुकान' क्या है?'' ''महाराज! सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने ध्यान भावना करने के योग्य ये विषय बतायें हैं—अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा, निरोध-संज्ञा, सांसारिक विषयों में रत न होने की संज्ञा, सभी संस्कारों में अनित्य-संज्ञा, आनापानस्मृति, उद्धुमात-संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विपुब्बक-संज्ञा, विच्छिद्दक-संज्ञा, विक्खायित-संज्ञा, विक्खित्तक-संज्ञा, हितविक्खित्तक-संज्ञा, लोहितक-संज्ञा, पुळवक-संज्ञा, अस्थि-संज्ञा, मैत्री-संज्ञा, करुणा-संज्ञा, मुदिता-संज्ञा, मरणानुस्मृति, कायगतास्मृति। महाराज! भगवान् ने ध्यान भावना करने योग्य इन्हीं विषयों को बताया है। जो कोई जरा-मरण से छूटना चाहता है, वह इन विषयों में से किसी को अपने अभ्यास के लिये चुन लेता है। उसका अभ्यास कर राग, द्वेष, मोह, अभिमान और झूठे सिद्धान्तों से मुक्त हो जाता है। वह संसारसागर से पार चला जाता है; तृष्णा की धारा रोक देता है; तीन प्रकार के मल धो डालता है; और सभी क्लेशों का नाश कर मलरहित, रागरहित, शुद्ध, साफ, आवागमन से मुक्त एवं वृद्धावस्था से मुक्त सुख, शीतल और अभय, नगरों में श्रेष्ठ निर्वाणनगर में प्रवेश करता है। अर्हत् हो अपने चित्त को शुद्ध कर लेता है। — महाराज! भगवान् की यही 'फूल की दुकान' है। (१)

''कर्म रूपी धन ले कर (इस धर्म की दुकान में जा कर) अभ्यास के लिये एक योग्य विषय को खरीद कर लावे और उससे मुक्त हो जाय।।''

७. ''भन्ते नागसेन! इस धर्मनगर में 'गन्ध की दुकान' क्या है?'' ''महाराज! भगवान् ने पालन करने के लिये कुछ शील बताये हैं। भगवान् के पुत्र (बौद्ध भिक्षु) अपने शील की गन्ध से देवताओं और

वायन्ति, अतिवायन्ति, फरित्वा तिट्ठन्ति। कतमा ता सीलविभत्तियो? सरणसीलं, पञ्चसीलं, अट्ठङ्गसीलं, दसङ्गसीलं, पच्चुद्देसपरियापन्नं पातिमोक्खसंवरसीलं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *गन्धापणं* ति।

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं, तग्गरमल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति॥
चन्दनं तगरं वा पि, उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं, सीलगन्धो अनुत्तरो॥
अप्पमत्तो अयं गन्धो, स्वायं तगरचन्दनं।
यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो' ति॥ *(ध० प०, पु० व०)*

८. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो फलापणं" ति? "फलानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि, सेय्यथीदं—सोतापत्तिफलं, सकदागामिफलं, अनागामिफलं, अरहत्तफलं, सुञ्ञतफलसमापत्ति, अनिमित्तफलसमापत्ति, अप्पणिहितफलसमापत्ती ति। तत्थ यो कोचि यं फलं इच्छति, सो कम्ममूलं दत्वा पत्थितं फलं किणाति—यदि सोतापत्तिफलं, यदि सकदागामिफलं, यदि अनागामिफलं, यदि अप्पणिहितफलसमापत्तिं। यथा, महाराज, कस्सचि पुरिसस्स धुवफलो अम्बो भवेय्य, सो न ताव ततो फलानि पातेति याव कयिका न आगच्छन्ति, अनुप्पत्ते पन कयिके मूलं गहेत्वा एवं आचिक्खति—'अम्भो पुरिसो, एसो खो धुवफलो अम्बो, ततो यं इच्छसि एत्तकं फलं गण्हाहि, सलाटुकं वा दोविलं वा केसिकं वा आमं वा

मनुष्यों के साथ समग्र लोक को सुगन्धित कर देते हैं। उनके शील की गन्ध दिशाओं, अनुदिशाओं में वायु के वेग के साथ और उसके प्रतिकूल भी उड़कर फैल जाती है।' वे शील कौन से हैं? महाराज! १. शरण–शील, २. पञ्च–शील, ३. अष्टाङ्ग–शील, ४. दशाङ्ग–शील, ५. प्रत्युद्देश में आने वाले प्रातिमोक्षसंवर शील। महाराज! भगवान् की यही 'गन्ध की दुकान' है।

"महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'फूल की गन्ध वायु से प्रतिकूल नहीं बहती, न चन्दन की न तगर की या मल्लिका–फूल की; (परन्तु) सज्जनों की गन्ध वायु के विपरीत भी बहती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में उड़ कर पहुँच जाते हैं।।'

'चन्दन, तगर या कमल और जूही इनकी गन्ध से शील की गन्ध अलौकिक ही है; क्योंकि तगर और चन्दन की गन्ध साधारण है; परन्तु शीलवानों की उत्तम गन्ध देवताओं तक भी पहुँच जाती है।।' (२)

८. "भन्ते नागसेन! वह भगवान् की 'फल की दुकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने ये फल बताये हैं—स्रोतआपत्तिफल, सकृदागामिफल, अनागामिफल, अर्हत्फल, शून्यताफल (निर्वाण) समापत्ति, अनिमित्तफल समापत्ति, अप्रणिहितफल समापत्ति। इनमें से जिस फल को कोई पाना चाहता है, उसे वह अपने कर्मरूपी धन से खरीद सकता है। महाराज! जैसे किसी पुरुष का एक बारहमासी आम का वृक्ष हो। जब तक क्रेता नहीं आते तब तक वह फलों को नहीं तोड़ता। क्रेता के आने पर मूल्य लेकर उनसे कहता है—'सुनो! यह बारहमासी वृक्ष है। इसमें से जैसे फल चाहते हो ले लो—छोटे, बड़े, कसिआये,

पक्कं वा' ति। सो तेन अत्तना दिन्नमूलेन यदि सलाटुकमिच्छति सलाटुकं गण्हाति, यदि दोविलं इच्छति दोविलं गण्हाति, यदि केसिकमिच्छति केसिकं गण्हाति, यदि आमकं इच्छति आमकं गण्हाति, यदि पक्कं इच्छति पक्कं गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, यो यं फलमिच्छति सो कम्ममूलं दत्वा पत्थितं फलं गण्हाति, यदि सोतापत्तिफलं .... पे० .... यदि अप्पणिहित-फलसमापत्तिं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *फलापणं* ति।

"कम्ममूलं जना दत्वा, गण्हन्ति अमतप्फलं।
तेन ते सुखिता होन्ति. ये कीता अमतप्फलं ति॥

९. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो अगदापणं" ति ? "अगदानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि, येहि अगदेहि सो भगवा सदेवकं लोकं किलेसविसतो परिमोचेति। कतमानि पन तानि अगदानि ? यानिमानि, महाराज, भगवता चत्तारि अरियसच्चानि अक्खातानि, सेय्यथीदं—दुक्खं अरियसच्चं, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं। तत्थ केचि अञ्ञापेक्खा चतुसच्चं धम्मं सुणन्ति ते जातिया परिमुच्चन्ति, जराय परिमुच्चन्ति, मरणा परिमुच्चन्ति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चन्ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *अगदापणं* ति।

"ये केचि अगदा लोके, विसानं पटिबाहका।
धम्मागदसमं नत्थि, एतं पिवथ, भिक्खवो" ति॥

१०. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो ओसधापणं" ति ? "ओसधानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि येहि ओसधेहि सो भगवा देवमनुस्से तिकिच्छति, सेय्यथीदं—

कच्चे या पके। क्रेता अपने दिये मूल्य के हिसाब से यदि छोटे चाहता है तो छोटे ही लेता है, यदि बड़े फल चाहता है तो बड़े ही लेता है, यदि कसैले फल चाहता है तो कसैले ही लेता है, यदि कच्चे चाहता है तो कच्चे ही लेता है और यदि पके चाहता है तो पके ही लेता है। महाराज! इस तरह, जो जैसा फल चाहता है, वह कर्मरूपी मूल्य से वैसा ही खरीदता है– चाहे स्रोतआपत्तिफल....। महाराज बुद्ध की यही 'फल की दुकान' है। (३)

'कर्मरूपी मूल्य देकर लोग अमृतफल (अर्हत्पद) खरीदते हैं। उससे वे सुखी होते हैं, जो अमृतफल खरीदते हैं।'

९. "भन्ते नागसेन! भगवान् की 'अगद (विषनाशक औषध) की दुकान' क्या है?" "महाराज! भगवान् ने वे विषनाशक औषध बतायी हैं, जिनसे उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को क्लेश–विष से मुक्त कर दिया था। वे औषध कौन सी हैं? महाराज! भगवान् ने जो ये चार आर्यसत्य बताये हैं– १. दुःख आर्यसत्य, २. दुःखसमुदय आर्यसत्य, ३. दुःखनिरोध आर्यसत्य और ४. दुःख–निरोधगामी मार्ग आर्यसत्य। जो मुमुक्षु इन चार आर्यसत्यों से युक्त बुद्धधर्म को सुनता है, वह जन्म, जरा और मरण से छूट जाता है, शोक, रोने–पीटने, दुःख, चिन्ता और उद्विग्नता से छूट जाता है। महाराज! यही भगवान् की 'औषध की दुकान' है।" (४)

'संसार में विषनाशक जितनी औषधियाँ हैं, उनमें धर्मरूपी औषध के समान कोई नहीं है। भिक्षुओ! इसे पीओ।।'

१०. "भन्ते नागसेन! उनकी 'जड़ी–बूटी की दूकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने ये

चत्तारो सतिपट्ठाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। एतेहि ओसधेहि भगवा मिच्छादिट्ठिं विरेचेति, मिच्छासङ्कप्पं विरेचेति, मिच्छावाचं विरेचेति, मिच्छाकम्मन्तं विरेचेति, मिच्छाआजीवं विरेचेति, मिच्छावायामं विरेचेति, मिच्छासतिं विरेचेति, मिच्छासमाधिं विरेचेति; लोभवमनं कारेति, दोसवमनं कारेति, मानवमनं कारेति, दिट्ठिवमनं कारेति, विचिकिच्छावमनं कारेति, उद्धच्चवमनं कारेति, थीनमिद्धवमनं कारेति, अहिरिकानोत्तप्पवमनं कारेति, सब्बकिलेसवमनं कारेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *ओसधापणं* ति।

"ये केचि ओसधा लोके, विज्जन्ति विविधा बहू।
धम्मोसधसमं नत्थि, एतं पिवथ भिक्खवो॥
धम्मोसधं पिवित्वान, अजरामरणा सियुं।
भावयित्वा च पस्सित्वा, निब्बुता उपधिक्खये" ति॥

११. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो अमतापणं" ति? "अमतं खो, महाराज, भगवता, अक्खातं येन अमतेन सो भगवा सदेवकं लोकं अभिसिञ्चि, येन अमतेन अभिसत्ता देवमनुस्सा जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चिंसु। कतमं तं अमतं? यदिदं कायगता सति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'अमतं ते, भिक्खवे, परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं परिभुञ्जन्ती' *(दी० नि०, म० स० प० सु०)* ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *अमतापणं* ति।

"ब्याधितं जनतं दिस्वा अमतापणं पसारयि।
कम्मेन तं किणित्वान, अमतं आदेथ, भिक्खवो" ति॥

जड़ी–बूटियाँ बतायी हैं, जिन से उन्होंने देवताओं और मनुष्यों की चिकित्सा की थी— चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग— इन बूटियों से भगवान् विरेचन देकर मिथ्यादृष्टि (झूठे सिद्धान्त), मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावचन, मिथ्याकर्मान्त, मिथ्याजीविका, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति और मिथ्यासमाधि को हटा देते हैं; लोभ, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, औद्धत्य, आलस्य, निर्लज्जता, अनवत्राप्य एवं सभी क्लेशों का वमन करा देते हैं। महाराज! यही बुद्ध की 'जड़ी–बूटी की दुकान' है। (५)

"संसार में जो नाना प्रकार की जड़ी–बूटियाँ हैं, इस धर्मरूपी बूटी के समान कोई नहीं है। भिक्षुओ! इन्हें पीओ।।"

"धर्म की बूटी को पी कर अजर–अमर हो जाओ। भावना करते हुए परम–ज्ञान को साक्षात् कर सभी उपधियों के मिट जाने पर निर्वाण पा लो।।"

११. "भन्ते नागसेन! उनकी 'अमृत की दुकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने वह अमृत भी बतलाया है, जिस अमृत से भगवान् ने देवताओं और मनुष्यों से युक्त समग्र संसार को भर दिया, जिससे सभी देवता और मनुष्य जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, रोने–पीटने, दुःख, चिन्ता और परेशानी से मुक्त हो गये। वह अमृत कौन सा है? वह कायगतास्मृति है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है— 'भिक्षुओ! जो कायगता स्मृति का अभ्यास करते हैं, वे मानों अमृत ही पीते हैं।' महाराज! भगवान् की यह 'अमृत की दुकान है'। (६)

१२. ''भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो रतनापणं'' ति ? ''रतनानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि येहि रतनेहि भूसिता भगवतो पुत्ता सदेवकं लोकं विरोचेन्ति ओभासेन्ति पभासेन्ति जलन्ति पज्जलन्ति, उद्धं अधो तिरियं आलोकं दस्सेन्ति। कतमानि तानि रतनानि ? १. सीलरतनं, २. समाधिरतनं, ३. पञ्ञारतनं, ४. विमुत्तिरतनं, ५. विमुत्तिञाणदस्सनरतनं, ६.पटिसम्भिदारतनं, ७.बोज्झङ्गरतनं।

''कतमं, महाराज, भगवतो सीलरतनं ? पातिमोक्खसंवरसीलं इन्द्रियसंवरसीलं आजीवपारिसुद्धिसीलं पच्चयसन्निस्सितसीलं चूळसीलं मज्झिमसीलं महासीलं मग्गसीलं फलसीलं। सीलरतनेन खो, महाराज, विभूसितस्स पुग्गलस्स सदेवको लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा पिहयति पत्थेति। सीलरतनपिलन्धो खो, महाराज, भिक्खु दिसं पि अनुदिसं पि उद्धं पि अधो पि तिरियं पि विरोचति अतिविरोचति। हेट्ठतो अवीचिं, उपरितो भवग्गं उपादाय एत्थन्तरे सब्बरतनानि अतिक्कमित्वा अतिसयित्वा अज्झोत्थरित्वा तिट्ठति। एवरूपानि खो, महाराज, सीलरतनानि भगवतो रतनापणे पसारितानि। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *सीलरतनं* ति।

''एवरूपानि सीलानि, सन्ति बुद्धस्स आपणे।
कम्मेन तं किणित्वान, रतनं वो पिलन्धथा ति॥

१३. ''कतमं, महाराज, भगवतो समाधिरतनं ? सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्क-विचारमत्तो समाधि, अवितक्कअविचारो समाधि, सुञ्ञतो समाधि, अनिमित्तो समाधि,

---

''रोगग्रस्त जनता को देख कर उन्होंने अमृत की दुकान खोल दी है। कर्मरूपी मूल्य दे कर, भिक्षुओ! वह अमृत ले लो।।''

१२. ''भन्ते नागसेन! उनकी 'रत्न की दूकान' कौन सी है?'' ''महाराज! भगवान् ने उन रत्नों को भी बताया है, जिनसे अलंकृत कर उनके पुत्र (बौद्ध–भिक्षु) देवताओं और मनुष्यों के साथ समग्र संसार को जगमगा देते हैं, चमका देते हैं, ऊपर–नीचे, टेढ़े सभी जगह प्रज्वलित होकर प्रकाश कर देते हैं। वे कौन से रत्न हैं? १. शील, २. समाधि, ३. प्रज्ञा, ४. विमुक्ति, ५. विमुक्तिज्ञानदर्शन, ६. प्रतिसंविद् और ७. बोध्यङ्ग।

''भगवान् का यह शीलरत्न क्या है? १. प्रातिमोक्षसंवरशील, २. इन्द्रियसंवरशील, ३. आजीवपारिशुद्धिशील, ४. प्रत्ययसन्निःसृतशील, ५. लघुशील, ६. मध्यमशील, ७. महाशील, ८. मार्गशील और ९. फलशील। महाराज! जो लोग शीलरत्न से विभूषित हैं, उन्हें देखकर देवता, मनुष्य, मार, ब्रह्मा, श्रमण, ब्राह्मण सभी की कांक्षा और इच्छा हो जाती है। महाराज! भिक्षु शीलरत्न से सुसज्जित होकर अपनी शोभा से दिशाओं, अनुदिशाओं को, ऊपर नीचे और टेढ़े भी भर देता है। सबसे नीचे अवीचि नरक से लेकर सब से ऊपर स्वर्गलोक तक जितने दूसरे रत्न हैं सभी से यह शीलरत्न बढ़ जाता है, आगे हो जाता है, सभी को पराजित कर देता है। महाराज! भगवान् की रत्न की दुकान में इस प्रकार का शील–रत्न है। महाराज! यही भगवान् का 'शीलरत्न' कहा जाता है।

'ऐसे शीलरत्न बुद्ध की दूकान में मिलते हैं। कर्मरूपी मूल्य से खरीद कर वह इन रत्नों को धारण करे।' (१)

१३. ''भगवान् का 'समाधिरत्न' क्या है? १. सवितर्क सविचार, २. अवितर्क विचारमात्र, ३.

अप्पणिहितो समाधि। समाधिरतनं खो, महाराज, पिलन्धस्स भिक्खुनो ये ते कामवितक्का ब्यापादवितक्का विहिंसावितक्का मानुद्धच्चदिट्ठिविचिकिच्छाकिलेसवत्थूनि विविधानि च कुवितक्कानि, ते सब्बे समाधिं आसज्ज विकिरन्ति विधमन्ति विद्धंसन्ति, न सण्ठन्ति न उपलिम्पन्ति। यथा, महाराज, वारि पोक्खरपत्ते विकिरति विधमति विद्धंसति, न सण्ठति न, उपलिम्पति, तं किस्स हेतु ? परिसुद्धत्ता पदुमस्स; एवमेव खो, महाराज, समाधिरतनं पिलन्धस्स भिक्खुनो ये ते कामवितक्कब्यापादवितक्कविहिंसावितक्कमानुद्धच्चदिट्ठिविचिकिच्छाकिलेस-वत्थूनि विविधानि च कुवितक्कानि ते सब्बे समाधिं आसज्ज विकरन्ति विधमन्ति विद्धंसन्ति, न सण्ठन्ति न उपलिम्पन्ति। तं किस्स हेतु ? परिसुद्धता समाधिस्स। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *समाधिरतनं* ति। एवमेव खो, महाराज, समाधिरतनानि भगवतो रतनापणे पसारितानि।

"समाधिरतनमालस्स, कुवितक्का न जायरे।
न च विक्खिपते चित्तं, एतं तुम्हे पिलन्धथा ति॥

१४. "कतमं, महाराज, भगवतो पञ्ञारतनं ? याय, महाराज, पञ्ञाय अरियसावको 'इदं कुसलं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं अकुसलं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं सावज्जं', 'इदं अनवज्जं', 'इदं सेवितब्बं', 'इदं न सेवितब्बं', 'इदं हीनं', 'इदं पणीतं', 'इदं कण्हं' 'इदं सुक्कं', 'इदं कण्हसुक्कसप्पटिभागं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पञ्ञारतनं* ति।

"पञ्ञारतनमालस्स, न चिरं वत्तते भवो।
खिप्पं फस्सेति अमतं, न च सो रोचते भवे ति॥

अवितर्क अविचार, ४. शून्यता, ५. अनिमित्त और ६. अप्रणिहित समाधि। महाराज! समाधिरत्न से सुसज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क, मान, औद्धत्य, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, क्लेश, पाप तथा नाना कुतर्क— सभी समाधि के लगते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, उन में कुछ भी बचे नहीं रह सकते। महाराज! जैसे जल पद्म के पत्र पर नहीं ठहर सकता, वह गिर जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि पद्म का पत्र बहुत शुद्ध और चिकना है; महाराज! इसी तरह, समाधि से सुसज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिसावितर्क, मान, औद्धत्य, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, क्लेश, पाप तथा नाना कुतर्क—सभी समाधि पाते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि समाधि अत्यन्त शुद्ध है। महाराज! इसी को भगवान् का 'समाधिरत्न' कहते हैं। महाराज! ऐसे समाधिरत्न भगवान् की 'रत्न की दूकान' में हैं।

"जिसने अपने मुकुट में यह समाधिरत्न जड़ लिया, उसे कुतर्क नहीं सता सकते, उसका चित्त कभी भी चञ्चल नहीं हो सकता, उसे आप भी पहनें।। (२)

१४. "भगवान् का 'प्रज्ञारत्न' क्या है? महाराज!.... जिस प्रज्ञा से अच्छे भिक्षु 'यह पुण्य है, यह पाप है'— ऐसा ठीक–ठीक जान सकते हैं। 'यह बुरा है, यह भला है, यह करने योग्य है, यह न करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, यह काला है, यह उजला है, यह काला और उजला दोनों हैं'— ऐसा ठीक–ठीक जानते हैं। 'यह दुःख है, यह दुःखसमुदय है, यह दुःखनिरोध है, यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'— ऐसा ठीक ठीक जान सकता है। महाराज! इसी को भगवान् का 'प्रज्ञारत्न' कहते हैं।

१५. ''कतमं, महाराज, भगवतो विमुत्तिरतनं? विमुत्तिरतनं खो, महाराज, अरहत्तं वुच्चति, अरहत्तं पत्तो खो, महाराज, भिक्खु विमुत्तिरतनं पिलन्धो ति वुच्चति। यथा, महाराज, पुरिसो मुत्ताकलाप-मणिकलाप-पवालकलांपाभरणप्पटिमण्डितो अगलुतालीसकलोहित-चन्दनानुलित्तगत्तो नागपुन्नागसालसलळचम्पकयूथिकातिमुत्तकपाटलुप्पलवस्सिकमल्लिका-विचित्तो सेसजने अतिक्कमित्वा विरोचति अतिरोचति ओभासति पभासति सम्पभासति जलति पज्जलति अभिभवति अज्झोत्थरति मालागन्धरतनाभरणेहि; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो खीणासवो विमुत्तिरतनपिलन्धो उपादायुपादाय विमुत्तानं भिक्खूनं अतिक्कमित्वा समतिक्कमित्वा विरोचति अतिरोचति ओभासति पभासति सम्पभासति जलति पज्जलति अभिभवति अज्झोत्थरति विमुत्तिया। तं किस्स हेतु? अग्गं, महाराज, एतं पिळन्धनं सब्बपिळन्धानं यदिदं विमुत्तिपिळन्धनं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *विमुत्तिरतनं* ति।

''मणिमालाधरं गेहजनो सामिं उदिक्खति।
विमुत्तिरतनमालं तु, उदिक्खन्ति सदेवका'' ति॥

१६. ''कतमं, महाराज, भगवतो विमुत्तिञाणदस्सनरतनं? पच्चवेक्खणञाणं, महाराज, भगवतो विमुत्तिञाणदस्सनरतनं ति वुच्चति, येन ञाणेन अरियसावको मग्गफल-निब्बानानि पहीनकिलेसावसिट्ठकिलेसे च पच्चवेक्खति।

''येन ञाणेन बुज्झन्ति, अरिया कतकिच्चतं।
तं ञाणरतनं लद्धं, वायमेथ जिनोरसा ति॥

''जिसने प्रज्ञारत्न अपने शिर पर लगा लिया, वह आवागमन के प्रपञ्च में बहुत समय नहीं रहता। वह शीघ्र ही अमृतमद पा लेता है, क्योंकि बार-बार जन्म लेने में उसे आनन्द नहीं आता। (३)

१५. ''भगवान् का 'विमुक्तिरत्न' क्या है? महाराज अर्हत्पद ही विमुक्तिरत्न कहलाता है। अर्हत् होकर भिक्षु विमुक्तिरत्न से शोभित हो जाता है। महाराज! जैसे कोई पुरुष मोती, माला, मणि, सोने और मूँगे के आभूषणों से विभूषित होकर अगर, तगर, तालीस, लाल चन्दन इत्यादि के लेप से अपने गात्र को सुगन्धित बना ले; नाग, पुन्नाग, साल, सलल, चम्पक, जूही, अतिमुक्तक, गुलाब, कमल, मालती, मल्लिका इत्यादि फूलों के हारों से अपने को सजा ले तो वह पुरुष दूसरे लोगों से कितना अधिक (बढ़-चढ़ कर) शोभित होगा, अच्छा लगेगा, चमकेगा और मनोहर लगेगा; महाराज! इसी तरह, अर्हत् पद पा कर क्षीणास्रव भिक्षु विमुक्तिरत्न से सजकर दूसरे भिक्षुओं से बहुत बढ़-चढ़ कर लगता है, चमकता है और सुहावना लगता है। वह क्यों? क्योंकि यह विमुक्तिरत्न सभी आभूषणों में ही सर्वोच्च आभूषण है। महाराज! इसी को भगवान् का 'विमुक्तिरत्न' कहते हैं।

''जैसे शिर पर मणि धारण करने से घर के सभी लोग स्वामी की ही ओर देखने लगते हैं; वैसे ही विमुक्तिरत्न शिर पर लगा लेने से देवता लोग भी उसी की ओर देखने लगते हैं।। (४)

१६. ''महाराज! भगवान् का कौन सा 'विमुक्तिज्ञानदर्शनरत्न' है? महाराज! प्रत्यवेक्षण-ज्ञान ही भगवान् का विमुक्तिज्ञानदर्शन रत्न कहा जाता है, जिस ज्ञानदर्शन से अच्छे भिक्षु मार्ग फल, निर्वाण पाते हैं। सभी क्लेशों के क्षीण हो जाने पर अपने कुछ बचे हुए क्लेशों का प्रत्यवेक्षण करते हैं।

''जिस ज्ञान से वे समझ लेते हैं कि उन्हें जो कुछ करना था सो पूरा कर लिया, भिक्षुओ! उस ज्ञान-रत्न को पाने के लिये उद्योग करो।'' (५)

१७. ''कतमं, महाराज, भगवतो पटिसम्भिदारतनं? चतस्सो खो, महाराज, पटिसम्भिदायो— (क) अत्थपटिसम्भिदा, (ख) धम्मपटिसम्भिदा, (ग) निरुत्तिपटिसम्भिदा, (घ) पटिभानपटिसम्भिदा ति। इमेहि, खो महाराज, चतूहि पटिसम्भिदारतनेहि समलङ्कतो भिक्खु यं यं परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं, विसारदो उपसङ्कमति, अमङ्कुभूतो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी विगतलोमहंसो परिसं उपसङ्कमति।

''यथा, महाराज, योधो सङ्गामसूरो सन्नद्धपञ्चावुधो अच्छम्भितो सङ्गामं ओतरति— 'सचे अमित्ता दूरे भविस्सन्ति उसुना पाययिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति सत्तिया पहरिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति कणयेन पहरिस्सामि, उपगतं सन्तं मण्डलग्गेन द्विधा छिन्दिस्सामि, कायूपगतं छुरिकाय विनिविज्झिस्सामी' ति; एवमेव खो, महाराज, चतुपटिसम्भिदारतनमण्डितो भिक्खु अच्छम्भितो परिसं उपसङ्कमति— 'यो कोचि मं अत्थपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स अत्थं कथयिस्सामि, कारणेन कारणं कथयिस्सामि, हेतुना हेतुं कथयिस्सामि, नयेन नयं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन'। (क)

''यो कोचि मं धम्मपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स धम्मेन धम्मं कथयिस्सामि, अमतेन अमतं कथयिस्सामि, असङ्खतेन असङ्खतं कथयिस्सामि, निब्बानेन निब्बानं कथयिस्सामि, सुञ्ञताय सुञ्ञतं कथयिस्सामि, अनिमित्तेन अनिमित्तं कथयिस्सामि, अप्पणिहितेन अप्पणिहितं कथयिस्सामि, अनेजेन अनेजं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन। (ख)

---

१७. ''महाराज! भगवान् का 'प्रतिसंविद्रत्न' कौन सा है? महाराज! चार प्रतिसंविद् हैं– १. अर्थप्रतिसंविद्, २. धर्मप्रतिसंविद्, ३. निरुक्तिप्रतिसंविद् और ४. प्रतिभानप्रतिसंविद्। महाराज! इन्हीं चार प्रतिसंविद् रत्नों से सज्जित होकर भिक्षु जिस किसी सभा में जाता है, चाहे क्षत्रियसभा हो या ब्राह्मणसभा या वैश्यसभा या भिक्षुसभा, वहाँ वह विना किसी संकोच के निर्भय हो कर जाता है; गूंगा हो कर, डर कर, घबरा कर या चौकन्ना होकर नहीं जाता और न कहीं जाने से उसे रोमाञ्च होता है।

''महाराज! जैसे कोई वीर योद्धा पाँच आयुधों से सन्नद्ध हो कर युद्धक्षेत्र में भयरहित उतरता है। वह मन में विचार करता है– 'यदि शत्रु दूर होंगे तो उन्हें तीर चला कर मारूँगा, यदि कुछ पास में होंगे तो भाला चला कर मारूँगा, यदि कुछ और पास में होंगे तो उन्हें बर्छी चला कर मारूँगा, यदि और भी निकट चले आवेंगे तो मैं उन्हें तलवार से दो टुकड़े कर दूँगा, यदि वे सर्वथा शरीर के पास आ जायेंगे तो फरसे से काट दूँगा'; महाराज! इसी तरह, चार प्रतिसंविद् से सज्जित भिक्षु अभय होकर किसी सभा में प्रवेश करता है। उसे स्वयं में पूरा विश्वास रहता है। वह समझता है–'जो मुझे अर्थप्रतिसंविद् के विषय में पूछेगा, उसको अर्थ से कह कर उत्तर दे दूँगा, हेतु से हेतु दिखा दूँगा, तर्क से तर्क कहूँगा, उसके सभी संशय दूर कर दूँगा, उसका भ्रम मिटा दूँगा, प्रश्न का सही उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा'। (क)

''जो कोई मुझसे धर्मप्रतिसंविद् के विषय में प्रश्न पूछेगा उसको धर्म से धर्म, अमृत से अमृत,

"यो कोचि मं निरुत्तिपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स निरुत्तिया निरुत्तिं कथयिस्सामि, पदेन पदं कथयिस्सामि, अनुपदेन अनुपदं कथयिस्सामि, अक्खरेन अक्खरं कथयिस्सामि, सन्धिया सन्धिं कथयिस्सामि, ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं कथयिस्सामि, अनुब्यञ्जनेन अनुब्यञ्जनं कथयिस्सामि, वण्णेन वण्णं कथयिस्सामिं, सरेन सरं कथयिस्सामि, पञ्ञत्तिया पञ्ञत्तिं कथयिस्सामि, वोहारेन वोहारं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमत्तिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन। (ग)

"यो कोचि मं पटिभानपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स पटिभानेन पटिभानं कथयिस्सामि, ओपम्मेन ओपम्मं कथयिस्सामि लक्खणेन लक्खणं कथयिस्सामि, रसेन रसं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्समि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेना ति। (घ)

"इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पटिसम्भिदारतनं*। (६)

"पटिसम्भिदा किणित्वान, ञाणेन फस्सयेय्य यो।
अच्छम्भितो अनुब्बिग्गो, अतिरोचति सदेवके ति॥

१८. "कतमं, महाराज, भगवतो बोज्झङ्गरतनं? सत्तिमे, महाराज, बोज्झङ्गा— सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो, विरियसम्बोज्झङ्गो, पीतिसम्बोज्झङ्गो, पस्सद्धि-सम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो। इमेहि खो, महाराज, सत्तहि बोज्झङ्गेहि पटिमण्डितो भिक्खु सब्बं तमं अभिभुय्य सदेवकं लोकं ओभासेति पभासेति आलोकं जनेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *बोज्झङ्गरतनं* ति।

अनिर्वचनीय से अनिर्वचनीय, निर्वाण से निर्वाण, शून्यता से शून्यता, अनिमित्त से अनिमित्त, अप्रणिहित से अप्रणिहित और शान्त से शान्त को कहूँगा, उसके सभी सन्देह दूर कर दूँगा, सारी शङ्काएँ मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उचित उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (ख)

"जो कोई मुझसे निरुक्ति—प्रतिसंविद् के विषय में पूछेगा उसको निरुक्ति से निरुक्ति, पद से पद, अनुपद से अनुपद, अक्षर से अक्षर, सन्धि से सन्धि, व्यञ्जन से व्यञ्जन, अनुव्यञ्जन से अनुव्यञ्जन, वर्ण से वर्ण, स्वर से स्वर, प्रज्ञप्ति से प्रज्ञप्ति, व्यवहार से व्यवहार बता दूँगा, उसके सभी सन्देह, सभी शङ्का मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (ग)

"जो कोई मुझसे प्रतिभान—प्रतिसंविद् के विषय में प्रश्न पूछेगा उसे प्रतिभान से प्रतिभान, उपमा से उपमा, लक्षण से लक्षण, रस से रस बताकर उसके सभी सन्देह, सभी शङ्काएँ मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (घ)

"महाराज! इसी को भगवान् का 'प्रतिसंविद्रत्न' कहते हैं।

"जो ज्ञान से प्रतिसंविद् को पा लेता है, वह देवताओं और मनुष्यों के साथ इस समग्र संसार में निर्भय और अनुद्विग्न होकर रहता है।। (६)

१८. "भगवान् के 'बोध्यङ्गरत्न' कौन से हैं? महाराज! बोध्यङ्ग सात हैं—१. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग, ४. प्रीतिसम्बोध्यङ्ग, ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग, ६. समाधिसम्बोध्यङ्ग, और ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग। महाराज! इन सात सम्बोध्यङ्गों से अलंकृत हो कर भिक्षु समग्र अंधकार को दूर हटा कर लोक को अपनी चमक से चमका कर प्रकाशित कर देता है। महाराज! इसी को भगवान् का 'बोध्यङ्गरत्न' कहते हैं।

''बोज्झङ्गरतनभालस्स, उट्ठहन्ति सदेवका।
कम्मेन तं किणित्वान, रतनं वो पिलन्धथा'' ति॥ (७)

१९. ''भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो सब्बापणं'' ति? ''सब्बापणं खो, महाराज, भगवतो नवङ्गं बुद्धवचनं, सारीरिकानि पारिभोगिकानि चेतियानि, सङ्घरतनं च। सब्बापणे, महाराज, भगवता जातिसम्पत्ति पसारिता, भोगसम्पत्ति पसारिता, आयुसम्पत्ति पसारिता, आरोग्यसम्पत्ति पसारिता, वण्णसम्पत्ति पसारिता, पञ्ञासम्पत्ति पसारिता, मानुसिकसम्पत्ति पसारिता, दिब्बसम्पत्ति पसारिता, निब्बानसम्पत्ति पसारिता। तत्थ ये तं तं सम्पत्तिं इच्छन्ति ते कम्ममूलं दत्वा पत्थितपत्थितं सम्पत्तिं किणन्ति— केचि सीलसमादानेन किणन्ति, केचि उपोसथकम्मेन कीणन्ति! अप्पमत्तकेन पि कम्ममूलेन उपादायुपादाय सम्पत्तियो पटिलभन्ति। यथा, महाराज, आपणिकस्स आपणे तिलमुग्गमासे परित्तकेन पि तण्डुलमुग्गमासेन अप्पकेन पि मूलेन उपादायुपादाय गण्हन्ति; एवमेव खो, महाराज, भगवतो सब्बापणे अप्पमत्तकेन पि कम्ममूलेन उपादायुपादाय सम्पत्तियो पटिलभन्ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *सब्बापणं* ति।

''आयु अरोगता वण्णं सग्गं उच्चाकुलीनता।
असङ्खतं च अमतं, अत्थि सब्बापणे जिने॥
''अप्पेन बहुकेनापि, कम्ममूलेन गय्हति।
किणित्वा सद्धामूलेन, समिद्धा होथ, भिक्खवो ति॥

धम्मनगरवासिनो—२०. ''भगवतो खो, महाराज, धम्मनगरे एवरूपा जना

''जिसने अपने ललाट पर बोध्यङ्गरत्न लगा दिये हैं (बोज्झङ्गरतनमालस्स—पाठ मानने पर जिसने बोध्यङ्गरत्नमाला धारण कर ली है) उसकी प्रतिष्ठा में देवता और मनुष्य सभी उठ खड़े होते हैं। स्व–कर्म मूल्य द्वारा खरीद कर आप उस रत्न को पहनें।।'' (७)

१९. ''भगवान् की कौन 'सब वस्तुओं की दुकान' है, जहाँ सभी चीजें मिलती हैं? महाराज! भगवान् की यह दुकान है—१. नव अङ्गों से युक्त बुद्ध के वचन, २. शरीरधातु (भगवान् के शरीर की भस्म), ३. बची हुई वे वस्तुएँ जिनका भगवान् स्वयं उपयोग करते थे, ४. चैत्य एवं ५. सङ्घरत्न। महाराज! इस दुकान में जातिसम्पत्ति, भोगसम्पत्ति, आयुसम्पत्ति, आरोग्यसम्पत्ति, सौन्दर्यसम्पत्ति, प्रज्ञासम्पत्ति, सांसारिकसम्पत्ति, दिव्यसम्पत्ति और निर्वाणसम्पत्ति फैली हुई है, यहाँ जिसको जो रुचिकर हो कर्म का मूल्य दे उस सम्पत्ति को खरीद सकता है। कितने लोग शील का पालन कर, कितने उपोसथव्रत रख कर और थोड़ा–थोड़ा पुण्य कर के ही उसके अनुसार सम्पत्ति खरीदते हैं। महाराज! जैसे अनाज वाले की दूकान में उलट–फेर कर अल्प मूल्य से भी थोड़ा–बहुत खरीदा जा सकता है, वैसे ही भगवान् की इस दूकान में अल्प पुण्य से भी उसी मूल्य के समान वस्तुओं की सम्पत्ति खरीदी जा सकती है। महाराज! यही भगवान् की सब वस्तुओं की दूकान' है, जहाँ सभी चीजें मिलती हैं। (८)

''आयु, आरोग्य, सौन्दर्य, स्वर्ग, उच्च कुल में जन्म होना, अनिर्वचनीय, अमृत, निर्वाण—सभी कुछ भगवान् की इस दुकान मे मिलता है। कर्म का थोड़ा या बहुत मूल्य दे कर वैसा ही लोग खरीदते हैं। भिक्षुओ! श्रद्धा के मूल्य से इन्हें खरीद कर धनी समृद्ध हो जाओ।।

धर्मनगरवासी—२०. ''महाराज! भगवान् के इस धर्मनगर में ऐसे लोग निवास करते हैं— सूत्र,

पटिवसन्ति—सुत्तन्तिका वेनयिका आभिधम्मिका, धम्मकथिका जातकभाणका दीघभाणका मज्झिमभाणका संयुत्तभाणका अङ्गुत्तरभाणका खुद्दकभाणका, सीलसम्पन्ना समाधिसम्पन्ना पञ्ञासम्पन्ना बोज्झङ्गभावनारता विपस्सका सदत्थमनुयुत्ता, आरञ्ञिका रुक्खमूलिका अब्भोकासिका पलालपुञ्जका सोसानिका नेसज्जिका पटिपन्नका फलट्ठा सेक्खा फलसमङ्गिनो, सोतापन्ना सकदागामिनो अनागामिनो अरहन्तो, तेविज्जा छळभिञ्ञा इद्धिमन्तो पञ्ञाय पारमिं गता सतिपट्ठानसम्मप्पधानइद्धिपादइन्द्रियबलबोज्झङ्गमग्गवरझानविमोक्खरूपारूपसन्तसुख-समापत्तिकुसला। तेहि अरहन्तेहि आकुलं समाकुलं आकिण्णं समाकिण्णं नळवनसरवनमिव *धम्मनगरं* अहोसि। भवतीह—

१. "वीतरागा वीतदोसा, वीतमोहा अनासवा।
वीततण्हा अनादाना, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

२. "आरञ्ञिका धुतधरा, झायिनो लूखचीवरा।
विवेकाभिरता धीरा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

३. "नेसज्जिका सन्थतिका, अथो पि ठानचङ्कमा।
पंसुकूलधरा सब्बे, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

४. "तिचीवरधरा सन्ता, चम्मखण्डचतुत्थका।
रत्ता एकासने विञ्ञू, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

५. "अप्पिच्छा निपका धीरा, अप्पाहारा अलोलुपा।
लाभा लाभेन सन्तुट्ठा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

विनय, अभिधर्म के जानने वाले, धर्मोपदेशक, जातक—कथाओं के वाचक, दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय पढ़ने वाले, शीलसम्पन्न, समाधिसम्पन्न, प्रज्ञासम्पन्न, बोध्यङ्गभावना में रत रहने वाले, विपश्यना वाले, अच्छे कर्मों में संलग्न, ध्यानसाधना के लिये जंगल वासी, वृक्ष के नीचे खुले स्थान में, पुआल के ढेर पर और श्मशान में रहने वाले, (आर्य) मार्ग पर आरूढ़ चार फलों में से किसी का साक्षात्कार करने वाले शैक्ष (निर्वाण पाने के लिये जिन्हें अभी सीखना अवशिष्ट है), स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, तीन विद्याओं को जानने वाले, छह अभिज्ञा धारण करने वाले, ऋद्धिमान्, प्रज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुए तथा स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यङ्ग, मार्ग, ध्यान, विमोक्ष, रूप, अरूप, शान्त सुखसमापत्ति में कुशल। वह धर्मनगर बाँस या सरकण्डों के झुण्ड के समान अर्हतों से भरा रहता था। कहा भी है—

(१) "राग, द्वेष, मोह से रहित, क्षीणास्रव, तृष्णारहित तथा उपादाननाशक भिक्षु धर्मनगर में रहते हैं।

(२) "जंगल में रहने वाले, धुताङ्गधारी, ध्यान करने वाले, रूक्ष चीवरों वाले, विवेकरत, धीर लोग धर्मनगर में रहते हैं।।

(३) "आसन लगाये रहने वाले, केवल कभी—कभी सोने वाले और बराबर—चंक्रमण कर ध्यान करने वाले, गुदड़ी (पंसुकूल) धारण करने वाले— ये सभी धर्मनगर में वास करते हैं।।

(४) "तीन चीवर धारण करने वाले, शान्त चर्मखण्डधारक केवल एक बार भोजन करके प्रसन्न रहने वाले विद्वान् ही धर्मनगर में रहते हैं।।

(५) "कम इच्छा वाले, ज्ञानी, धीर, अल्पाहारी, निर्लोभ, जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

६. "झायी झानरता धीरा, सन्तचित्ता समाहिता।
आकिञ्चञ्ञं पत्थयाना, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
७. "पटिपन्ना फलट्ठा च, सेट्ठा फलसमङ्गिनो।
आसिंसका उत्तमत्थं, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
८. "सोतापन्ना च विमला, सकदागामिनो च ये।
अनागामी च अरहन्तो, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
९. "सतिपट्ठानकुसला, बोज्झङ्गभावनारता।
विपस्सका धम्मधरा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१०. "इद्धिपादेसु कुसला, समाधिभावनारता।
सम्मप्पधानमनुयुत्ता, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
११. "अभिञ्ञापारमिप्पत्ता, पेत्तिके गोचरे रता।
अन्तलिक्खम्हि चरणा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१२. "ओक्खित्तचक्खू मितभाणी, गुत्तद्वारा सुसंवुता।
सुदन्ता उत्तमे दम्मे, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१३. "तेविज्जा छळभिञ्ञा च, इद्धिया पारमिं गता।
पञ्ञाय पारमिप्पत्ता, धम्मनगरे वसन्ति ते ति॥

२१. "ये खो ते, महाराज, भिक्खू अपरिमितञ्ञाणवरधरा असङ्गा अतुलगुणा अतुलयसा अतुलबला अतुलतेजा धम्मचक्कानुपवत्तका पञ्ञापारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मसेनापतिनो' ति वुच्चन्ति।

---

(६) "ध्यान करने वाले, ध्यान में रत रहने वाले, धीर, शान्तचित्त और समाधि लगाने वाले, निर्वाण की इच्छा रखने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

(७) "सन्मार्ग पर आ जाने वाले (प्रतिपन्न) फल पाकर रहने वाले, शैक्ष, निर्वाण पद पा लेने वाले, उत्तम पदप्राप्ति में निरत भिक्षु ही धर्मनगर में रहते हैं।।

(८) "मलरहित स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् ही धर्मनगर में बसते हैं।।

(९) "स्मृतिप्रस्थान में कुशल, बोध्यङ्ग की भावना में रत, ज्ञानी, धर्मात्मा, धर्मनगर में रहते हैं।।

(१०) "ऋद्धिपाद में कुशल, समाधि और भावना में रत, सम्यक्प्रधान में लगे भिक्षु धर्मनगर में रहते हैं।।

(११) "अभिज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुए, अपनी पैतृक सम्पत्ति में आनन्द लूटने वाले, आकाश में भ्रमण करने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

(१२) "नीची दृष्टि रखने वाले (नम्र), कम बोलने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, संयमी, इस उत्तम धर्म में आकर विनम्र हुए लोग ही इस धर्मनगर में रहते हैं।।

(१३) "तीन विद्याओं और छह अभिज्ञाओं के धारक और ऋद्धि, प्रज्ञा की सीमा पार कर लेने वाले इस धर्मनगर में रहते हैं।।

२१. "महाराज! जो भिक्षु अनन्तज्ञानी, सांसारिक वस्तुओं में न फँसने वाले, अतुल्य गुण एवं अतुल्य यश वाले, बल वाले, अतुल्य तेज वाले, धर्मचक्र घुमाने वाले और प्रज्ञा की सीमा तक पहुँचे हैं, महाराज! भगवान् के धर्मनगर में इस प्रकार के भिक्षु 'धर्मसेनापति' कहे जाते हैं।

२२. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू इद्धिमन्तो अधिगतपटिसम्भिदा पत्तवेसारज्जा गगनचरा दुरासदा दुप्पसहा अनालम्बचरा ससागरमहीधरपथविकम्पका चन्दसुरियपरिमज्जका विकुब्बनाधिट्ठाना-भिनीहारकुसला इद्धिया पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'पुरोहिता' ति वुच्चन्ति।

२३. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू धुतङ्गमनुगता अप्पिच्छा सन्तुट्ठा विञ्ञत्ति-मनेसनजिगुच्छका पिण्डाय सपदानचारिनो भमरा व गन्धमनुघायित्वा पविसन्ति विवित्तकाननं, काये च जीविते च निरपेक्खा अरहत्तमनुप्पता धुतङ्गगुणे अग्गनिक्खित्ता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'अक्खदस्सा' ति वुच्चन्ति।

२४. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू परिसुद्धा विमला निक्किलेसा चुतूपपातकुसला दिब्बचक्खुम्हि पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'नगरजोतका' ति वुच्चन्ति।

२५. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा सिथिलधनितदीघरस्सगरुकलहुकक्खरपरिच्छेदकुसला नवङ्गसासनधरा, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मरक्खा' ति वुच्चन्ति।

२६. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू विनयञ्ञू विनयकोविदा ठानाठानकुसला आपत्ति-अनापत्तिगरुकलहुकसतेकिच्छअतेकिच्छवुट्ठानदेसनाविग्गहनिग्गहपटिकम्मओसारण-निस्सारणपटिसारणकुसला विनये पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'रूपदक्खा' ति वुच्चन्ति।

---

२२. "महाराज! जो भिक्षु ऋद्धिमान् हैं; प्रतिसंविद् ग्रहण कर चुके हैं, वैशारद्य पा चुके हैं, आकाश में घूमते हैं, परास्त नहीं किये जा सकते, जिनके समान कोई नहीं है, किसी दूसरे पर आलम्बित नहीं रहते, समुद्र और पहाड़ के साथ समग्र पृथ्वी कँपा सकते हैं, चाँद सूरज को भी छू सकते हैं, अपना रूप बदल सकते हैं, दृढ़ सङ्कल्प और ऊँचे उद्देश्य पूर्ण कर सकते हैं और जो ऋद्धि में पूर्ण हैं, वैसे भिक्षु ही इस धर्मनगर में 'पुरोहित' कहे जाते हैं।

२३. "महाराज! जो भिक्षु धुताङ्गधारक हैं, अल्पेच्छ हैं, सन्तुष्ट हैं, दूसरों से कुछ माँगने या स्वयं किसी चीज के पीछे भटकना घृणित समझते हैं, विना कोई घर छोड़े पिण्डपात करते हैं, जैसे भौरा फूल-फूल पर बैठ कर रस लेता है, और उसके बाद एकान्त में चला जाता है, अपने जीवन और शरीर के प्रति निरपेक्ष, अर्हत्-पद जिन्होंने पा लिया है, और जो धुताङ्ग पालन को ही सबसे अच्छा मानते हैं, वे भिक्षु भगवान् के इस धर्मनगर में 'अधिकारी' कहे जाते हैं।

२४. "महाराज! जो भिक्षु परिशुद्ध, निर्मल, क्लेशरहित और सबसे अन्तिम दिव्य ज्ञान को पा चुके हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में 'प्रकाशक' कहे जाते हैं।

२५. "महाराज! जो भिक्षु बड़े विद्वान् हैं, आगम के पण्डित हैं, धर्म को पूरा जानते हैं, विनय को समझते हैं, मातृकाओं को स्मरण रखते हैं, उच्चारण में कुशल हैं, इस नवाङ्ग शासन को जानते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में 'चौकीदार' (धर्मरक्षक) कहे जाते हैं।

२६. "महाराज! जो भिक्षु विनय जानते हैं, विनय की गूढ़ से गूढ़ बातों तक पहुँचे हुए हैं, निदान में कुशल हैं, विनय के सारे कर्म अच्छी तरह कर सकते हैं, और विनय में जो कुछ भी जानने योग्य है उसके ज्ञाता हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'रूपदर्शक' कहे जाते हैं।

२७. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू विमुत्तिवरकुसुममालबद्धा वरप्पवरमहग्घसेट्ठ-भावमनुप्पत्ता बहुजनकन्तमभिपत्थिता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'पुप्फापणिका' ति वुच्चन्ति।

२८. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू चतुसच्चाभिसमयप्पटिविद्धा दिट्ठसच्चा विञ्ञात-सासना चतूसु सामञ्ञफलेसु तिण्णविचिकिच्छा पटिलद्धफलसुखा अञ्ञेसं पि पटिपन्नानं ते फले संविभजन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'फलापणिका' ति वुच्चन्ति।

२९. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू सीलवरगन्धमनुलित्ता अनेकविधबहुगुणधरा किलेसमलदुग्गन्धविधमका; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'गन्धापणिका' ति वुच्चन्ति।

३०. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू धम्मकामा पियसमुदाहारा अभिधम्मे अभिविनये उळारपामोज्जा अरञ्ञगता पि रुक्खमूलगता पि सुञ्ञागारगता पि धम्मवररसं पिवन्ति, कायेन वाचाय मनसा धम्मवररसमोगाळ्हा अधिमत्तपटिभाना धम्मेसु धम्मेसनप्पटिपन्ना इतो वा ततो वा यत्थ यत्थ अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेककथा असंसग्गकथा विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञाकथा विमुत्तिकथा विमुत्तिञाणदस्सनकथा तत्थ तत्थ गन्त्वा तं तं कथारसं पिवन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'सोण्डापिपासा' ति वुच्चन्ति।

---

२७ "महाराज! जो भिक्षु विमुक्ति के पुष्पगुच्छ अपने सिर पर बाँधे हैं, जो उत्तम, अमूल्य और श्रेष्ठ अवस्था पा चुके हैं तथा लोगों के प्रिय और आदरणीय हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में फूल बेचने वाले 'माली' कहे जाते हैं।

२८. "महाराज! जो भिक्षु चार आर्यसत्यों के रहस्य के ज्ञाता हैं, सत्य-ज्ञान का साक्षात्कार कर चुके हैं, जिन्होंने बुद्ध धर्म को पूर्णतः समझ लिया है, जो चारों श्रामण्य फलों में सन्देहरहित हो गये हैं, उन फलों का सुख पा चुके हैं, तथा दूसरे सच्चे मार्ग पर आये लोगों के बीच भी फल का उपदेश करते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में फल बेचने वाले 'फलापणिक' हैं।

२९. "महाराज! जो भिक्षु शील की श्रेष्ठ सुगन्ध से लिप्त हो कर अनेक प्रकार के सद्गुणों के धारक तथा क्लेशरूपी मलिन दुर्गन्ध का नाश कर देने वाले हैं, भगवान् के इस धर्मनगर में वे गन्ध बेचने वाले 'गंधी' कहे जाते हैं।

३०. "महाराज! जो भिक्षु धर्म को ही चाहने वाले हैं, मीठी बातें करने वाले हैं, अभिधर्म और विनय में अत्यन्त आनन्द लेते हैं, जंगल में रह या वृक्ष के नीचे आसन लगा या एकान्त प्रकोष्ठ में बैठ केवल धर्म का ही मीठा रस पीते हैं, शरीर, मन और वचन से एक धर्म के रस में ही डूबे रहते हैं, धर्म में अत्यधिक प्रतिभा रखते हैं, धर्म की खोज में सदा लगे रहते हैं, सर्वत्र अल्पेच्छता की प्रशंसा करते हैं, सन्तोष और विवेक की प्रशंसा करते हैं, सांसारिक जाल से दूर रहने का उपदेश देते हैं, अच्छे काम के प्रयास में सदा लगे रहने को कहते हैं, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्ति-ज्ञानदर्शन का उपदेश करते हैं, जिनके पास लोग जाकर विविध प्रकार का उपदेश ग्रहण करते हैं; वे भगवान् के धर्मनगर में 'मद्यपायी' हैं।

३१. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू पुब्बरत्तापररत्तं जागरियानुयोगमनुयुत्ता निसज्जट्ठान-चङ्कमेहि रत्तिन्दिवं वीतिनामेन्ति, भावनानुयोगमनुयुत्ता किलेसपटिबाहनाय सदत्थप्पसुता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'नगरगुत्तिका' ति वुच्चन्ति।

३२. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू नवङ्गं बुद्धवचनं अत्थतो च ब्यञ्जनतो च नयतो च कारणतो च हेतुतो च उदाहरणतो च वाचेन्ति अनुवाचेन्ति भासन्ति अनुभासन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मापणिका' ति वुच्चन्ति।

३३. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू धम्मरतनभोगेन आगमपरियत्तिसुतभोगेन भोगिनो धनिनो निद्दिट्ठसरब्यञ्जनलक्खणपटिवेधा विञ्ञू फरणा; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मसेट्ठिनो' ति वुच्चन्ति।

३४. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू उळारदेसनापटिवेधा परिचिण्णारम्मणविभत्तिनिद्देसा सिक्खागुणपारमिप्पता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'विस्सुतधम्मिका' ति वुच्चन्ति।

३५. ''एवं सुविभत्तं खो, महाराज, भगवतो धम्मनगरं, एवं सुमापितं, एवं सुविहितं, एवं सुपरिपूरितं, एवं सुववत्थापितं, एवं सुरक्खितं, एवं सुगोपितं, एवं दुप्पसय्हं पच्चत्थिकेहि पच्चामित्तेहि। इमिना, महाराज, कारणेन इमिना हेतुना इमिना नयेन इमिना अनुमानेन ञातब्बं—'अत्थि सो भगवा' ति।

''यथापि नगरं दिस्वा, सुविभत्तं मनोरमं।
अनुमानेन जानन्ति, वड्ढकिस्स महत्तनं॥

---

३१. "महाराज! जो भिक्षु पहली रात्रि से अन्तिम रात्रि तक जागे ही जागे, बैठे ही बैठे, खड़े ही खड़े या टहलते ही टहलते दिन रात ध्यान–भावना करते हैं, भावना करने में सदा लगे रहते हैं, अपने क्लेश को दूर करने में सदा प्रयत्नशील रहते हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'पहरेदार' कहे जाते हैं।

३२. "महाराज! जो भिक्षु भगवान् के नव–अङ्गों वाले धर्म को अर्थ, व्यञ्जन, तर्क, कारण, हेतु और उदाहरण से समझ कर पढ़ते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर के 'अधिवक्ता' कहे जाते हैं।

३३. "महाराज! जो भिक्षु धर्मरत्न से धनी हैं, पुरानी परम्परा का धन रखते हैं, विद्या से धनाढ्य हैं और धर्म के निर्देश, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण तथा गूढ़ तत्त्व के ज्ञान से परिपूर्ण हैं; वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'नगरसेठ' कहे जाते हैं।

३४. "महाराज! जो भिक्षु देशना के रहस्य तक पहुँच गये हैं, ध्यान के अभ्यास के लिये जो विषय बताये गये हैं उनके विभाग और तात्पर्य को समझ गये हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म शिक्षायें पा चुके हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में बड़े विख्यात न्यायविद् कहे जाते हैं।

३५. "महाराज! भगवान् का धर्मनगर इतना अच्छा बसा हुआ है, इतना अच्छा नाप–जोख कर तैयार किया गया है, उसमें ऐसी विशेषता दिखायी गयी है, सभी बातें पूरी की गयी हैं, ऐसी अच्छी व्यवस्था बना दी गयी है, वह इतना रक्षित बना हुआ है कि शत्रु किसी तरफ से भी उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। महाराज! इन सभी को देख कर यह समझना चाहिये कि 'भगवान् अवश्य हुए हैं'।

(१) "जैसे अच्छी तरह विभाजित सुन्दर नगर देख कर लोग उसके निर्माता की निपुणता का ज्ञान कर लेते हैं।।

"तथेव लोकनाथस्स, दिस्वा धम्मपुरं वरं।
अनुमानेन जानन्ति-'अत्थि सो भगवा' इति॥
"अनुमानेन जानन्ति, ऊमी दिस्वान सागरे।
यथायं दिस्सते ऊमी, महन्तो सो भविस्सति॥
"तथा बुद्धं सोकनुदं, सब्बत्थमपराजितं।
तण्हक्खयमनुप्पत्तं, भवसंसारमोचनं॥
"अनुमानेन ञातब्बं, ऊमी दिस्वा सदेवके।
यथा धम्मूमिविप्फारो, अग्गो बुद्धो भविस्सति॥
"अनुमानेन जानन्ति, दिस्वा अच्चुग्गतं गिरिं।
यथा अच्चुग्गतो एसो, हिमवा सो भविस्सति॥
"तथा दिस्वा धम्मगिरिं, सीतिभूतं निरूपधिं।
अच्चुग्गतं भगवतो, अचलं सुप्पतिट्ठितं॥
"अनुमानेन ञातब्बं, दिस्वान धम्मपब्बतं।
तथा हि सो महावीरो, अग्गो बुद्धो भविस्सति॥
"यथा पि गजराजस्स, पदं दिस्वान मानुसा।
अनुमानेन जानन्ति—'महा एसो गजो' इति॥
"तथेव बुद्धनागस्स, पदं दिस्वा विभाविनो।
अनुमानेन जानन्ति-उळारो सो भविस्सति॥
"अनुमानेन जानन्ति, भीते दिस्वान कुम्मिगे।
'मिगराजस्स सद्देन, भीतामे कुम्मिगा' इति॥

---

(२) "वैसे ही लोकनाथ (बुद्ध) के इस धर्मपुर को देख कर वे भगवान् कैसे थे?— लोग इसका अनुमान लगा लेते हैं।।

(३) "समुद्र की तरङ्गों को देख कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि जैसी ये तरङ्गें हैं, वैसा ही बड़ा समुद्र होगा।।

(४–५) "वैसे ही शोक दूर करने वाले तृष्णा नष्ट कर देने वाले और भवसागर से पार लगा देने वाले अपराजेय बुद्ध केबारे में देवताओं और मनुष्यों में तरङ्गों को देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये, जैसे ये धर्म की तरङ्गें उठ रही हैं; वैसे ही वे बुद्ध भी महान् होंगे। जैसे बड़ी ऊँची चोटी को देख कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि इतनी ऊँची चोटी नीला पर्वत हिमालय ही होगा।।

(६) "वैसे ही धर्म की चोटी को देख जो (तृष्णा की ज्वाला से) ठंडी और उपाधिरहित हो गयी है, भगवान् के इस ऊँचे, भव्य और महान् धर्मपर्वत को देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि वे श्रेष्ठ महावीर बुद्ध कैसे होंगे।।

(७) "जैसे गजराज के पैर देख कर मनुष्य अनुमान लगा लेते हैं कि यह हाथी बहुत विशालकाय होगा।।

(८) "वैसे ही बुद्ध गजराज के चरणों को देख कर बुद्धिमान् लोग अनुमान लगा लेते हैं कि वे कैसे महान् होंगे।।

"तथेव तित्थिये दिस्वा, वित्थते भीतमानसे।
अनुमानेन ञातब्बं, धम्मराजेन गज्जितं॥
"निब्बुतं पठविं दिस्वा, हरितपत्तं महोदिकं।
अनुमानेन जानन्ति, महामेघेन निब्बुतं॥
"तथेविमं जनं दिस्वा, आमोदितपमोदितं।
अनुमानेन ञातब्बं, धम्ममेघेन तप्पितं॥
"लग्गं दिस्वा भुसं पङ्कं, कललद्दगतं महिं।
अनुमानेन जानन्ति, वारिक्खन्धो महग्गतो॥
"तथेविमं जनं दिस्वा, रजपङ्कसमोहितं।
वहितं धम्मनदिया, विसट्ठं धम्मसागरे॥
"धम्मामतगतं दिस्वा, सदेवकमिमं महिं।
अनुमानेन ञातब्बं—धम्मक्खन्धो महग्गतो॥
अनुमानेन जानन्ति, घायित्वा गन्धमुत्तमं।
यथायं वायते गन्धो, हेस्सन्ति पुप्फिता दुमा।
तथेवायं सीलगन्धो, : पवायति सदेवके।
अनुमानेन ञातब्बं-'अत्थि बुद्धो अनुत्तरो' ति॥

३६. "एवरूपेन खो, महाराज, कारणसतेन कारणसहस्सेन हेतुसतेन हेतुसहस्सेन

---

(९) "जंगल के छोटे मोटे जानवरों को डरा देखकर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि सिंह की गर्जना को सुन कर ही ये जंगल के छोटे बड़े पशु डर गये हैं।।

(१०) "वैसे ही दूसरे मत वालों को डर कर भागते देख अनुमान लगा लिया जा सकता है कि यह धर्मराज (बुद्ध) की गर्जना है।।

(११) "पृथ्वी को जल से गीली और हरे पत्तों से शोभित देख कर अनुमान लगा लिया जाता है कि यहाँ भारी वृष्टि हुई होगी।।

(१२) "वैसे ही संसार के लोगों को आमोद–प्रमोदयुक्त देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि धर्ममेघ (बुद्धोपदेश) बरसा होगा।।

(१३) "जल और कीचड़ से सनी हुई भूमि को देख कर अनुमान लगाया जाता है कि अवश्य यहाँ से बड़ी जलधारा बही होगी।।

(१४) "वैसे ही पापरज पापपङ्क–त्यागी जनों को देख कर धर्मनदी, धर्मसमुद्र में बही होगी– यह अनुमान लगाया जा सकता है।।

(१५) "संसार के देवताओं और मनुष्यों को धर्मामृत पाया हुआ देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि यहाँ धर्म की बड़ी धारा बही होगी।।

(१६) "जैसे उत्तम गन्ध को पा कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि जैसी गन्ध बह रही है उस से ज्ञात होता है– ये वृक्ष फूलों से लदे हुए होंगे।।

(१७) "वैसे ही यह शील की गन्ध देवताओं और मनुष्यों में बहती है, इसी से समझ लेना चाहिये कि अलौकिक बुद्ध हुए होंगे।।

३६. "महाराज! इसी प्रकार के सैकड़ों हजारों कारण, तर्क तथा उपमाओं से बुद्धबल क

नयसतेन नयसहस्सेन ओपम्मसतेन ओपम्मसहस्सेन सक्का बुद्धबलं उपदस्सयितुं। यथा, महाराज, दक्खो मालाकारो नानापुप्फरासिम्हा आचरियानुसिट्ठिया पच्चत्तपुरिसकारेन विचित्तं मालागुणरासिं करेय्य; एवमेव खो, महाराज, सो भगवा विचित्तपुप्फरासि विय अनन्तगुणो अप्पमेय्यगुणो, अहमेतरहि जिनसासने मालाकारो विय पुप्फगन्थको पुब्बकानं आचरियानं मग्गेन पि मय्हं बुद्धिबलेन पि असङ्ख्येय्येन पि कारणेन अनुमानेन बुद्धबलं दीपयिस्सामि, त्वं पनेत्थ छन्दं जनेहि सवणाया'' ति।

''दुक्करं, भन्ते नागसेन, अञ्ञेसं एवरूपेन कारणेन अनुमानेन बुद्धबलं उपदस्सयितुं, निब्बुतोम्हि, भन्ते नागसेन, तुम्हाकं परमविचित्तेन पञ्हावेय्याकरणेना'' ति।

२. धुतङ्गपञ्हो

१. पस्सतारञ्ञिके भिक्खू, अज्झोगाळ्हे धुते गुणे।
पुन पस्सति गिही राजा, अनागामिफले ठिते॥
उभो पि ते विलोकेत्वा, उप्पज्जि संसयो महा।
बुज्झेय्य चे गिही धम्मे, धुतङ्गं निप्फलं सिया॥
परवादिवादमथनं, निपुणं पिटकत्तये।
हन्द पुच्छे कथिं सेट्ठं, सो मे कङ्खं विनेस्सती ति॥

२. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—''भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि गिही अगारिको कामभोगी पुत्तदार-सम्बाधसयनं अज्झावसन्तो कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जातरूपरजतं सादियन्तो मणिमुत्ताकञ्चनविचित्तमोळिबन्धो, येन सन्तं परत्तं निब्बानं सच्छिकतं'' ति?

अनुमान लगाया जा सकता है। महाराज! जैसे कोई चतुर माली अपने गुरु से निर्देश के अनुसार अपनी बुद्धि लगा कर नाना प्रकार के फूलों से माला गूँथ कर सुन्दर सजा देता है, वैसे ही मानों मैं बुद्धमन्दिर में उन के अनन्त सद्‌गुणों के फूल की माला गूँथ रहा हूँ—अपने आचार्यों के बतलाने के अनुसार भी और अपनी बुद्धि लगा कर भी। अतः मैं हजारों उपमाओं से बुद्धबल दिखा सकता हूँ, यदि आप सुनना चाहें!"

"भन्ते नागसेन! सम्भवतः दूसरे लोग इस प्रकार के कारण तथा अनुमान को भी सुन कर बुद्धबल का पता न लगा सकें; किन्तु मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास हो गया, मैं शान्त हो गया; क्योंकि आप के उत्तर बहुत ही अद्भुत एवं विचित्र हैं।"

२. धुताङ्गप्रश्न—१. राजा ने भिक्षुओं को घने जङ्गल में पैठ कर धुताङ्ग व्रत पालन करते देखा, फिर उन गृहस्थों को देखा जो अनागामि-फल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे।।

उन दोनों को देख राजा के मन में बड़ा संशय उत्पन्न हुआ, यदि गृहस्थ रह कर ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो (भिक्षुओं द्वारा अनुष्ठित) धुताङ्ग निष्फल ठहरते हैं।।

अच्छा हो कि मैं दूसरों के तर्क का खण्डन करने वाले, त्रिपिटक-पण्डित उन श्रेष्ठ वक्ता से चल कर पूछूँ; वे अवश्य मेरा सन्देह दूर कर देंगे।।

२. तब, राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"भन्ते नागसेन! क्यों कोई गृहस्थ है, जिसने

"न, महाराज, एकञ्ञेव सतं न द्वे सतानि न तीणि चत्तारि पञ्च सतानि न सहस्सं न सतसहस्सं न कोटिसतं न कोटिसहस्सं न कोटिसतसहस्सं। तिट्ठतु, महाराज, दसन्नं वीसतिया सतस्स सहस्सस्स अभिसमयो, कतमेन ते परियायेन अनुयोगं दम्मी" ति!

"त्वमेवेतं ब्रूही" ति। "तेन हि ते, महाराज, कथयिस्सामि सतेन वा सहस्सेन वा सतसहस्सेन वा कोटिया वा कोटिसहस्सेन वा कोटिसतसहस्सेन वा, या काचि नवङ्गे बुद्धवचने सल्लेखिताचारपटिपत्तिधुतगुणवरङ्गनिस्सिता कथा, ता सब्बा इध समोसरिस्सन्ति।

"यथा, महाराज, निन्नुन्नतसमविसमथलाथलदेसभागे अभिवुट्ठं उदकं, सब्बं तं ततो विनिगळित्वा महोदधिं सागरं समोसरति; एवमेव खो, महाराज, सम्पादके सति या काचि नवङ्गबुद्धवचने सल्लेखिताचारपटिपत्तिधुतगुणवरङ्गनिस्सिता कथा, ता सब्बा इध समोसरिस्सन्ति।

"मय्हं पेत्थ, महाराज, परिब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनं समोसरिस्सति, तेनेसो अत्थो सुविभत्तो विचित्तो परिपुण्णो परिसुद्धो समानीतो भविस्सति। यथा, महाराज, कुसलो लेखाचरियो अनुसिट्ठो लेखं ओसारेन्तो अत्तनो ब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनेन लेखं परिपूरेति, एवं सा लेखा समत्ता परिपुण्णा अनूनिका भविस्सति; एवमेव मय्हं पेत्थ परिब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनं समोसरिस्सति, तेनेसो अत्थो सुविभत्तो विचित्तो परिपुण्णो परिसुद्धो समानीतो भविस्सति।

३. "नगरे, महाराज, सावत्थिया पञ्चकोटिमत्ता अरियसावका भगवतो उपासक-

---

अपने घर पर सभी कामगुणों का उपभोग करते, स्त्री और बाल–बच्चों के साथ रहते, काशी का चन्दन लगाते, माला, गन्ध और उबटन का प्रयोग करते, रुपये पैसे के व्यामोह में रहते और मणि–मोती–सोने के आभूषण को पहनते हुए भी परम शान्तपद निर्वाण को साक्षात् कर लिया हो?"

"महाराज! न एक सौ, न दो सौ, न तीन, चार, पाँच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड़, न लाख; अपितु करोड़ों ऐसे गृहस्थ हो चुके हैं, जिन्होंने निर्वाण साक्षात् किया है। महाराज! दश, बीस, सौ या हजार की गणना तो छोड़ दें; मैं किस तरह आप को समझाऊँ!"

"हाँ, उसे आप ही समझावें।" "अच्छा तो मैं समझाता हूँ—महाराज! नवाङ्ग बुद्धवचन में जो पवित्र सदाचार, सच्चे मार्ग पर आना और धुताङ्ग के अच्छे–अच्छे गुण हैं, वे सभी सैकड़ों हजारों बातें इस प्रकरण में आ जाती हैं।

"महाराज! जैसे नीचे–ऊपर, समतल, गड़हा, जल–थल सभी स्थानों में जल बरस कर बहते–बहते अन्त में समुद्र में ही जाकर गिरता है; महाराज! वैसे ही इस प्रकरण को विस्तृत करने में नवाङ्ग बुद्धवचन में जो पवित्र सदाचार, सन्मार्ग पर आना तथा धुताङ्ग के सद्गुण हैं, सभी की बातें समाविष्ट हो जाती है।

"महाराज! यहाँ मुझे अपनी बुद्धि से भी कुछ बातें बतानी होंगी। इस प्रकार, यह बात अच्छी तरह बोधगम्य, विचित्र, परिपूर्ण और प्रतिष्ठित हो जायगी। महाराज! जैसे कुशल लेखक अपनी बुद्धि से किसी लेख को परिपुष्ट कर देते हैं, इस प्रकार वह लेख सुन्दर, पूर्ण और दोषरहित होता है; महाराज! वैसे ही इस प्रकरण में मुझे भी अपनी बुद्धि से कुछ बातें समझानी होंगी। तब यह बात अच्छी तरह बोधगम्य, विचित्र, परिपूर्ण एवं प्रतिष्ठित हो जायगी।

३. "महाराज! श्रावस्ती नगरी में भगवान् के पाँच करोड़ आर्यश्रावक उपासक और उपासिकाएँ

उपासिकायो सत्तपण्णाससहस्सानि तीणि च सतसहस्सानि अनागामिफले पतिट्ठिता, ते सब्बे पि गिही येव, न पब्बजिता। पुन तत्थेव गण्डम्बमूले यमकपाटिहारिये वीसति पाणकोटियो अभिसमिंसु। पुन महाराहुलोवादे, महामङ्गलसुत्तन्ते, समचित्तपरियाये, पराभवसुत्तन्ते, पुराभेदसुत्तन्ते, कलहविवादसुत्तन्ते, चूळब्यूहसुत्तन्ते, महाब्यूहसुत्तन्ते, तुवटकसुत्तन्ते, सारिपुत्तसुत्तन्ते गणनपथमतीतानं देवतानं धम्माभिसमयो अहोसि।

"नगरे राजगहे पञ्ञाससहस्सानि तीणि च सतसहस्सानि अरियसावका भगवतो उपासकउपासिकायो, पुन तत्थेव धनपालहत्थिनागदमने नवुति पाणकोटियो, पारायनसमागमे पासाणकचेतिये चुद्दस पाणकोटियो, इन्दसालगुहायं असीति देवताकोटियो, पुन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये पठमे धम्मदेसने अट्ठारस ब्रह्मकोटियो अपरिमाणा च देवतायो, पुन तावतिंसभवने पण्डुकम्बलसिलायं अभिधम्मदेसनाय असीति देवताकोटियो, देवोरोहणे सङ्कस्सनगरद्वारे लोकविवरणपाटिहारिये पसन्नानं नरमरूनं तिंस कोटियो अभिसमिंसु।

"पुन सक्केसु कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे बुद्धवंसदेसनाय, महासमयसुत्तन्तदेसनाय च गणनपथमतीतानं देवतानं धम्माभिसमयो अहोसि। पुन सुमनमालाकारसमागमे, गरहदिन्न-समागमे, आनन्दसेट्ठिसमागमे, जम्बुकाजीवकसमागमे, मण्डूकदेवपुत्तसमागमे, मट्ठकुण्डलि-देवपुत्तसमागमे, सुलसानगरसोभनिसमागमे, सिरिमानगरसोभिनिसमागमे, पेसकारधीतुसमागमे, चूळसुभद्दासमागमे, साकेतब्राह्मणस्स आळाहनदस्सनसमागमे, सूनापरन्तकसमागमे, सक्कपञ्ह-समागमे, तिरोकुड्डसमागमे, रतनसुत्तसमागमे पच्चेकं चतुरासीतिया पाणसहस्सानं धम्माभिसमयो अहोसि। यावता, महाराज, भगवा लोके अट्ठासि ताव तीसु मण्डलेसु सोळससु महाजनपदेसु

रहती थीं। उनमें एक लाख सत्तावन हजार अनागामिफल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं। फिर गण्डकवृक्ष के नीचे यमक प्रतिहार्य (ऋद्धिबल) दिखाये जाने पर बीस करोड़ (देवता और मनुष्य) प्राणियों को सत्यज्ञान हो गया था। फिर महाराहुलोवाद, महामङ्गलसूत्र, समचित्तपरियाय, पराभवसूत्र, पुराभेदसूत्र, कलहविवादसूत्र, चूळब्यूहसूत्र, महाव्यूहसूत्र, तुवटकसूत्र, सारिपुत्रसूत्र के कहे जाने पर अनन्त देवताओं को धर्मज्ञान हो गया था।

"राजगृह नगर में भगवान् के तीन लाख पचास हजार उपासक और उपासिकायें आर्यश्रावक थीं। फिर वहाँ धनपाल नामक हाथी का दमन करने पर नब्बे करोड़ देवता; पथरीले चैत्य पर पारायणसूत्र कहने के बाद चौदह करोड़ देवता धर्म का साक्षात्कार कर चुके थे। इन्द्रसालगुहा वाराणसी में अस्सी करोड़ देवता; ऋषिपतन मृगदाव में सर्वप्रथम देशना करने पर अट्ठारह करोड़ ब्रह्मा और असङ्ख्य देवता; फिर त्रायस्त्रिंश भवन में पण्डुकम्बलशिला पर अभिधर्म-देशना करने के बाद अस्सी करोड़ देवता; और देवभवन से उतरने के समय साङ्काश्यनगर के फाटक पर लोकविवरणप्रातिहार्य (ऋद्धि) से प्रसन्न हो कर तीस करोड़ मनुष्य और देवता ज्ञानचक्षु प्राप्त कर सके थे।

"फिर, शाक्यों के कपिलवस्तुनगरस्थ न्यग्रोधाराम में बुद्धवंस-देशना और महासमयसूत्र-देशना करने के बाद अगणित देवों को धर्मज्ञान हो गया था। फिर, सुमन नामक माली, गरहदिन्न, आनन्द सेठ, जम्बुकाजीवक, मण्डूक देवपुत्र, मट्ठकुण्डलि देवपुत्र, सुलसा नामक वेश्या, सिरिमा नामक वेश्या, जुलाहे की लड़की, छोटी सुभद्रा, साकेत ब्राह्मण की अन्त्येष्टि क्रिया देखने आये लोग, सूनापरन्तक, शक्रप्रश्न, तिरोकुड्ड और रत्नसूत्र की देशना करने पर चौरासी-हजार प्राणियों को धर्मज्ञान करा दिया

यत्थ यत्थ भगवा विहासि तत्थ तत्थ येभुय्येन द्वे तयो चत्तारो पञ्च सतं सहस्सं सतसहस्सं देवा च मनुस्सा च सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरिंसु। ये ते, महाराज, देवा गिही येव, न ते पब्बजिता। एतानि चेव, महाराज, अञ्ञानि च अनेकानि देवताकोटिसतसहस्सानि गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरिंसू'' ति।

४. ''यदि, भन्ते नागसेन, गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, अथ इमानि धुतङ्गानि किमत्थं साधेन्ति? तेन कारणेन धुतङ्गानि अकिच्चकरानि होन्ति! यदि, भन्ते नागसेन, विना मन्तोसधेहि ब्याधयो वूपसमन्ति, किं वमनविरेचनादिना सरीरदुब्बलकरणेन! यदि मुट्ठीहि पटिसत्तुनिग्गहो भवति, किं असिसत्तिसरधनुकोदण्ड-लगुळमुग्गरेहि? यदि गण्ठिकुटिलसुसिरकण्टकलतासाखा आलम्बित्वा रुक्खमभिरूहनं भवति, किं दीघदळ्हनिस्सेणिपरियेसनेन! यदि थण्डिलसेय्याय धातुसमता भवति, किं सुखसम्फस्स-महतिमहासिरिसयनपरियेसनेन! यदि एकको सासङ्कसभयविसमकन्तारतरणसमत्थो भवति, किं सन्नद्धसज्जमहतिमहासत्थपरियेसनेन! यदि नदीसरं बाहुना तरितुं समत्थो भवति, किं धुवसेतुनावापरियेसनेन! यदि सकसन्तकेन घासच्छादनं कातुं पहोति, किं परूपसेवनपिय-समुल्लापपच्छापुरेधावनेन! यदि अखाततळाके उदकं लभति, किं उदपानतळाकपोक्खरणि-खणनेन! एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, किं धुतगुणवरसमादियनेना'' ति?

५. ''अट्ठवीसति खो पनिमे, महाराज, धुतङ्गगुणा यथाभुच्चगुणा, येहि गुणेहि धुतङ्गानि

था। महाराज! भगवान् अपने जीते-जी तीन मण्डलों में और सोलह महाजनपदों में जहाँ-जहाँ गये, वहाँ वहाँ अनेक देवता और मनुष्यों को निर्वाण तक पहुँचाया। महाराज! ये सभी देवता गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं। महाराज! ये करोड़ों अगणित देवता सभी गृहस्थ के कामसुख भोगते हुए ही निर्वाण पा चुके थे।

४. ''भन्ते नागसेन! यदि संसार के कामभोगों को भोगने वाले गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात् कर लेते हैं तो भिक्षु लोग धुताङ्ग-साधन करने के फेर में क्यों पड़े रहते हैं? वैसा होने से धुताङ्ग क्या निरर्थक नहीं ठहरते? भन्ते नागसेन! यदि झाड़-फूँक और औषध के विना ही रोग दूर हो जाते हों तो वमन और विरेचन दे कर शरीर को दुर्बल बनाने से क्या लाभ! यदि मुक्का और घूँसा चला कर ही शत्रु परास्त किया जा सकता है तो तलवार, भाला, तीर-धनुष, लाठी और गदा का क्या कार्य! यदि गाँठ, टेढ़ी-मेढ़ी शाखाएँ, कोटर, काँटे और लता के सहारे ही वृक्ष पर चढ़ा जा सकता हो तो बड़ी सीढ़ी खोजते फिरने से क्या लाभ! यदि कड़ी जमीन पर पड़े रहने से ही अच्छी नींद आ जाती हो ता मसनद-तकिये का क्या लाभ! यदि किसी संकटमय और बीहड़ मार्ग को कोई अकेला पार कर सकता हो तो सजे-धजे सशस्त्र किसी बड़े रक्षकसमूह का क्या प्रयोजन! यदि बहती हुई नदी को कोई तैर कर ही पार कर सकता हो तो नाव या पुल की क्या आवश्यकता! यदि कोई अपने पास के धन से ही सुखपूर्वक अपना भरण-पोषण कर सकता हो तो दूसरे की सेवा में इधर-उधर फिरने से क्या लाभ! यदि प्राकृतिक झरने से ही जल मिल जाता हो तो तालाब, कूए और पुष्करिणी खुदवाने की क्या आवश्यकता! भन्ते नागसेन! इसी तरह, यदि संसार के कामभोगी गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात्कार कर लेते हैं तो कठोर धुताङ्ग साधन करने की उन्हें क्या आवश्यकता है?''

५. ''महाराज! धुताङ्ग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं, जिन के कारण ये सभी बुद्धों द्वारा अच्छे

सब्बबुद्धानं पिहयितानि पत्थितानि। कतमे अट्ठवीसति? इध, महाराज, धुतङ्गं सुद्धाजीवं सुखफलं अनवज्जं न परदुक्खापनं अभयं असम्पीळनं एकन्तवड्ढितं अपरिहानियं अमायं आरक्खा पत्थितददं सब्बसत्तदमनं संवरहितं पतिरूपं अनिस्सितं विप्पमुत्तं रागक्खयं दोसक्खयं मोहक्खयं मानप्पहानं कुवितक्कच्छेदनं कङ्खावितरणं कोसज्जविद्धंसनं अरतिप्पहानं खमनं अतुलं अप्पमाणं सब्बदुक्खक्खयगमनं। इमे खो, महाराज, अट्ठवीसति धुतङ्गगुणा यथाभुच्चगुणा, येहि गुणेहि धुतङ्गानि सब्बबुद्धानं पिहयितानि पत्थितानि।

"ये खो ते, महाराज, धुतगुणा सम्मा उपसेवन्ति ते अट्ठारसहि गुणेहि समुपेता भवन्ति। कतमेहि अट्ठारसहि? आचारो तेसं सुविसुद्धो होति, पटिपदा सुपूरिता होति, कायिकं वाचिकं सुरक्खितं होति, मनोसमाचारो सुविसुद्धो होति, विरियं सुपग्गहितं होति, भयं वूपसम्मति, अत्तानुदिट्ठि व्यपगता होति, आघातो उपरतो होति, मेत्ता उपट्ठिता होति, आहारो परिञ्ञातो होति, सब्बसत्तानं गरुकतो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियमनुयुत्तो होति, अनिकेतो होति, यत्थ फासु तत्थ विहारी होति, पापजेगुच्छी होति, विवेकारामो होति, सततं अप्पमत्तो होति। ये ते, महाराज, धुतगुणे सम्मा उपसेवन्ति, ते इमेहि अट्ठारसहि गुणेहि समुपेता भवन्ति।

६. "दस इमे, महाराज, पुग्गला धुतगुणारहा। कतमे दस? सद्धा होति हिरिमा

कहे गये हैं। कौन से अट्ठाईस गुण? महाराज! १. धुताङ्ग पालन करने वाले की जीविका शुद्ध होती है, २. उसका फल सुखद होता है, ३. उसमें कोई बुराई नहीं रहती, ४. वह किसी दूसरे को कष्ट नहीं देता, ५. वह अभय रहता है, ६. उसके द्वारा कोई सताया नहीं जाता, ७. वह धर्म की ओर ही बढ़ता है, ८. वह नीचे नहीं गिर सकता, ९. वह कभी धोखा नहीं देता, १०. वह रक्षा करता है, ११. उससे जो चाहे उसी का लाभ हो सकता है, १२. वह सभी प्राणियों को अपने वश में कर सकता है, १३. वह आत्मसंयम करना सीख सकता है, १४. धुताङ्ग का जीवन भिक्षु के सर्वथा अनुकूल है, १५. वह किसी पर भार नहीं रहता, १६. वह खुला और स्वच्छन्द रहता है, १७. धुताङ्ग सांसारिक राग काट देता है, १८. द्वेष दूर करता है, १९. मोह मिटा देता है, २०. उसमें अभिमान नहीं रह पाता, २१. इससे पाप विचार हट जाता है, २२. शङ्काएँ दूर हो जाती हैं, २३. अकर्मण्यता नहीं रह पाती, २४. असन्तोष नहीं रहता, २५. सहनशक्ति आती है, २६. इसके पुण्य अतुल्य हैं, २७. इसके पुण्य अनन्त हैं, और २८. धुताङ्ग सभी सुखों का अन्त करके निर्वाण तक पहुँचा देता है। महाराज! यही धुताङ्ग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं, जिनके कारण वे सभी बुद्धों द्वारा स्पृहणीय (अच्छे) कहे गये हैं।

"महाराज! जो धुताङ्ग का ठीक से पालन करते हैं, वे अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं। किन अठारह गुणों से? महाराज! १. उसका आचार पवित्र और शुद्ध होता है, २. वह मार्ग पार कर लेता है, ३. उसके शरीर और वचन वश में होते हैं, ४. उसका मन पवित्र रहता है, ५. उसका उत्साह बना रहता है, ६. वह निर्भय होता है, ७. उसकी आत्मदृष्टि दूर हो जाती है, ८. उसमें हिंसा का भाव शान्त हुआ रहता है, ९. उसमें मैत्री–भावना सदा बनी रहती है, १०. उसका आहार समझ–बूझ कर होता है, ११. वह सभी जीवों से प्रतिष्ठा पाता है, १२. भोजन उचित मात्रा में करता है, १३. सदा जागरूक रहता है, १४. विना घर–द्वार का होता है, १५. जहाँ अच्छा (सुविधा) देखता है वहीं साधना करता है, १६. पाप से घृणा करता है, १७. विवेक में आनन्दित रहता है, और १८. सतत सावधान रहता है। महाराज! जो धुताङ्ग को ठीक से पालन करते हैं, वे इन्हीं अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं।

धितिमा अकुहो अत्थवसी अलालो सिक्खाकामो दळ्हसमादानो अनुज्झानबहुलो मेत्ताविहारी। इमे खो, महाराज, दस पुग्गला धुतगुणारहा।

७. ''ये ते, महाराज, गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, सब्बे ते पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थ चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति।

८. ''यथा, महाराज, कुसलो इस्सासो अन्तेवासिके पठमं ताव उपासनासालायं चापभेदचापारोपनगहणमुट्ठिपटिपीळनअङ्गुलिविनामनपादठपनसरगहणसन्दनआकड्ढनसन्धारण-लक्खनियमनखिपने तिणपुरिसकछकणतिणपलालमत्तिकापुञ्जफलकलक्खवेधे अनुसिक्खा-पेत्वा रञ्ञो सन्तिके उपासनं आराधयित्वा आजञ्ञरथगजतुरङ्गधनधञ्ञहिरञ्जसुवण्ण-दासिदासभरियगामवरं लभति; एवमेव खो, महाराज, ये ते गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, ते सब्बे पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थेव चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति। न, महाराज, धुतगुणेसु पुब्बासेवनं विना एकिस्सा येव जातिया अरहत्तं सच्छिकिरिया होति, उत्तमेन पन विरियेन उत्तमाय पटिपत्तिया तथारूपेन आचरियेन कल्याणमित्तेन अरहत्तं सच्छिकिरिया होति।

९. ''यथा वा पन, महाराज, भिसक्को सल्लकत्तो आचरियं धनेन वा वत्तप्पटिपत्तिया

---

६. ''महाराज! दश प्रकार के लोग धुताङ्ग पालन के योग्य होते हैं। किन दश प्रकार के? जो १. श्रद्धालु, २. पाप करने में सङ्कोची, ३. धैर्यवान्, ४. झूठा दिखावा न करने वाले, ५. अपने उद्देश्य में लगे रहने वाले, ६. निर्लोभ, ७. सीखने के इच्छुक, ८. दृढ़सङ्कल्प, ९. किसी बात से न चिढ़ने वाले और १०. मैत्री भाव रखने वाले होते हैं। महाराज! ये दश प्रकार के लोग धुताङ्ग पालन के योग्य होते हैं।

७. ''महाराज! जो कामभोगी गृहस्थ परम शान्त निर्वाणपद पाते हैं, उनने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह प्रकार के धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पहले जन्मों में आचार और मार्ग शुद्ध करके आज यहाँ गृहस्थ रहते हुए परमार्थ निर्वाणपद साक्षात् कर लेते हैं।

८. ''महाराज! जैसे चतुर धनुर्धर पहले अपने शिष्यों को अभ्यास के मैदान में सिखाता है कि कितने प्रकार के धनुष् होते हैं, धनुष् कैसे चढ़ाया जाता है, कैसे पकड़ा जाता है, मुट्ठी कैसे बाँधी जाती है, अङ्गुलियाँ कैसे नवाई जाती हैं, पैर का पैंतरा कैसा होता है, तीर कैसे चढ़ाया जाता है, तीर चढ़ाकर कैसे खींचा जाता है, उसे कैसे संभालना होता है और कैसे लक्ष्य–वेधन होता है। पहले घास के बने हुए मनुष्य या पुआल की गठरी या मिट्टी, या पटरे के बने लक्ष्य का वेध करना सिखाता है। जब वे शिष्य सीख कर तैयार हो जाते हैं, तब उन्हें राजा के सामने उपस्थित करता है। राजा प्रसन्न हो उसे पुरस्कार में अच्छे घोड़े, रथ, हाथी, धन, धान्य, सोना, मोहर, दास, दासी, स्त्री और खेत देता है। महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी गृहस्थ परमशान्त निर्वाणपद पाते देखे जाते हैं, उनने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पूर्वजन्म में आचार और मार्ग शुद्ध कर आज यहाँ गृहस्थ रहते हुए भी परमार्थयुक्त निर्वाण पद साक्षात् कर लेते हैं। महाराज! जिनने अपने पूर्वजन्म में धुताङ्ग का पालन नहीं किया, वे यहाँ केवल एक ही जन्म में अर्हत् नहीं बन सकते। महाराज! सच्ची लगन और मार्ग पर चलने से, वैसे ही योग्य गुरु के मिलने से और वैसे ही मित्रों की सङ्गति होने से निर्वाण मिलता है।

९. ''महाराज! जैसे कोई वैद्य या शल्यचिकित्सक पहले किसी गुरु को खोज उसके पास जाता

वा आराधेत्वा सत्थगहणछेदनलेखनवेधनसल्लुद्धरणवणधोवनसोसनभेसज्जानुलिम्पनवमन-विरेचनानुवासनकिरियमनुसिक्खित्वा विज्जासु कतसिक्खो कतूपासनो कतहत्थो आतुरे उपसङ्कमति तिकिच्छाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, ते सब्बे पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थेव चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति। न, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसमयो होति।

"यथा, महाराज, उदकस्स आसेचनेन बीजानं अविरूहनं होति; एवमेव खो, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसयो न होति।

"यथा वा पन, महाराज, अकतकुसलानं अकतकल्याणानं सुगतिगमनं न होति; एवमेव खो, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसमयो न होति।

१०. "पथविसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं पतिट्ठानट्ठेन। आपोसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमलधोवनट्ठेन। तेजोसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसवनज्झापनट्ठेन। वायोसमं, महाराज, धुतगुणं, विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमल-रजोपवाहनट्ठेन।

"अगदसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसब्याधिवूपसमनट्ठेन। अमत-समं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसविसनासनट्ठेन। खेत्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बसामञ्ञगुणसस्सविरूहनट्ठेन। मनोहरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं

है। फिर उसे वेतन या अपनी सेवा दे कर सारी विद्या सीखता है— छुरी कैसे पकड़ी जाती है, कैसे चीरा जाता है, कैसे निशान लगाया जाता है, कैसे छुरी भोंकी जाती है, चुभे हुए को कैसे खींच लेना चाहिये, व्रण कैसे धोना चाहिये, उसे कैसे सुखाना चाहिये, उस पर कैसे लेप लगाना चाहिये, रोगी को कैसे वमन या विरेचन कराना चाहिये, कैसे रसायन खिलाना चाहिये! उसके शिष्यत्व में सभी बातें सीखने के बाद ही वह स्वतन्त्र रूप से किसी रोगी की चिकित्सा अपने हाथ में लेता है। महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी गृहस्थ परमशान्त निर्वाण-पद पाते देखे जाते हैं, उन्होंने अवश्य अपने पूर्वजन्मों में तेरह धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पूर्वजन्म में आचार और मार्ग शुद्ध कर आज यहाँ गृहस्थ रहते परमार्थ निर्वाण पद साक्षात् कर लेते हैं। महाराज! जिस ने अपने को धुतगुणों से शुद्ध नहीं कर लिया है, उसे धर्म में प्रवेश नहीं मिलता।

"महाराज! जैसे जल मे सींचे विना बीज नहीं जम सकते; वैसे ही धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये विना धर्मदर्शन नहीं हो सकता।"

"महाराज! जैसे विना पुण्य किये अच्छी गति नहीं होती; वैसे ही धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये विना धर्मदर्शन नहीं हो सकता।

१०. "महाराज! धुताङ्ग मुमुक्षुओं के लिये महापृथ्वी के समान आधार है। धुताङ्ग मुमुक्षुओं के लिये जल के समान क्लेशरूपी मल धोने के काम का है; क्लेश की झाड़ी को जला कर भस्म कर देने वाली अग्नि की तरह हैं; क्लेश रूपी धूली को उड़ा देने वाली हवा के समान है।

"ये क्लेशरूपी विष को दूर करने वाली औषध के समान है; क्लेशरूपी विष को नाश करने वाले अमृत के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों की खेती तैयार करने के लिये खेत के समान है; सभी

पत्थितिच्छितसब्बसम्पत्तिवरददट्ठेन। नावासमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं संसारमहण्णवपारगमनट्ठेन। भीरुत्ताणसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं जरामरणभीतानं अस्सासकरणट्ठेन।

"मातुसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसदुक्खप्पटिपीळितानं अनुग्गाहकट्ठेन। पितुसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं कुसलवड्ढिकामानं सब्बसामञ्ञगुणजनकट्ठेन। मित्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बसामञ्ञगुणपरियेसनअविसंवादकट्ठेन।

"पदुमसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमलेहि अनुपलित्तट्ठेन। चतुज्जातियवरगन्धसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसदुग्गन्धपटिविनोदनट्ठेन। गिरिराजवरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं अट्ठलोकधम्मवातेहि अकम्पियट्ठेन। आकाससमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं गहणापगतउरुविसटवित्थतमहन्तट्ठेन। नदीसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसमलपवाहनट्ठेन। सुदेसकसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं जातिकन्तारकिलेसवनगहननित्थरणट्ठेन।

"महासत्थवाहसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बभयसुञ्ञखेमअभयवरपवरनिब्बाननगरसम्पापनट्ठेन। सुमज्जितविमलादाससमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सङ्खारानं सभावदस्सनट्ठेन। फलकसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसलगुळसरसत्तिपटिबाहनट्ठेन। छत्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसवस्सतिविधग्गिसन्तापातपपटिबाहनट्ठेन।

"चन्दसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं पियहितपत्थितट्ठेन। सुरियसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं मोहतमतिमिरनासनट्ठेन। सागरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं अनेकविधसामञ्ञगुणवररतनुट्ठानट्ठेन, अपरिमितमसङ्खेय्यअप्पमेय्यट्ठेन च।

लाभ देने वाली मणि के समान है; भवसागर को पार करने के लिये नाव के समान है; जरा–मरण से डरे हुये लागों के लिये शरणस्थल के समान है।

"ये क्लेशपीड़ित लोगों को बचाने वाली माता के समान है; पुण्य कमाने वालों के लिये सभी भिक्षु–गुणों को पैदा करने वाले पिता के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों को खोज कर ला देने वाले मित्र के समान हैं।

"ये क्लेशमलों से लिप्त न होने वाले कमल के समान है; क्लेश की दुर्गन्ध को दूर करने वाले इत्र गुलाब की तरह है; आठ प्रकार की सांसारिक वायु से न हिलने वाले पर्वतराज के समान है; सर्वथा स्वच्छन्द और स्वतन्त्र बना देने वाले आकाश के समान है; क्लेश–मल को बहा कर ले जाने वाली नदी के समान है; क्लेश के जङ्गल और आवागमन की मरुभूमि से बाहर निकलने योग्य मार्ग बताने वाले (पथप्रदर्शक) है।

"निर्वाण नगर तक पहुँचा देने वाले निर्भय और साथ देने वाले समूह के समान है; संस्कारों के सच्चे स्वभाव को दिखा देने वाले साफ दर्पण के समान है; क्लेश की तलवार और लाठी के प्रहार को रोकने के लिये ढाल के समान है।

"त्रिविध ताप को ठण्ढा करने वाले चन्द्र के समान है; मोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाले सूर्य के समान है; श्रामण्यगुण रूपी रत्नों के लिये महासागर के समान है; क्योंकि वह इतना अनन्त गम्भीर और महान् है।

११. "एवं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं बहूपकारं सब्बदरथपरिळाहनुदं अरतिनुदं भयनुदं भवनुदं खीलनुदं मलनुदं सोकनुदं दुक्खनुदं रागनुदं दोसनुदं मोहनुदं माननुदं दिट्ठिनुदं सब्बाकुसलधम्मनुदं यसावहं हितावहं सुखावहं फासुकरं पीतिकरं योगक्खेमकरं, अनवज्जं इट्ठसुखविपाकं गुणरासिगुणपुञ्जअपरिमितमप्पमेय्यगुणं वरं पवरं अग्गं।

१२. "यथा, महाराज, मनुस्सा उपत्थम्भवसेन भोजनं उपसेवन्ति, हितवसेन भेसज्जमुपसेवन्ति, उपकारवसेन मित्तं उपसेवन्ति, तारणवसेन नावं उपसेवन्ति, सुगन्धवसेन मालागन्धं उपसेवन्ति, अभयवसेन भीरुत्ताणं उपसेवन्ति, पतिट्ठानवसेन पठविं उपसेवन्ति, सिप्पवसेन आचरियं उपसेवन्ति, यसवसेन राजानं उपसेवन्ति, कामददवसेन मणिरतनं उपसेवन्ति; एवमेव खो, महाराज, सब्बसामञ्ञगुणददवसेन अरिया धुतगुणं उपसेवन्ति।

१३. "यथा वा पन, महाराज, उदकं बीजविरूहनाय, अग्गि झापनाय, आहारो बलाहरणाय, लता बन्धनाय, सत्थं छेदनाय, पानीयं पिपासविनयनाय, निधि अस्सासकरणाय, नावा तीरसम्पापनाय, भेसज्जं ब्याधिवूपसमनाय, यानं सुखगमनाय, भीरुत्ताणं भयविनोदनाय, राजा आरक्खत्थाय, फलकं दण्डलेड्डुलगुळसरसत्तिपटिबाहनाय, आचरियो अनुसासनाय, माता पोसनाय, आदासो ओलोकनाय, अलङ्कारो सोभनाय, वत्थं पटिच्छादनाय, निस्सेणी आरोहणाय, तुला विसमविक्खेपनाय, मन्तं परिजपनाय, आवुधं तज्जनियपटिबाहनाय, पदीपो अन्धकारविधमनाय, वातो परिळाहनिब्बापनाय, सिप्पं वुत्तिनिप्फादनाय, अगदं जीवितरक्खणाय, आकरो रतनुप्पादनाय, रतनं अलङ्कराय, आणा अनतिक्कमनाय, इस्सरियं वसवत्तनाय; एवमेव

---

११. "महाराज! इस तरह, विशुद्धि (निर्वाण) के इच्छुक साधक के लिये धुताङ्ग–व्रत बहुत उपकारक होता है; सभी कष्ट, सन्ताप, असन्तोष और भय दूर कर देता है; भव (संसार में बने रहना) मिटा देता है; मन के सभी मल हटा देता है; शोक, दुःख, राग, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि और सभी पापों को नष्ट कर देता है। धुताङ्ग यश बढ़ाता है, हित करता है, सुख देता है, आराम देता है, प्रीति उत्पन्न करता है, कुशल–मङ्गल लाता है; और निर्दोष, अच्छे फल वाले सद्गुणों का समूह, अनन्त और अगाध श्रेष्ठ गुण देता है।"

१२. "महाराज! जैसे मनुष्य शरीर–धारण के लिये भोजन करते हैं, स्वस्थ होने के लिये औषध का सेवन करते हैं, उपकार पाने के लिये मित्र का साथ लेते हैं, पार जाने के लिये नाव पर सवार होते हैं, सुगन्ध के लिये माला और इत्र लगाते हैं, भय से बचने के लिये किसी शरणस्थल पर जाते हैं, यश के लिये राजा की सेवा करते हैं, यथेच्छ वर पाने के लिये मणिरत्न धारण करते हैं; वैसे ही अच्छे लोग भिक्षुजीवन सार्थक बनाने के लिये धुताङ्गव्रत का पालन करते हैं।

१३. "महाराज! जैसे जल बीज जमाने के लिये, अग्नि जलाने के लिये, भोजन शरीर में बल लाने के लिये, लता बाँधने के लिये, शस्त्र काटने के लिये, जल प्यास बुझाने के लिये, कोश उत्साह देने के लिये, नाव उस पार ले जाने के लिये, औषध रोग की चिकित्सा के लिये, सवारी सुखपूर्वक रास्ता पार करने के लिये, शरणस्थल भय से बचाने के लिये, राजा रक्षा करने के लिये, ढाल लाठी, ढेला, तीर, भाला की चोट को रोकने के लिये, गुरु पढ़ाने के लिये, माता पालन–पोषण के लिये, दर्पण मुख देखने के लिये, अलङ्कार शोभा के लिये, वस्त्र शरीर ढँकने के लिये, सीढ़ी छत पर चढ़ने के लिये, तराजू तौलने के लिये, मन्त्र जप करने के लिये, शस्त्र दूसरे की धमकी से बचने, दीपक अन्धकार दूर करने, वायु गर्मी को दूर करने, कला जीविका कमाने, औषध जीवन बचाने, खान रत्न पैदा करने, रत्न शोभा

खो, महाराज, धुतगुणं सामञ्ञबीजविरूहनाय, किलेसमलझापनाय, इद्धिबलाहरणाय, सतिसंवरनिबन्धनाय, विमतिविचिकिच्छासमुच्छेदनाय, तण्हापिपासाविनयनाय, अभिसमय-अस्सासकरणाय, चतुरोघनित्थरणाय, किलेसब्याधिवूपसमाय, निब्बानसुखप्पटिलाभाय, जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासभयविनोदनाय, सामञ्ञगुणपरिरक्खणाय, अरतिकुवितक्कपटिबाहनाय, सकलसामञ्ञत्थानुसासनाय, सब्बसामञ्ञगुणपोसनाय, समथविपस्सनामग्गफलनिब्बानदस्सनाय, सकललोकथुतथोमितमहतिमहासोभनकरणाय, सब्बापायपिदहनाय, सामञ्ञत्थसेलसिखरमुद्धनि अभिरूहनाय, वङ्ककुटिलविसमचित्त-निक्खेपनाय, सेवितब्बासेवितब्बधम्मे साधु सज्झायकरणाय, सब्बकिलेसपटिसत्तुतज्जनाय, अविज्जन्धकारविधमनाय, तिविधग्गिसन्तापपरिळाहनिब्बापनाय, सण्हसुखुमसन्तसमापत्ति-निप्फादनाय, सकलसामञ्ञगुणपरिरक्खणाय, बोज्झङ्गवररतनुप्पादनाय, योगिजनालङ्करणाय, अनवज्जनिपुणसुखमसन्तिसुखुमनतिक्कमनाय, सकलसामञ्ञअरियधम्मवसवत्तनाय। इति, महाराज, इमेसं गुणानं अधिगमाय यदिदं एकमेकं धुतगुणं; एवं, महाराज, अतुलियं धुतगुणं अप्पमेय्यं असमं अप्पटिभागं अप्पटिसेट्ठं उत्तरं सेट्ठं विसिट्ठं अधिकं आयतं पुथुलं विसटं वित्थतं गरुकं भारियं महन्तं।

१४. "यो खो, महाराज, पुग्गलो पापिच्छो इच्छापकतो कुहको लुद्धो ओदरिको लाभकामो यसकामो कित्तिकामो अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो धुतङ्गं समादियति, सो दिगुणं दण्डमापज्जति सब्बगुणघातमापज्जति, दिट्ठधम्मिकं हीळनं खीळनं गरहनं उप्पण्डनं खिपनं असम्भोगं निस्सारणं निच्छुभनं पवाहनं पब्बाजनं पटिलभति, सम्परायें

देने, आज्ञा पालन करने और ऐश्वर्य दूसरों को वश में करने के लिये है; वैसे ही धुताङ्ग-व्रत श्रामण्यरूपी बीज को जमाने, क्लेशरूपी मल को जला देने, ऋद्धिबल पाने, स्मृति और संयम को बाँधने, भ्रम और शंका को काटने, तृष्णा की प्यास बुझाने, ज्ञान का साक्षात्कार करने, पक्का विश्वस्त स्थान, चार गहरी धार को पार कर जाने, क्लेश रूपी रोग शान्त करने, निर्वाण-सुख पाने, जन्म-लेना, बूढ़ा होने, रोगी हो जाना, मर जाना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी के भय से बचने, श्रामण्य-गुणों की रक्षा करने, असन्तोष और अशुभ विचार को रोकने, श्रमण-जीवन की सभी बातों को सीखने, उनका पालन करने, शमथ, विपश्यना, मार्गफल और निर्वाण को देखने, सारे संसार में अच्छी सुन्दर शोभा करने, सभी नरकों को ढँक देने, श्रामण्यफलरूपी पर्वतशिखर पर चढ़ने, टेढ़े और नीच चित्त को तोलने, कुशल धर्मों की चिन्ता में लगे रहने, क्लेश रूपी शत्रुओं को दूर हटाने, अविद्यान्धकार को मिटाने, त्रिविध अग्नि के सन्ताप को ठण्डा करने, ऊँचे सूक्ष्म और शान्त समापत्ति, सभी श्रामण्य-गुणों की रक्षा करने, बोध्यङ्गरूपी श्रेष्ठ रत्न पैदा करने, योगि-जनों के अलङ्कार, निदोर्ष निपुण सूक्ष्म शान्ति-पद पाने तथा श्रामण्यभाव और आर्यधर्म वश में करने के लिये है। महाराज! एक एक धुताङ्ग इन सभी गुणों की प्राप्ति के लिये है। महाराज! इस तरह धुताङ्ग के गुण अतुल्य हैं, अनन्त हैं, अनुपम हैं,.... गम्भीर, श्रेष्ठ और महान् हैं।

१४. "महाराज! जो पापेच्छु, अपनी इच्छाओं के अधीन, कृत्रिमता रखने वाला, लोभी, पेटू, संसार की चीजों के पाने का इच्छुक, यश पाने के लिये व्याकुल रहने वाला, नाम बढ़ाने के भ्रम में रहने वाला, अयोग्य, जो कुछ भी अच्छा फल नहीं पा सकता, अनुचित व्यवहार वाला, अयोग्य और बेढंगा

पि सतयोजनिके अवीचिमहानिरये उण्हकठिततत्तसन्तत्तअच्चिजालामालके अनेकवस्सकोटिसतसहस्सानि उद्धमधो तिरियं फेणुद्देहकं सम्परिवत्तकं पच्चति, ततो मुच्चित्वा किसफरुसकाळङ्गपच्चङ्गो सूनुद्धुमातसुसिरुत्तमङ्गो छातो पिपासितो विसमभीरूपवण्णो भग्गकण्णसोतो उम्मीलितनिमीलितनेत्तनयनो अरुगत्तपक्कगत्तो पुलवाकिण्णसब्बकायो, वातमुखे जलमानो विय अग्गिक्खन्धो अन्तो जलमानो पज्जलमानो, अत्ताणो असरणो आरुण्णरुण्णकारुञ्ञरवं परिदेवमानो निज्झामतण्हिको समणमहापेतो हुत्वा आहिण्डमानो महिया अट्टस्सरं करोति।

१५. ''यथा, महाराज, कोचि अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो हीनो कुजातिको खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चति, सो लभति हत्थच्छेदं पादच्छेदं हत्थपादच्छेदं कण्णछेदं नासच्छेदं कण्णनासच्छेदं बिलङ्गथालिकं, सङ्खमुण्डिकं राहुमुखं जोतिमालिकं हत्थपज्जोतितं एरकवत्तिकं, चीरकवासिकं एणेय्यकं बळिसमंसिकं कहापणकं खारापतच्छिकं पळिघपरिवत्तिकं पलालपीठकं, तत्तेन तेलेन ओसिञ्चनं, सुनखेहि खादितं, जीवसूलारोपनं, असिना सीसच्छेदनं, अनेकविहितं पि कम्मकारणं अनुभवति। किं कारणं? अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो हीनो कुजातिको महन्ते इस्सरिये ठाने अत्तानं ठपेसि, वेलं घातेसि; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि पुग्गलो पापिच्छा.... पे०.... महिया अट्टस्सरं करोति।

मनुष्य यदि धुताङ्ग व्रत ले लेता है, वह दुगुना दण्ड पाता है और अपने जो पहले के अच्छे गुण रहते हैं, उन्हें भी नष्ट कर देता है। तब लोग उसकी अप्रतिष्ठा (अपमान) करते हैं, खिल्ली उड़ाते हैं, निन्दा करते हैं, उसे रोक देते हैं, निकाल बाहर करते हैं,....हटा देते हैं, भगा देते हैं, दुरदुरा देते हैं। वह दूसरे जन्म में भी सौ योजन तक फैले अवीचि नरक की गर्म तपी हुई अग्नि की लपटों में पड़ा हुआ लाखों, करोड़ों वर्षों तक ऊपर–नीचे और टेढ़े–मेढ़े फेन की तरह उठ–उठ कर पचता रहता है। जब वहाँ से छूटता है तो एक बड़े प्रेत के समान– ऊपर से देखने में भिक्षु के समान, शरीर और अङ्ग–प्रत्यङ्ग से काला और दुबला–पतला, शिर फूला हुआ, सूजा हुआ और नानाछिद्रयुक्त– उत्पन्न होकर भूख–प्यास से सदा व्याकुल रहता है। देखने में वह बड़ा कुरूप और डरावना होता है; उसके कान फटे होते हैं, उसकी आँखें मिचमिचाती रहती हैं; उसका सारा शरीर विकृत रक्त से भर कर पक जाता है; व्रण पड़ जाते हैं; हवा में धधकती हुई अग्नि के समान उसका पेट जलता रहता है, और उसका मुँह सूई की नोक के बराबर होता है, जिससे उसकी प्यास कभी नहीं बुझ सकती। वह किसी शरणस्थल पर भी भाग कर नहीं जा सकता। उसको बचाने वाला कोई भी सहायक नहीं मिलता। करुणापूर्वक रोता है और क्रन्दन करता है। इस तरह, वह श्रमण महाप्रेत हो कर संसार में रोते–कलपते भटकता रहता है।

१५. ''महाराज! यदि कोई निष्कर्म, बेकार, बुरा, अयोग्य और नीच जाति का छोटा आदमी राजगद्दी पर बैठ जाय तो वह दण्ड भोगेगा– उसका हाथ काट लिया जायगा; पैर, हाथ या हाथ–पैर दोनों, कान, नाक या नाक–कान दोनों काट लिये जायेंगे; बिलङ्गथालिक, शङ्खमुण्डिक, राहुमुख, ज्योतिर्मालिका, हस्तप्रद्योतिका, एरकवर्तिका, चीरकवासिका, एणेय्यक, बड़िसमंसिक, कहापणक, खारापतच्छिक, पलिघपलिवर्तिक, पलालपीठक इत्यादि राजदण्ड दिये जायेंगे; गर्म तैल भी उस पर छिड़का जायगा; कुत्तों से भी नुचवा दिया जायगा; सूली पर भी चढ़ा दिया जायगा; तलवार से उसका शिर उड़ा दिया जायगा; और भी तरह–तरह के दुःख भोगेगा। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि वह इतना निकम्मा, बेकार, बुरा, अयोग्य और नीच जाति का छोटा आदमी हो कर भी इतने बड़े

"यो पन, महाराज, पुग्गलो युत्तो पत्तो अनुच्छविको अरहो पतिरूपो अप्पिच्छो सन्तुट्ठो पविवित्तो असंसट्ठो आरद्धविरियो पहितत्तो असठो अमायो अनोदरिको अलाभकामो अयसकामो अकित्तिकामो सद्धो सद्धापब्बजितो जरामरणमुच्चितुकामो 'सासनं पग्गण्हिस्सामी' ति धुतङ्गं समादियति, सो दिगुणं पूजं अरहति, देवानं च मनुस्सानं च पियो होति, मनापो पिहयितो पत्थितो, जातिसुमनमल्लिकादीनं विय पुप्फं नहातानुलित्तस्स, जिघच्छितस्स विय पणीतभोजनं, पिपासितस्स विय सीतलविमलसुरभिपानीयं, विसगतस्स विय ओसधवरं, सीघगमनकामस्स आजञ्ञरथवरुत्तमं, अत्थकामस्स विय मनोहरमणिरतनं, अभिसिञ्चितुकामस्स विय पण्डरविमलसेतच्छत्तं, धम्मकामस्स विय अरहत्तफलादिगमनमनुत्तरं। तस्स चत्तारो सतिपट्ठाना भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि पञ्चबलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावनापारिपूरिं गच्छति, समथविपस्सना अधिगच्छति, अधिगमपटिपत्तिं परिणमति, चत्तारि सामञ्ञफलानि चतस्सो पटिसम्भिदा तिस्सो विज्जा छळभिञ्ञा केवलो च समणधम्मो सब्बे तस्साधेय्या होन्ति, विमुत्तिपण्डरविमलसेतच्छत्तेन अभिसिञ्चति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो खत्तियस्स अभिजातकुलीनस्स खत्तियाभिसेकेन अभिसित्तस्स परिचरन्ति नगरट्ठनेगमजानपदभटबला, अट्ठतिंसा च राजपरिसा नटनच्चका मुखमङ्गलिका सोत्थिवाचका समणब्राह्मणसब्बपासण्डगणा अभिगच्छन्ति, यं किञ्चि पथविया पट्टनरतनाकर-

---

ऊँचे राजपद पर पहुँच गया था। उसने सीमा का उल्लङ्घन कर दिया था। महाराज! इसी तरह, जो पापेच्छु, अपनी इच्छाओं के अधीन....पूर्ववत्....इस तरह, वह संसार में रोते-कलपते भटका करता है।

"महाराज! और, इसके विपरीत जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा, कुशल अच्छे आचार वाला, अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, एकान्त में समय बिताने वाला, सांसारिक भोगों में लिप्त न रहने वाला, उत्साहयुक्त, आत्मसंयमी, दुष्टता और ठगी से दूर, जो पेटू नहीं है, लाभ के ही फेर में न पड़ा रहने वाला, नाम के पीछे न दौड़ने वाला, श्रद्धालु, सच्ची लगन से प्रव्रजित होने वाला, जरामरण से मुक्त होने का इच्छुक, शासन में दृढ़ बने रहने के संकल्प से धुताङ्ग व्रत का पालन करता है- वह द्विगुण पूजा का भागी होता है, देवताओं और मनुष्यों का प्रिय होता है, उनसे सम्मान और प्रतिष्ठा पाता है, नहाये धोये आदमी के लिये मल्लिका के फूल के समान होता है, भूखे के लिये स्वादिष्ठ भोजन के समान होता है, प्यासे के लिये निर्मल और सुगन्धित शीतल जल के समान होता है, विष खाये आदमी के लिये अगद समान होता है, शीघ्र जाने को इच्छा रखने वाले के लिये तेज घोड़ों वाले रथ के समान होता है, धन चाहने वाले के लिये यथेच्छ वर देने वाले मणिरत्न के समान है, अभिषेक पाने वाले के लिये निर्मल श्वेत-छत्र के समान होता है, धर्म की इच्छा रखने वाले के लिये अनुत्तर अर्हत्फल की प्राप्ति के समान है, उसे चारों स्मृतिप्रस्थानों की साधनायें सिद्ध हो जाती हैं, चारों सम्यक्प्रधान, चारों ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सभी पूरे हो जाते हैं, शमथ और विपश्यना भी प्राप्त हो जाती है, स्वाध्याय सफल हो जाता है। चार श्रामण्यफल, चार प्रतिसंविदायें, तीन विद्यायें, छह अभिज्ञायें और श्रमण के सभी धर्म उसके अपने हो जाते हैं। विमुक्ति के निर्मल श्वेत छत्र के नीचे मानों उसका अभिषेक हो जाता है।

"महाराज! जैसे ऊँचे कुल के क्षत्रिय का राज्याभिषेक हो जाने के बाद नगर और ग्राम की प्रजा, सिपाही और चपरासी सभी उसकी सेवा में लगे रहते हैं। अड़तीस अधिकारियों की सभा, नट और नर्तक, मङ्गलवाचक, स्वस्ति-पाठ करने वाले, श्रमण, ब्राह्मण और तरह-तरह के लोग, उसके पास

नगरसुङ्कट्ठानवेरज्जकछेज्जभोज्जजनमनुसासनं सब्बत्थ सामिको भवति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि पुग्गलो युत्तो पत्तो....पे०.... विमुत्तिपण्डरविमलसेतच्छत्तेन अभिसिञ्चति।

१६. तेरसिमानि, महाराज, धुतङ्गानि येहि सुद्धिकतो निब्बानमहासमुद्दं पविसित्वा बहुविधं धम्मकीळमभिकीळति, रूपारूपअट्ठसमापत्तियो वळञ्जेति, इद्धिविधं दिब्बसोतधातुं परचित्तविजाननं पुब्बेनिवासानुस्सतिं दिब्बचक्खुं सब्बासवक्खयं च पापुणाति। कतमे तेरस? पंसुकूलिकङ्गं, तेचीवरिकङ्गं, पिण्डपातिकङ्गं, सपदानचारिकङ्गं, एकासनिकङ्गं, पत्तपिण्डिकङ्गं, खलुपच्छाभत्तिकङ्गं, आरञ्ञिकङ्गं, रुक्खमूलिकङ्गं, अब्भोकासिकङ्गं, सोसनिकङ्गं,

---

उपस्थित रहते हैं। पृथ्वी में जितने बन्दरगाह, रत्न की खान, नगर और चुंगी उगाहने के स्थान हैं, सभी का वह स्वामी तथा परदेशी और अपराधी लोगों का एकमात्र भाग्यविधाता हो जाता है। महाराज! इसी तरह, जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा.... विमुक्ति के निर्मल श्वेत छत्र के नीचे मानों उसका अभिषेक हो जाता है।

१६. "महाराज! तेरह प्रकार के धुताङ्ग हैं जिनसे शुद्ध हो कर भिक्षु निर्वाणरूपी महासमुद्र में अनेक प्रकार से धर्म के हिलोरे ले कर आनन्द मानता है; रूप और अरूप आठ प्रकार की समाधियों का लाभ करता है; सभी ऋद्धियाँ प्राप्त कर लेता है, सुनने की दिव्य शक्ति आ जाती है, दूसरों के चित्त की बात भी जान लेता है, पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो जाती हैं, दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाता है, और सभी आस्रव क्षीण हो जाते हैं। वे तेरह धुताङ्ग कौन से हैं? १. पंसुकूलिकङ्ग[१] (पांशुकूलिकाङ्ग), २. तेचीवरिकङ्ग[२] (त्रैचीवरिकाङ्ग), ३. पिण्डपातिकङ्ग[३] (पिण्डपातिकाङ्ग), ४. सपदानचारिकङ्ग[४] (सापदानचारिकाङ्ग), ५. एकासनिकङ्ग[५] (ऐकाशनिकाङ्ग), ६.पत्तपिण्डिकङ्ग[६] (पात्रपिण्डिकाङ्ग), ७. खलुपच्छाभत्तिकङ्ग[७] (खलुपश्चाद्भक्तिकाङ्ग), ८. आरञ्ञिकङ्ग[८] (आरण्यकाङ्ग), ९.रुक्खमूलिकङ्ग[९] (वृक्षमूलिकाङ्ग),

---

१. पांशु का अर्थ है धूल। सड़क, श्मशान या कूड़ा-कर्कट के ढेर पर जहाँ-तहाँ धूल में पड़े वस्त्र 'पांशकूल' कहलाते हैं, उन्हें धारण करने वाला 'पांशुकूलिक' कहलाता है। इसका अंग (नियम) 'पांशुकूलिकाङ्ग' कहलाता है।

(जो भिक्षु पांशकूलिकाङ्ग धारण करता है, उसे १. 'गृहस्थों द्वारा दिये गये चीवर को त्यागता हूँ', या २. 'पांशुकूलिकाङ्ग ग्रहण करता हूँ'— इन दोनों में से एक का अधिष्ठान करना चाहिये)

२. भिक्षु के तीन वस्त्र (चीवर)होते हैं— (क) सङ्घाटि, (ख) उत्तरासङ्ग, (ग) अन्तर्वासक। जो भिक्षु इन तीन वस्त्रों से अधिक ग्रहण नहीं करता, उसे 'त्रैचीवरिक' कहते हैं। उसका यह धुताङ्ग 'त्रैचीवरिकाङ्ग' कहलाता है।

३. भिक्षा के रूप में प्राप्त अन्न या दूसरों के द्वारा दिया हुआ अन्न 'पिण्डपात' कहलाता है। जो पिण्डपात के लिये घर-घर घूमता है उसे, 'पैण्डपातिक' कहते हैं। उसका यह धुताङ्ग 'पैण्डपातिकाङ्ग' कहलाता है।

४. ग्राम में विना अन्तर डाले प्रत्येक घर से भिक्षा ग्रहण करने वाला 'सापदानचारिक' कहलाता है। इसका यह अङ्ग 'सापदानचारिकाङ्ग' कहलाता है।

५. एक आसन पर बैठ कर भोजन करने वाला (अर्थात् दिन रात में एक बार भोजन करने वाला) भिक्षु 'ऐकासनिक' कहलाता है। उसका यह व्रत 'ऐकासनिकाङ्ग' कहलाता है।

६. भिक्षार्थ गृहीत पात्र में पड़ा हुआ अन्न 'पात्रपिण्ड' कहलाता है। उस पात्रपिण्ड को ही ग्रहण करने वाले भिक्षु के इस व्रत को 'पात्रपिण्डिकाङ्ग' कहते हैं।

७. 'खलु' इस निपात का प्रयोग यहाँ निषेध अर्थ में है, एक बार भोजन करने के बाद मिले भोजन का निषेध करना 'खलुपश्चाद्भक्त' और इस नियम का पालन 'खलुपश्चाद्भक्तिकाङ्ग' कहलाता है।

८. आरण्यकाङ्ग का अर्थ है— अरण्य (जंगल) में रहने वाला। जो भिक्षु ग्राम या नगर में शयनासन छोड़कर जंगल में रहने का ही नियम धारण करता है, उसका यह नियम 'आरण्यकाङ्ग' कहलाता है।

९. ईंट, पत्थर, तृण आदि से बने गृह, कुटी आदि को छोड़कर केवल वृक्ष के नीचे रहना 'वृक्षमूल' कहलाता है। इस नियम को धारण करने वाला भिक्षु 'वृक्षमूलिक' कहलाता है। इसके इस धुताङ्ग को 'वृक्षमूलिकाङ्ग' कहते हैं।

यथासन्थतिकङ्गं, नेसज्जिकङ्गं। इमेहि खो, महाराज, तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि केवलं सामञ्ञं पटिलभति, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

"यथा, महाराज, सधनो नाविको पट्टने सुट्ठु कतसुङ्को महासमुद्दं पविसित्वा वङ्गं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति, अञ्ञं पि यं किञ्चि नावासञ्चरणं; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि केवलं सामञ्ञं पटिलभति, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

१७. "यथा, महाराज, कस्सको पठमं खेत्तदोसं तिणकट्ठपासाणं अपनेत्वा कसित्वा वपित्वा सम्मा उदकं पवेसेत्वा रक्खित्वा गोपेत्वा लवनमद्दनेन बहुधञ्ञको होति, तस्साधेय्या भवन्ति ये केचि अधना कपणा दलिद्दा दुग्गतजना; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगणेहि पुब्बेहि आसेवितेहि.... पे०.... केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

१८. "यथा वा पन, महाराज, खत्तिया मुद्धावसित्तो अभिजातकुलकुलीनो छेज्जभेज्जजनमनुसासने इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, केवला च महापठवी तस्साधेय्या होति; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि

---

१०. अब्भोकसिकङ्ग[1] (आभ्यवकाशिकाङ्ग), ११. सोसनिकङ्ग[2] (श्मशानिकाङ्ग), १२. यथासन्थरिकङ्ग[3] (यथासंस्तरिकाङ्ग), १३. नेसज्जिकङ्ग[4] (नैपद्यकाङ्ग) महाराज! इन तेरह धुताङ्ग-व्रतों का पालन करने से श्रमण फल मिल जाता है। शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।

"महाराज! जैसे यात्रियों से शुल्क (किराया) ले ले कर धनी बना कोई बन्दरगाह का जहाजी व्यापारी महासमुद्र में पैठ कर वङ्ग, तक्कोल, चीन, सौवीर, सुराष्ट्र, अलसन्द, कोलपट्टन, या सुवर्णभूमि कहीं भी चला जाता है; वैसे ही श्रमण इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन करके फल पा लेता है, और शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण पर उसका अधिकार हो जाता है।

१७. "महाराज! जैसे किसान पहले कंकड़-पत्थर और घास-फूस (कूड़ा) दूर करता है, फिर जोत कर, बोकर, पटा कर, रखवाली कर, कटनी और दौनी कर बहुत धान इकट्ठा कर लेता है, और तब सभी निर्धन, दरिद्र और दुर्गत पुरुष उसके अधीन हो जाते हैं; वैसे ही इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर वह श्रमण सभी फल पा लेता है, और शान्त, सुखसमापत्ति निर्वाण का अधिकारी हो जाता है।

१८. "महाराज! जैसे राजपरिवार का क्षत्रिय राज्याभिषेक पाने के बाद अपराधियों को कैसा भी दण्ड देने में समर्थ होता है, अपनी इच्छा के अनुसार दूसरों पर शासन करता है और तब सारी पृथ्वी

---

१. *छाये हुए गृह, कुटी या वृक्षमूल को छोड़ खुले आकाश में नीचे रहने के व्रत को 'आभ्यवकाशिकाङ्ग' कहते हैं।*

२. *इसी तरह उपर्युक्त वासयोग्य स्थानों को छोड़कर एकमात्र श्मशान में रहने के व्रत को 'श्मशानिकाङ्ग' कहते हैं।*

३. *'यह आसन आपके लिये है'— यह कहकर पहले से बिछाये आसन को ही ग्रहण करने वाला भिक्षु 'यथासंस्तरिक' कहलाता है। इसके इस नियम को 'यथासंस्तरिकाङ्ग' कहते हैं।*

४. *सोना, टहलना, खड़ा होना और बैठना-भिक्षु के ये चार 'ईर्यापथ' कहे गये हैं। इनमें से सोना छोड़कर सर्वदा (दिन-रात) बैठा रहने वाला भिक्षु 'नैषद्यक' और इस व्रत का पालन करना 'नैपद्यकाङ्ग' कहलाता है।*

(विस्तार के लिये द्र०-विसु० म०, द्वि० प०)

चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि जिनसासनवरे इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, केवला च समणगुणा तस्साधेय्या होन्ति।

१९. "ननु, महाराज, थेरो उपसेनो वङ्गन्तपुत्तो सल्लेखधुतगुणे परिपूरिकारिताय अनादियित्वा सावत्थिया सङ्घस्स कतिकं सपरिसो नरदम्मसारथिं पटिसल्लानगतं उपसङ्कमित्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दित्वा एकमन्तं निसीदि। भगवा च तं सुनिवनीतं परिसं ओलोकेत्वा हट्ठतुट्ठो पमुदितो उदग्गो परिसाय सद्धिं सल्लापं सल्लपित्वा असम्भिन्नेन ब्रह्मस्सरेण एतदवोच— 'पासादिका खो पन त्यायं, उपसेन, परिसा, कथं त्वं, उपसेन, परिसं विनेसी' ति? सोपि सब्बञ्ञुना दसबलेन देवातिदेवेन पुट्ठो यथाभूतसभावगुणवसेन भगवन्तं एतदवोच—'यो कोचि मं, भन्ते, उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं वा निस्सयं वा याचति, तमहं एवं वदामि—अहं खो, आवुसो, आरञ्ञिको पिण्डपातिको पंसुकूलिको तेचीवरिको, सचे त्वं पि आरञ्ञिको भविस्ससि पिण्डपातिको पंसूकूलिको तेचीवरिको, एवाहं पब्बाजेस्सामि निस्सयं दस्सामी ति। सचे सो मे, भन्ते, पटिस्सुणित्वा नन्दति ओरमति, एवाहं तं पब्बाजेमिनिस्सयं देमि। सचे न नन्दति न ओरमति, न तं पब्बाजेमि न निस्सयं देमि। एवाहं, भन्ते, परिसं विनेमी' ति। एवं पि, महाराज, धुतगुणवरसमादिण्णो जिनसासनवरं इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

२०. "यथा, महाराज, पदुमं अभिवुद्धपरिसुद्धउदिच्चजातिप्पभवं सिनिद्धं मुदु लोभनीयं सुगन्धं पियं पत्थितं पसत्थं जलकद्दममनुपलित्तं अणुपत्तकेसरकण्णिकाभिमण्डितं भमरगणसेवितं सीतलसलिलसम्बद्धं; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि अरियसावको तिंसगुणवरेहि समुपेतो होति।

उसके अधीन हो जाती है; वैसे ही इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर श्रमण सभी फल पा लेता है, और शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।

१९. "महाराज! क्या आपको ज्ञात नहीं है कि वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन धुताङ्ग व्रत से पवित्र हो श्रावस्ती के भिक्षुओं के समझौते की अपेक्षा न कर भगवान् (पुरुषों को दमन करने वालों) के पास अपने भिक्षुओं के साथ पहुँच गया था, जो उस समय एकान्तवास कर रहे थे, और प्रणाम कर एक ओर बैठ गया था। भगवान् उन भिक्षुओं को वैसा शिक्षित देख बहुत प्रसन्न हुए थे और बहुत हर्ष के साथ इन सुन्दर शब्दों में उनसे कहा था—"उपसेन! तुम्हारे भिक्षु बहुत शिक्षित ज्ञात होते हैं, तुमने इन्हें कैसे विनीत किया है?' "देवातिदेव सर्वज्ञ भगवान् के इस प्रश्न को सुन सत्य बात बताते हुये उसने कहा था—'भन्ते ! जो कोई मेरे पास भिक्षु या मेरा शिष्य बनने आता है उसे मैं पहले कहता हूँ—'सुनो! मैं जंगल में रहा करता हूँ, पिण्डपात (भिक्षा) कर के खाता हूँ, गुदड़ी चीवर धारण करता हूँ। यदि तुम भी मेरा साथ देने के लिये सन्तुष्ट हो तो शिष्य बन सकते हो।' इस पर यदि वह स्वेच्छया सन्नद्ध हो जाता है तो मैं उसे अपना शिष्य बना लेता हूँ। यदि वह इस पर सन्नद्ध नहीं होता तो मैं उसे विदा कर देता हूँ। भन्ते ! मैं उन्हें इसी तरह सिखाता हूँ।' महाराज! इस तरह श्रमण इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर सभी फल पा लेता है, और शान्त, सुखसमापत्ति निर्वाण का अधिकारी हो जाता है।

२०. "महाराज! जैसे कमल की जाति बहुत शुद्ध और ऊँची है। वह सुन्दर, कोमल,

"कतमेहि तिंसगुणवरेहि? सिनिद्धमुदुमद्दवमेत्तचित्तो होति, घातितहतविहतकिलेसो होति, हतनिहतमानदप्पो होति, अचलदळ्हनिविट्ठनिब्बेमतिकसद्धो होति, परिपुण्णपीणितपहट्ठलोभनीयसन्तसुखसमापत्तिलाभी होति, सीलवरपवरअसमसुचिगन्धपरिभावितो होति, देवमनुस्सानं पियो होति मनापो, खीणासवअरियवरपुग्गलपत्थितो, देवमनुस्सानं वन्दितपूजितो, बुधविबुधपण्डितजनानं थुतथवितथोमितपसत्थो, इध वा हुरं वा लोकेन अनुपलित्तो, अप्पथोकवज्जे पि भयदस्सावी, विपुलवरसम्पत्तिकामानं मग्गफलवरत्थसाधनो, आयाचितविपुलपणीतपच्चयभागी, अनिकेतसयनो, झानज्झोसिततप्पवरविहारी, विजटितकिलेसजालवत्थु, भिन्नभग्गसङ्कुटितसच्छिन्नगतिनीवरणो, अकुप्पधम्मो, अभिनीतवासो अनवज्जभोगी, गतिविमुत्तो, उत्तिण्णसब्बविचिकिच्छो, विमुत्तिज्झासितत्तो, दिट्ठधम्मो, अचलदळ्हभीरुत्ताणमुपगतो, समुच्छिन्नानुसयो, सब्बासवक्खयं पत्तो, सन्तसुखसमापत्तिविहारबहुलो, सब्बसमणगुणसमुपेतो। इमेहि तिंसगुणवरेहि समुपेतो होति।

२१. "ननु, महाराज, थेरो सारिपुत्तो दससहस्सिलोकधातुया अग्गपुरिसो, ठपेत्वा दसबलं लोकाचरियं। सो पि अपरिमितमसङ्ख्येय्यकप्पे समाचितकुसलमूलो ब्राह्मणकुलकुलीनो मनापिकं कामरतिं अनेकसतसङ्ख्यधनवरं च ओहाय जिनसासने पब्बजित्वा इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि कायवचीचित्तं दमयित्वा अज्जेतरहि अनन्तगुणसमन्नागतो गोतमस्स भगवतो सासनवरे

मनमोहक, सुगन्धित, प्रिय, प्रार्थित, प्रशस्त, जल और कीचड़ से न लगा हुआ, जिसके हर एक दल केसर से भरे रहते हैं, भ्रमरों से घिरा हुआ और शीतल जल में उत्पन्न होता है; महाराज! इसी तरह, इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर उन्हें साथ लेने से आर्यश्रावक तीस गुणों से युक्त होता है।

"किन तीस गुणों से?" १. उसका चित्त कोमल, स्निग्ध और मैत्री भाव से पूर्ण होता है, २. उसके क्लेश सर्वथा नष्ट हो गये रहते हैं, ३-४. उसका अभिमान और दर्प चला जाता है, ५-९. उसकी श्रद्धा दृढ़, सबल, प्रतिष्ठित और अचल होती है, १०. पूर्ण प्रीतियुक्त शान्तसुख समापत्ति का लाभ करता है, ११. शील की उत्तम गन्ध फैलाने वाला होता है, १२-१३. देवताओं और मनुष्यों का प्रिय और मनाप होता है, १४. क्षीणाश्रव और सन्तों से चाहा जाता है, १५-१६. देवताओं और मनुष्यों से प्रार्थनीय और वन्दनीय होता है, १७. बुद्धिमान् और पण्डित लोगों से भूरि-भूरि प्रशंसा पाता है, १८. संसार या स्वर्ग के भोगों से अलिप्त रहता है, १९. थोड़ी सी भी निन्दा से डरता है, २०. निर्वाण पाने की इच्छा से लोग जिस मार्ग-फल की खोज करते हैं, उसके धन से धनी होता है, २१. सभी प्रत्ययों को पाने वाला होता है, २२. विना किसी घर-द्वार का होता है जो ध्यान के अभ्यास के लिये सब से बड़ी बात होती है, २३. क्लेश की जटा से सुलझा रहता है, आवागमन से सर्वथा मुक्त रहता है, २४. उसे धर्म में पूरा प्रवेश मिल जाता है, २५. मुक्ति की ओर पूरा झुक जाता है, २६-२८. इसी जन्म में अचल और दृढ़ शरणस्थल पा लेता है, मृत्यु का भय सर्वथा दूर हो जाता है, २९. सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं और शान्त, सुखमय ध्यान का लाभ कर लेता है, और ३०. श्रमण के समग्र गुणों को पा लेता है—इन तीस गुणों से वह युक्त होता है।

२१. "महाराज! स्थविर सारिपुत्र दशबल लोकगुरु (बुद्ध) को छोड़ दश हजार लोकधातुओं में अग्रपुरुष थे। अनन्त कल्पों से उन्होंने बहुत पुण्य एकत्र कर लिया था। उच्च ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने धन और ऐश्वर्य को लात मार कर बुद्ध-शासन में प्रव्रज्या की थी। प्रव्रजित होकर इन्हीं तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर आत्मसंयम किया था, जिस से आज वे भिक्षुओं में श्रेष्ठ और भगवान्

धम्मचक्कमनुपवत्तको जातो। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन एक*ङ्गुत्तरनिकाय*-वरलञ्छके—'नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकपुग्गलं पि समनुपस्सामि, यो एवं तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; यथयिदं, भिक्खवे, सारिपुत्तो। सारिपुत्तो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुपवत्तेती' '' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, यं किञ्चि नवङ्गं बुद्धवचनं, या च लोकुत्तरा किरिया, या च लोके अधिगमविपुलवरसम्पत्तियो सब्बं तं तेरसु गुणेसु समोधानोपगतं'' ति॥

(इमस्मिं वग्गे द्वे पञ्हा) *चतुत्थो अनुमानवग्गो निट्ठितो॥*

॥ अनुमानपञ्हो निट्ठितो ॥

बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्त्तक माने जाते हैं। *अङ्गुत्तरनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! सारिपुत्र को छोड़ कर मैं किसी भी दूसरे भिक्षु को ऐसा नहीं पाता, जो मेरे द्वारा चलाये गये धर्मचक्र को फिर चलावे। भिक्षुओ! सारिपुत्र ही मेरे द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र को भलीभाँति चला सकता है'।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! नौ अङ्गों वाले बुद्धवचन, लोकोत्तर क्रिया, संसार में अच्छी से अच्छी पाने योग्य वस्तु—ये सभी धुताङ्गव्रत पालन करने से प्राप्त हो सकते हैं।''

(इस वर्ग में दो प्रश्न हैं) *चतुर्थ अनुमानवर्ग समाप्त॥*

॥ अनुमानप्रश्न समाप्त ॥

६. ओपम्मकथापञ्हो

मातिका

"भन्ते नागसेन, कतिहि अङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु अरहत्तं सच्छिकरोती" ति?

"इध, महाराज, अरहत्तं सच्छिकातुकामेन भिक्खुना—

१. गद्रभवग्गो

१. गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। २. कुक्कुटस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि। ३. कलन्दकस्स एकं[१] ....। ४. दीपिनिया एकं....। ५. दीपिकस्स द्वे ....। ६. कुम्मस्स पञ्च ....। ७. वंसस्स एकं....। ८. चापस्स एकं....। ९. वायसस्सस द्वे ....। १०. मक्कटस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानि।

२. समुद्दवग्गो

११. "लाबुलताय एकं....। १२. पदुमस्स तीणि ....। १३. बीजस्स द्वे ....। १४. सालकल्याणिकाय एकं ....। १५. नावाय तीणि ....। १६. नावा-लग्गनकस्स द्वे ....। १७. कूपस्स एकं ....। १८. नियामकस्स तीणि ....। १९. कम्मकरस्स एकं....। २० समुद्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि।

३. पठविवग्गो

२१. पठविया पञ्च ....। २२. आपस्स पञ्च ....। २३. तेजस्स पञ्च ....। २४. वायुस्स

---

६. औपम्यकथाप्रश्न

मातृका

"भन्ते नागसेन! किन गुणों को पाकर भिक्षु अर्हत्–पद का साक्षात्कार करता है?"

"महाराज! अर्हत्–पद पाने के लिये भिक्षु में ये गुण होने चाहिये—

१. गर्दभवर्ग

१. गदहे का एक गुण	२. मुर्गे के पाँच गुण
३. गिलहरी का एक गुण	४. मादा चीता का एक गुण
५. नर चीते के दो गुण	६. कछुए के पाँच गुण
७. बाँस का एक गुण	८. धनुष का एक गुण
९. कौवे के दो गुण	१०. वानर के दो गुण

२. समुद्रवर्ग

११. लौकी का एक गुण	१२. कमल के तीन गुण
१३. बीज के दो गुण	१४. शालवृक्ष का एक गुण
१५. नाव के तीन गुण	१६. लङ्गूर के दो गुण
१७. पतवार का एक गुण	१८. कर्णधार के तीन गुण
१९. केवट का एक गुण	२०. समुद्र के पाँच गुण

---

१. एत्थ उपरि च सब्बत्थ 'अङ्गं गहेतब्बं', 'अङ्गानि गहेतब्बानि' इति वा पसङ्गानुसारं पठित्वा मातिका पूरेतब्बा।

पञ्च .....। २५. पब्बतस्स पञ्च ....। २६. आकासस्स पञ्च ....। २७. चन्दस्स पञ्च ....। २८. सुरियस्स सत्त। .... २९. सक्कस्स तीणि ....। ३०. चक्कवत्तिस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानि।

४. उपचिकावग्गो

३१. उपचिकाय एकं....। ३२. बिळारस्स द्वे ....। ३३. उन्दुरस्स एकं....। ३४. विच्छिकस्स एकं....। ३५. नकुलस्स एकं ....। ३६. जरसिङ्गालस्स द्वे ....। ३७. मिगस्स तीणि....। ३८. गोरूपस्स चत्तारि ....। ३९. वराहस्स द्वे ....। ४०. हत्थिस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि।

५. सीहवग्गो

४१. सीहस्स सत्त ....। ४२. चक्कवाकस्स तीणि ....। ४३. पेणाहिकाय द्वे ....। ४४. घरकपोतस्स एकं ....। ४५. उलूकस्स द्वे ....। ४६. सतपत्तस्स एकं....। ४७. वग्गुलिस्स द्वे ....। ४८. जलूकाय एकं ....। ४९. सप्पस्स तीणि....। ५०. अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं।

६. मक्कटवग्गो

५१. "पन्थमक्कटकस्स एकं....। ५२. थनसितदारकस्स एकं....। ५३. चित्तकधर-कुम्मस्स एकं....। ५४. पवनस्स पञ्च....। ५५. रुक्खस्स तीणि ....। ५६. मेघस्स पञ्च....।

---

३. पृथ्वीवर्ग

२१. पृथ्वी के पाँच गुण	२२. जल के पाँच गुण
२३. अग्नि (तेज) के पाँच गुण	२४. वायु के पाँच गुण
२५. पर्वत (हाड़) के पाँच गुण	२६. आकाश के पाँच गुण
२७. चन्द्रमा के पाँच गुण	२८. सूर्य के सात गुण
२९. इन्द्र के तीन गुण	३०. चक्रवर्ती राजा के चार गुण

४. उपचिकावर्ग

३१. दीमक(उपचिका) का एक गुण	३२. बिल्ली के दो गुण
३३. चूहे का एक गुण	३४. बिच्छू का एक गुण
३५. नेवले का एक गुण	३६. बूढे सियार के दो गुण
३७. हरिण के तीन गुण	३८. बैल के चार गुण
३९. सूअर के दो गुण	४०. हाथी के पाँच गुण

५. सिंहवर्ग

४१. सिंह के सात गुण.	४२. चकवा के तीन गुण
४३. पेणाहिका पक्षी के दो गुण	४४. गृह–कपोत का एक गुण
४५. उल्लू के दो गुण	४६. सारस का एक गुण
४७. बागुर के दो गुण	४८. जोंक का एक गुण
४९. साँप के तीन गुण	५०. अजगर का एक गुण

६. मर्कटवर्ग

५१. मकड़े का एक गुण	५२. दूध–पीते बच्चे का एक गुण
५३. स्थल–कछुये का एक गुण	५४. जंगल के पाँच गुण
५५. वृक्ष के तीन गुण	५६. मेघ के पाँच गुण

५७. मणिरतनस्स तीणि....।५८. मागविकस्स चत्तारि....।५९. बाळिसिकस्स द्वे ....।६०. तच्छकस्स द्वे गहेतब्बानि।

७. कुम्भवग्गो

६१."कुम्भस्स एकं....।६२. काळायसस्स द्वे ....।६३. छत्तस्स तीणि ....।६४. खेत्तस्स तीणि ....।६५. अगदस्स द्वे....।६६. भोजनस्स तीणि ....।६७. इस्सासस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानि।

८. राजङ्गवग्गो

६८. "रञ्ञो चत्तारि ....।६९. दोवारिकस्स द्वे....।७०. निसदाय एकं....।७१. पदीपस्स द्वे ....।७२. मयूरस्स द्वे ....।७३. तुरङ्गस्स द्वे ....।७४. सोण्डिकस्स द्वे ....।७५. इन्दखीलस्स द्वे....।७६. तुलाय एकं ....।७७. खग्गस्स द्वे ....।७८. मच्छस्स द्वे ....।७९. इणगाहकस्स एकं....।८०. ब्याधितस्स द्वे ....।८१. मतस्स द्वे ....।८२. नदिया द्वे ....।८३. उसभस्स एकं ....। ८४. मग्गस्स द्वे ....। ८५. सुङ्कसायिकस्स एकं....। ८६. चोरस्स तीणि....।८७. सकुणग्घिया एकं....।८८. सुनखस्स एकं....। ८९. तिकिच्छकस्स तीणि....। ९०. गब्भिनिया द्वे ....। ९१. चमरिया एकं ....। ९२. किकिया द्वे ....। ९३. कपोतिकाय तीणि ....।९४. एकनयनस्स द्वे ....।९५. कस्सकस्स तीणि ....। ९६. जम्बुकसिङ्गालिया

---

५७. मणि के तीन गुण	५८. शिकारी के चार गुण
५९. मछुआरे के तीन गुण	६०. तक्षक (बढ़ई) के दो गुण

७. कुम्भवर्ग

६१. जल के घड़े का एक गुण	६२. लोहे के दो गुण
६३. छाते के तीन गुण	६४. (धान के) खेत के तीन गुण
६५. औषध के दो गुण	६६. भोजन के तीन गुण
६७. धनुर्धर(तीरन्दाज) के चार गुण	

८. राजाङ्गवर्ग

६८. राजा के चार गुण	६९. द्वारपाल के दो गुण
७०. चक्की का एक गुण	७१. दीपक के दो गुण
७२. मोर के दो गुण	७३. घोड़े के दो गुण
७४. शौण्डिक(मतवाले) के दो गुण	७५. स्तम्भ के दो गुण
७६. तराजू का एक गुण	७७. तलवार के दो गुण
७८. मछली के दो गुण	७९. ऋण लेने वाले का एक गुण
८०. रोगी के दो गुण	८१. मुर्दे के दो गुण
८२. नदी के दो गुण	८३. भैंसे का एक गुण
८४. मार्ग के दो गुण	८५. कर उगाहने वाले का एक गुण
८६. चोर के तीन गुण	८७. बाज पक्षी का एक गुण
८८. कुत्ते का एक गुण	८९. वैद्य के तीन गुण
९०. गर्भिणी स्त्री के दो गुण	९१. चमरी गाय का एक गुण
९२. कृकी पक्षी के दो गुण	९३. कबूतरी के तीन गुण

....। ९७. चङ्गवारकस्स द्वे ....। ९८. दब्बिया एकं....। ९९. इणसाधकस्स तीणि ....। १००. अनुविचिनकस्स एकं ....। १०१. सारथिस्स द्वे ....। १०२. भोजकस्स द्वे ....। १०३. तुन्नवायस्स एकं....। १०४. नाविकस्स एकं ....। १०५. भमरस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति।

मातिकायो निट्ठिता॥

१. गद्रभवग्गो

१. गद्रभपञ्हो

१. ''भन्ते नागसेन, 'गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, गद्रभो नाम सङ्कारकूटे पि चतुक्के पि सिङ्घाटके पि गामद्वारे पि थुसरासिम्हि पि यत्थ कत्थचि पि सयति, न सयनबहुलो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन तिणसन्थारे पि पण्णसन्थारे पि कट्ठमञ्चके पि छमाय पि यत्थ कत्थचि चम्मखण्डं पत्थरित्वा यत्थ कत्थचि सयितब्बं, न सयनबहुलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं।

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'कलिङ्गरूपधाना, भिक्खवे, एतरहि, मम सावका विहरन्ति अप्पमत्ता आतापिनो पधानस्मिं' ति। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना पि—

'पल्लङ्केन निसिन्नस्स, जण्णुकेनाभिवस्सति।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो''' ति॥ *(थेरगाथा, ९८५)*

---

९४. काने के दो गुण	९५. कृषक (गृहस्थ) के तीन गुण
९६. शृगाली का एक गुण	९७. पिटारी के दो गुण
९८. करछुल(दर्वी) का एक गुण	९९. महाजन के तीन गुण
१००. (परीक्षक) का एकगुण	१०१. कोचवान के दो गुण
१०२. ग्रामप्रधान का एक गुण	१०३. दर्जी का एक गुण
१०४. नाविक का एक गुण	१०५. भौंरे के दो गुण

मातृका समाप्त।।

१. गर्दभवर्ग

१. गर्दभाङ्गप्रश्न—१.''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में गदहे का भी एक गुण होता है, कृपया बताइये वह कौन सा गुण है?'' (१) ''महाराज! जैसे गदहा जहाँ कहीं कूड़े करकट पर, या चौक चौराहे पर, या गाँव के दरवाजे पर, या भूसे के ढेर पर लेटता है वहाँ निश्चिन्त हो कर सो नहीं जाता; वैसे ही योग–साधना करने वाले योगी को कहीं भी, चाहे चटाई, पत्ते की चटाई, काठ की चौकी या धरती पर लेट कर निश्चिन्त हो, सो नहीं जाना चाहिये। महाराज! गदहे का यह एक गुण उस भिक्षु में होना चाहिये।

''महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है— ''भिक्षुओ! मेरे श्रावक लकड़ी सिरहाने रख उससे तकिये का उपयोग कर लेते हैं। वे अप्रमत्त और संयमशील होकर अपने कार्य में उत्साह से लगे रहते हैं। महाराज! धर्मसेनापति *सारिपुत्र* ने भी कहा है—

२. कुक्कुटङ्गपञ्हो

२. ''भन्ते नागसेन, 'कुक्कुटस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, कुक्कुटो कालेन पटिसल्लीयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कालेन समयेनेव चेतियङ्गणं सम्मज्जित्वा पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठपेत्वा सरीरं पटिजग्गित्वा नहायित्वा चेतियं वन्दित्वा वुड्ढानं भिक्खूनं दस्सनाय गन्त्वा कालेन समयेन सुञ्ञागारं पविसितब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो कालेन समयेनेव वुट्ठाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कालेन समयेनेव वुट्ठहित्वा चेतियङ्गणं सम्मज्जित्वा परिभोजनीयं उपट्ठपेत्वा सरीरं पटिजग्गित्वा चेतियं वन्दित्वा पुनदेव सुञ्ञागारं पविसितब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो पठविं खणित्वा खणित्वा अज्झोहारं अज्झोहरति; एवमेव खो,महाराज, योगिना योगावचरेन पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा अज्झोहारं अज्झोहरितब्बं 'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति। अनवज्जता च फासु विहारो चा' ति। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता, देवातिदेवेन—

आसन मारकर बैठे हुए भिक्षु पर जल बरस कर घुटने तक भी क्यों न लग जाय, उससे ध्यान में लीन भिक्षु को क्या चिन्ता!

२. कुक्कुटाङ्गप्रश्न— २. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में मुर्गे के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे मुर्गा ठीक समय पर सोता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को ठीक समय पर चैत्य के चारों और झाडू लगाना चाहिये; जल और भोजन रख देना चाहिये; अपना शरीर-कृत्य करना चाहिये; स्नान कर चैत्य की वन्दना करनी चाहिये और वृद्ध भिक्षुओं से मिलजुल कर अपने एकान्त प्रकोष्ठ में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। भिक्षु में मुर्गे का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! मुर्गा अपने ठीक समय पर उठ जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को भी ठीक समय पर उठ जाना चाहिए चैत्य के चारों और झाडू लगाना चाहिये, जल और भोजन रख देना चाहिये, शरीर के कृत्य करने चाहिये, चैत्य की वन्दना करने के लिये जाना चाहिये, और फिर अपने एकान्त प्रकोष्ठ में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। मुर्गे का यह दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! मुर्गा जमीन को पैरों से कुरेद कर दाना चुगता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को भी स्मृति के सहारे सावधान होकर कुछ खाना चाहिये—'मैं इस भोजन को ग्रहण करता हूँ, परन्तु न स्वाद लेने के लिये, न प्रमाद के लिये, न अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिये, किन्तु केवल अपने शरीर को बनाये रखने के लिये, अपने जीवनयापन के लिये, पेट की अग्नि को बुझाने के लिये और ब्रह्मचर्यव्रत-पालन करने के लिये'। इस प्रकार, मैं अपनी पुरानी वेदनाओं को दूर करता हूँ, और नई पैदा होने का अवसर नहीं देता। इससे मेरी लोकयात्रा भी निभ जायगी— निर्दोष और आराम से। महाराज! भिक्षु में मुर्गे का यह तीसरा गुण होना चाहिये। देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'कन्तारे पुत्तमंसं व, अक्खस्सब्भञ्जनं यथा।
एवं आहरि आहारं, यापनत्थममुच्छितो' ति॥ *(पच्चवेक्खणगाथा)*

(४) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो सचक्खुको पि रतिं अन्धो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनन्धेनेव अन्धेन विय भवितब्बं, अरञ्ञे पि गोचरगामे पिण्डाय चरन्तेनापि रजनीयेसु रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्बधम्मेसु अन्धेन बधिरेन मूगेन विय भवितब्बं, न निमित्तं गहेतब्बं, नानुब्यञ्जनं गहेतब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन महाकच्चानेन—

'चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा बधिरो यथा।
पञ्ञवास्स यथा मूगो, बलवा दुब्बलोरिव।
अत्थअत्थे समुप्पन्ने, सयेत मतसायिकं' ति॥ *(थे०गा० ५.१)*

(५) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो लेड्डुदण्डलगुळमुग्गरेहि परिपातियन्तो पि सकं गेहं न विजहाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चीवरकम्मं करोन्तेन पि नवकम्मं करोन्तेन पि वत्तपटिवत्तं करोन्तेन पि उद्दिसन्तेन पि उद्दिसापेन्तेन पि योनिसो मनसिकारो न विजहितब्बो। सकं खो पनेतं, महाराज, योगिनो गेहं यदिदं योनिसो मनसिकारो। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं।

''भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन— 'को च, भिक्खवे, भिक्खुनो गोचरो सको पेत्तिको विसयो, यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना' ति। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना पि—

'यथा सुदन्तो मातङ्गो, सकं सोण्डं न मद्दति।
भक्खाभक्खं विजानाति, अत्तनो वुत्तिकप्पनं॥

'निर्जन जंगल में अपने पुत्र के मांस के समान या गाड़ी के धुरे में लगी हुई चर्बी के समान जीवन बनाये रखने के लिये ही योगी उदर-ज्वाला से पीड़ित होकर आहार ग्रहण करते हैं।।'

(४) ''महाराज! मुर्गे को आँख रहने पर भी वह रात के समय अन्धा हो जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अन्धा न होने पर भी अन्धा बन कर रहना चाहिये—जंगल में भी, गाँव में भी, भिक्षाटन करते समय भी मन को खींचने वाले रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रति अन्धा, बहरा और गूँगा बने रहना चाहिये, किसी में आसक्त नहीं होना चाहिये, किसी में स्वाद नहीं लेना चाहिये। महाराज! *महाकात्यायन स्थविर* ने भी कहा है—

'सांसारिक विषयों के सामने आने पर, आँख रहते अन्धा, कान रहते बहरा, जीभ रहते गूँगा और बलवान् रहते दुर्बल बन जाना चाहिये, मानों जैसे कोई सोया या मरा हुआ हो।।'

(५) ''महाराज! जैसे ढेले, डण्डे, लाठी या मुद्गर से खदेड़ दिये जाने पर भी मुर्गे अपना घर नहीं छोड़ते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चीवर धारण करते समय, विहार की मरम्मत करते समय, अपने दूसरे व्रतों को पूरा करते समय, उपदेश देते या सुनते समय— कभी भी अपनी मानसिक तत्परता नहीं छोड़नी चाहिये। महाराज! योगी का अपना घर तो मानसिक तत्परता है। भिक्षु में यह मुर्गे का पाँचवा गुण होना चाहिये।

''महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! भिक्षुओं की अपनी पैतृक सम्पत्ति ये ही चार स्मृतिप्रस्थान हैं!' महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

तथेव बुद्धपुत्तेन, अप्पमत्तेन वा पन।
जिनवचनं न मद्दितब्बं, मनसिकारवरुत्तमं'' ति॥

३. कलन्दकङ्गपञ्हो

३. ''भन्ते नागसेन, 'कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, कलन्दको पटिसत्तुम्हि ओपतन्ते नङ्गुट्ठं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव नङ्गुट्ठलगुळेन पटिसत्तुं पटिबाहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेससत्तुम्हि ओपतन्ते सतिपट्ठानलगुळं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव सतिपट्ठानलगुळेन सब्बकिलेसा पटिबाहितब्बा। इदं, महाराज, कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *चुळ्लपन्थकेन*—

''यदा किलेसा ओपतन्ति, सामञ्ञगुणधंसना।
सतिपट्ठानलकुटेन, हन्तब्बा ते पुनप्पुनं'' ति॥

४. दीपिनियङ्गपञ्हो

४. ''भन्ते नागसेन, 'दीपिनिया एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, दीपिनी सकिं येव गब्भं गण्हाति, न पुनप्पुनं पुरिसं उपेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आयतिं पटिसन्धिं उप्पत्तिं गब्भसेय्यं चुतिं भेदं खयं विनासं संसारभयं दुग्गतिं विसमं सम्पीळितं दिस्वा 'पुनब्भवे नप्पटिसन्दहिस्सामी' ति योनिसो मनसिकारो करणीयो। इदं, महाराज, दीपिनिया एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते धनियगोपालकसुत्ते*—

'जैसे हाथी सोता हुआ भी अपनी सूड़ को दबने नहीं देता, अपने अनुकूल भक्ष्य–अभक्ष्य का तत्काल ज्ञान कर लेता है; उसी तरह, बुद्धपुत्रों को सदा सावधान रहकर बुद्धोपदेश को दबने नहीं देना चाहिये, जो कि मनन करने के लिये सर्वोत्तम है।।'

३. कलन्दकाङ्गप्रश्न— ३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कलन्दक (गिलहरी) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे किसी शत्रु के आने पर गिलहरी अपनी पूँछ को पटक–पटक कर फुला लेती है और उसी से उसे भगा देती है। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को क्लेशरूपी शत्रु के निकट आने पर स्मृतिप्रस्थानरूपी लाठी पटक–पटक कर उसे भगा देना चाहिये। महाराज! योगसाधक भिक्षु में गिलहरी का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर *चुळ्लपन्थक* ने भी कहा है—

'जब श्रमण के गुणों को नष्ट करने वाले क्लेश–शत्रु चढ़ाई कर दें, तो स्मृतिप्रस्थानरूपी लाठी से उन्हें मार–मार कर भगा देना चाहिये।।'

४. द्वीपिनीविषयकप्रश्न— ४. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में द्वीपिनी (मादा चीते) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण कौन सा है?'' (१) ''महाराज! जैसे मादा चीता एक ही बार गर्भ धारण करती है; दूसरी बार नर चीते के पास नहीं जाती। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को फिर प्रतिसन्धि (जन्म) लेना, गर्भ में आना, मर जाना, नष्ट होना, बूढ़ा होना और संसार की बुरी से बुरी दुर्गतियों का भय देख कर आवागमन से मुक्त हो जाने का सङ्कल्प कर लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में मादा चीते का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! *सुत्तनिपात* के धनियगोपसूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'उसभोरिव मछेत्व बन्धनानि, नागो पूतिलतं व दालियित्वा।
नाहं पुन उपेस्सं गब्भसेय्यं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देवा'' ति॥ (सु०नि०१.२.९२)

५. दीपिकङ्गपञ्हो

५. ''भन्ते नागसेन, 'दीपिकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, दीपिको अरञ्ञे तिणगहणं वा वनगहनं वा पब्बतगहनं वा निस्साय निलीयित्वा मिगे गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विवेकं सेवितब्बं। अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं अप्पसद्दं अप्पनिग्घोसं विजनवातं मनुस्सराहसेय्यकं पटिसल्लानसारुप्पं विवेकं सेवमानो हि, महाराज, योगी योगावचरो न चिरस्सेव छळभिञ्ञासु च वसीभावं पापुणाति। इदं, महाराज, दीपिकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेहि *धम्मसङ्गाहकेहि*—

'यथा पि दीपिको नाम, निलीयत्वा गण्हते मिगे।
तथेवायं बुद्धपुत्तो, युत्तयोगो विपस्सको।
अरञ्ञं पविसित्वान, गण्हाति फलमुत्तमं' ति॥

(२) ''पुन च परं, महाराज, दीपिको यं कञ्चि पसुं वधित्वा वामेन पस्सेन पतितं न भक्खेति: एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन वेळुदानेन वा पत्तदानेन वा पुप्फदानेन वा फलदानेन वा सिनानदानेन वा मत्तिकादानेन वा चुण्णदानेन वा दन्तकट्ठदानेन वा मुखोदक-दानेन वा चाटुकम्यताय वा मुग्गसुप्यताय वा पारिभट्ट्यकताय वा जङ्घपेसनीयेन वा वेज्जकम्मेन वा दूतकम्मेन वा पहिणगमनेन वा पिण्डपटिपिण्डेन वा दानानुप्पदानेन वा वत्थुविज्जाय वा

'साँड़ के समान रस्सी को तोड़, हाथी के समान सड़ी–गली बेल को नोच कर, मैं फिर गर्भ में नहीं आ सकता। मेघ! यदि चाहो तो खूब बरसो।।''

५. द्वीपिकाङ्गप्रश्न— ५. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नर चीते के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे चीता जङ्गल के घास–पात में, घनी झाड़ी में या पहाड़ में छिप, जानवरों पर घात लगाकर उन्हें पकड़ लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में आसन लगा कर बैठना चाहिये— जंगल में, वृक्ष के नीचे, पहाड़ पर, खोह में, कन्दरा में, श्मशान में, निर्जन वन में, पुआल के ढेर पर, शान्त जगह में— जहाँ कोलाहल न हो, जहाँ तेज हवा न चलती हो, जहाँ मनुष्य आते जाते न हों और जहाँ सुखपूर्वक समाधि लग जाती हो। महाराज! योगसाधक योगी एकान्त स्थान में रह कर ही शीघ्रता से छह अभिज्ञाओं को वश में कर लेता है। महाराज! चीते का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! संग्रहकार स्थविरों ने भी कहा है—

'जैसे चीता छिप कर जानवरों को पकड़ता है; वैसे ही योगसाधक ज्ञानी बुद्धपुत्र जंगल में रहकर उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं।।'

(२) ''महाराज! जैसे चीते का शिकार बायीं ओर गिर जाय तो वह उसे नहीं खाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घास, पत्ते, फूल, फल, स्नान, मिट्टी, चूने, दतुवन, मुँह धोने के लिये पानी, खुशामद या झूठ सच कह, या कुछ सेवाकर, या दूत का काम कर, कुछ ले दे कर, झाड़–फूँक, ग्रहों का फल

नक्खत्तविज्जाय वा अङ्गविज्जाय वा अञ्ञतरञ्ञतरेन वा बुद्धपटिकुट्ठेन मिच्छाजीवेन निप्फादितं भोजनं न भुञ्जितब्बं, वामेन पस्सेन पतितं पसुं विय दीपिको। इदं, महाराज, दीपिकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'वचीविञ्ञत्तिविप्फारा, उप्पन्नं मधुपायसं।
सचे भुत्तो भवेय्याहं, साजीवो गरहितो मम॥
यदि पि मे अन्तगुणं, निक्खमित्वा बही चरे।
नेव भिन्देय्यमाजीवं, चजमानो पि जीवितं' '' ति॥

६. कुम्मङ्गपञ्हो

६. ''भन्ते नागसेन, 'कुम्मस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति ?

(१) ''यथा, महाराज, कुम्मो उदकचरो उदके येव वासं कप्पेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बपाणभूतपुग्गलानं हितायानुकम्पिना मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन सब्बावन्तं लोकं फरित्वा विहरितब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, कुम्मो उदके उप्पिलवन्तो सीसं उक्खिपित्वा यदि कोचि पस्सति, तत्थेव निमुज्जति गाळ्हमोगाहति— 'मा मं सो पुन पस्सेय्यो' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेसेसु ओपतन्तेसु आरम्मणसरे निमुज्जितब्बं, गाळ्हमोगाहितब्बं—'मा मं किलेसा पुन पस्सेय्युं' ति। इदं, महाराज, कुम्मस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, कुम्मो उदकतो निक्खमित्वा कायं ओतापेति; एवमेव

या अङ्गों के लक्षण बताकर या और किसी बुद्ध द्वारा निन्दित मिथ्या आजीविका से कमा कर भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे कि वाम भाग में गिरे हुये शिकार को चीता नहीं खाता। महाराज! भिक्षु में चीते का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने कहा है—

'यदि मुख से माँग कर कुछ मीठी खीर खा लूँ, तो उससे मेरी जीविका निन्दित समझी जायेगी। यदि मेरी अँतड़ियाँ भूख से निकल कर बाहर भी चली जाँय तो भी मैं अपने सम्यगाजीवव्रत को नहीं तोड़ सकता, प्राण भले ही निकल जाँय।'

६. कूर्माङ्गप्रश्न— ६. ''भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कछुए के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! कछुआ जल का जीव है, जल में ही रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी प्राणियों, मनुष्यों का हित चाहते हुये, वैरभावरहित हो अनन्त और व्यापक मैत्रीभाव से सारे संसार को व्याप्त कर विहार करना चाहिये। महाराज! कछुए का यह पहला गुण है, जो भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''जैसे कछुआ अपना शिर निकाले जल में तैरता रहता है। यदि कोई उसकी ओर देखता है तो वह तुरन्त गहरे जल में डुबकी लगा कर छिप जाता है कि 'मुझे फिर देख न पावें; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश के पास आने पर तुरन्त अपने ध्यान–सरोवर में गहरा गोता लगा लेना चाहिये कि 'मुझे ये क्लेश फिर देख न पावें'। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे कछुआ कभी–कभी जल से बाहर निकल कर अपनी देह सुखाता

खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निसज्जट्ठानसयनचङ्कमतो मानसं नीहरित्वा सम्मप्पधाने मानसं ओतापेतब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, कुम्मो पठविं खणित्वा विवित्ते वासं कप्पेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभसक्कारसिलोकं पजहित्वा सुञ्ञं विवित्तं काननं वनपत्थं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं अप्पसद्दं अप्पनिग्घोसं पविवित्तमोगाहित्वा विवत्ते येव वासं उपगन्तब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'विवित्तं अप्पनिग्घोसं, वाळमिगनिसेवितं।
सेवे सेनासनं भिक्खु, पटिसल्लानकारणा' ति॥ *(थे०गा० ५७७)*

(५) "पुन च परं, महाराज, कुम्मो चारिकं चरमानो यदि किञ्चि पस्सति वा सुणाति वा, सोण्डिपञ्चमानि अङ्गानि सके कपाले निदहित्वा अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो तिट्ठति कायमनुरक्खन्तो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बत्थ रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्ब-धम्मेसु आपतन्तेसु छसु द्वारेसु संवरकवाटं अनुग्घाटेत्वा मानसं समोदहित्वा संवरं कत्वा सतेन सम्पजानेन विहातब्बं समणधम्मं अनुरक्खमानेन। इदं, महाराज, कुम्मस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे* कुम्मूपमसुत्तन्ते—

'कुम्मो व अङ्गानि सके कपाले, समोदहं भिक्खु मनोवितक्के।
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो, परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची'' ति॥

७. वंसङ्गपञ्हो

७. "भन्ते नागसेन, 'वंसस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, वंसो यत्थ वासो तत्थ अनुलोमेति, नाञ्ञत्थमनुधावति;

है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बैठे, खड़े, सोते या टहलते हुए ध्यान तोड़ कर अपने मन को क्लेशों के दबाने के उत्साह में सुखाना चाहिये। महाराज! कछुए का यह गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(४) "महाराज! जैसे कछुआ पृथ्वी पर एकान्त में घर बनाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार तथा प्रशंसा से दूर शून्य एकान्त जङ्गल, पर्वत, कन्दरा, खोह, निःशब्द, निर्जन स्थान में वास करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह चौथा गुण होना चाहिये। महाराज! वङ्गन्तपुत्र स्थविर *उपसेन* ने भी कहा है—

'वनैले पशुओं के रहने वाले एकान्त, निःशब्द स्थान में भिक्षु समाधि लगाने के लिये रहे।।'

(५) "महाराज! फिर जैसे कछुआ बाहर चलते रहने पर जब किसी को देख लेता है या कोई भयजनक संकेत पाता है तो अपने सारे अंगों को अपने खप्पर (कपाल) में समेट कर अपनी रक्षा करने के लिये चुपंचाप बैठ जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सभी ओर से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रलोभन आने पर अपनी छह इन्द्रियों के द्वारों पर संयम का आवरण (परदा) डाल देना चाहिये और अपने श्रमण-धर्म की रक्षा करने के लिये मन को ध्यान भावना में लगाकर सावधान हो जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* के कूर्मोपमसूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जैसे कछुआ अपने अंगों को अपनी खोपड़ी (कपाल) में छिपा लेता है; वैसे ही भिक्षु को भी

एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यं बुद्धेन भगवता भासितं नवङ्गं सत्थुसासनं तं अनुलोमयित्वा कप्पिये अनवज्जे ठत्वा समणधम्मं येव परियेसितब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन राहुलेन—

'नवङ्गं बुद्धवचनं, अनुलोमेत्वान सब्बदा।
कप्पिये अनवज्जस्मिं, ठत्वापायं समुत्तरिं'" ति॥

८. चापङ्गपञ्हो

८. "भन्ते नागसेन, 'चापस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, चापो सुतच्छितो नमितो यावग्गमूलं समकमेव अनुनमति न पटित्थम्भति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थेरनवमज्झिमसमकेसु अनुनमितब्बं न पटिप्फरितब्बं। इदं, महाराज, चापस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *विधु* (पुण्णक) *जातके*—

'चापो वूनुदरो धीरो, वंसो वापि पकम्पये।
पटिलोमं न वत्तेय्य, स राजवसतिं वसे" ति॥

९. वायसङ्गपञ्हो

९. "भन्ते नागसेन, 'वायसस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, वायसो आसङ्कितपरिसङ्कितो यत्तप्पयत्तो चरति; एवमेव खो,

---

अपने मन के वितर्कों को दबा देना चाहिये। विना किसी दूसरे पर बोझ हुये, किसी को कष्ट न देते हुए, विना किसी को कटु शब्द कहे, इस संसार से मुक्त हो जाना चाहिये।।'

७. वंशाङ्गप्रश्न— ७. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बाँस का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे वायु जिस ओर बहती है उसी ओर बाँस झुक जाता है, किसी दूसरी ओर नहीं जाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को नौ अङ्गों वाले बुद्ध–उपदेश के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिये, प्रतिकूल नहीं; श्रमण के यही धर्म हैं। महाराज! भिक्षु में बाँस का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर राहुल ने भी कहा है—

'बुद्ध के नौ अङ्गों वाले उपदेशानुसार सदा निर्दोष कार्य करते हुए, विघ्नों को मैं लाँघ गया।।'

८. चापाङ्गप्रश्न— ८. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में धनुष् का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?"

(१) "महाराज! जैसे अच्छी तरह नाप–जोख कर छीला धनुष् खींचने पर दोनों छोर से नम जाता है, डण्डे की तरह कठोर नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को स्थविर, नये, मध्यम और समान आयु के भिक्षुओं के प्रति नम्र हो कर रहना चाहिये, कठोर होकर नहीं। महाराज! भिक्षु में धनुष् का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! *विधुरपुण्णक जातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो धीर पुरुष धनुष के समान झुक जाय, बाँस के समान नम्रता से नम जाय, किसी के विरुद्ध खड़ा न हो वही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है।।'

९. वायसाङ्गप्रश्न— ९. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कौवे के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

महाराज, योगिना योगावचरेन आसङ्कितपरिसङ्कितेन यत्तप्पयत्तेन उपट्ठिताय सतिया संवुतेहि इन्द्रियेहि चरितब्बं। इदं, महाराज, वायसस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वायसो यं कञ्चि भोजनं दिस्वा ञातीहि संविभजित्वा भुञ्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो पत्तपरियापन्नमत्तं पि, तथारूपेहि लाभेहि पटिविभत्तभोगिना भवितब्बं सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि। इदं, महाराज, वायसस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

"सचे मे उपनामेन्ति, यथालद्धं तपस्सिनो।
सब्बे ते विभजित्वान, ततो भुञ्जामि भोजनं" ति॥

१०. मक्कटपञ्हो

१०. "भन्ते नागसेन, 'मक्कटस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, मक्कटो वासमुपगच्छन्तो तथारूपे ओकासे महतिमहारुक्खे पविवित्ते सब्बट्ठकसाखे भीरुत्ताणे वासमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लज्जिं पेसलं सीलवन्तं कल्याणधम्मं बहुस्सुतं धम्मधरं विनयधरं पियं गरुं भावनीयं वत्तारं वचनक्खमं ओवादकं विञ्ञापकं सन्दस्सकं समादपकं समुत्तेजकं एवरूपं कल्याणमित्तं आचरियं उपनिस्साय विहरितब्बं। इदं, महाराज, मक्कटस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, मक्कटो रुक्खे येव चरति तिट्ठति निसीदति, यदि निद्दं

---

(१) "महाराज! जैसे कौआ सदा आशङ्कित और सावधान रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपनी इन्द्रियाँ वश में किये हुये, बहुत संयत हो, सदा शंकित, चकित और सावधान रहना चाहिये, कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कौवे का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे कुछ भोजन पाने पर कौआ अपनी जाति-बिरादरी को बुला कर ही खाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने सदाचारी गुरुभाइयों में विना किसी भेदभाव के धर्म से प्राप्त भोजन को, यहाँ तक कि पात्र में लगे हुये को भी, बाँट कर खाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कौवे का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'तपस्वी के पाने योग्य जिस भोजन को लोग मुझे भेंट करते हैं, मैं उसे आपस में बाँट कर ही स्वयं ग्रहण करता हूँ।'

१०. मर्कटाङ्गप्रश्न— १०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में वानर के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वानर एकान्त स्थान में घनी शाखाओं वाले किसी सघन वृक्ष पर ही वास करता है जहाँ किसी प्रकार का डर-भय न हो; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बहुत देख-भाल कर ऐसा गुरु करना चाहिये जो लज्जावान्, कोमलस्वभाव, शीलवान्, पुण्यात्मा, पण्डित, धर्मज्ञ, प्रिय, गम्भीर, आदरणीय, वक्ता, किसी भी बात को समझाने में पटु, अच्छे उपदेश देने वाला, अच्छी सीख देने वाला, सन्मार्ग दिखाने वाला हो तथा धर्मोपदेश द्वारा भावों को जगाकर एक उत्सुकता पैदा कर सके। महाराज! भिक्षु में वानर का यह पहला गुण होना चाहिये।

ओक्कमति तत्थेव रत्तिं वासमनुभवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पवनाभिमुखेन भवितब्बं, पवने येव ठानचङ्कमनिसज्जसयनं निद्दं ओक्कमितब्बं। तत्थेव सतिपट्ठानमनुभवितब्बं। इदं, महाराज, मक्कटस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'चङ्कमन्तो पि तिट्ठन्तो, निसज्जसयनेन वा।
पवने सोभते भिक्खु, पवन्तं व वण्णितं'' ति॥

पठमो गद्रभवग्गो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं

गद्रभो चेव कुक्कुटो, कलन्दो दीपिनि-दीपिको।
कुम्मो वंसो च चापो च, वायसो अथ मक्कटो ति॥

२. समुद्दवग्गो

१. लाबुलतङ्गपञ्हो

११. ''भन्ते नागसेन,'लाबुलताय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, लाबुलता तिणे वा कट्ठे वा लताय वा सोण्डिकाहि आलम्बित्वा तस्सूपरि वड्ढति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अरहत्ते अभिवड्ढितु-कामेन मनसा आरम्मणं आलम्बित्वा अरहत्ते अभिवड्ढितब्बं। इदं, महाराज, लाबुलताय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'यथा लाबुलता नाम, तिणे कट्ठे लताय वा।
आलम्बित्वा सोण्डिकाहि, ततो वड्ढति उप्परि॥

---

(२) ''महाराज! फिर जैसे वानर वृक्षों पर ही चलता है, रहता है और बैठता है, यदि नींद आती है तो वहीं रात भी बिता देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जंगल में ही रहना चाहिये! जंगल में ही घूमना, फिरना, रहना, बैठना और सोना चाहिये। वही (अशैक्ष-अवस्था, जिसमें कुछ सीखने के लिये अवशिष्ट नहीं रह जाता, अर्थात् 'अर्हत् की अवस्था') स्मृतिप्रस्थान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में वानर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है—

'टहलते, खड़े होते, बैठते और सोते हुये भी भिक्षु अच्छे जंगल में ही रहे। बुद्धों ने इसी की प्रशंसा की है।।'

पहला गर्दभवर्ग समाप्त।।

उदान— इस वर्ग में— गर्दभ, कुक्कुट, कलन्दक, द्वीपिनी, द्वीपिक, कूर्म, वंश, चाप, वायस और मर्कट— ये दस प्रश्न संगृहीत हैं।।

२. समुद्रवर्ग

१. अलाबूलताङ्गप्रश्न— ११. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अलाबू (लौकी) की लता का एक गुण होना चाहिए, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे लौकी की लता घास, लकड़ी या किसी दूसरी लता पर अपनी फुनगियाँ फेंक फैल कर बढ़ती जाती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ध्यान का आलम्बन कर अर्हत्-पद तक पहुँच जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में लौकी का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

तथेव बुद्धपुत्तेन, अरहत्तफलकामिना।
आरम्मणं आलम्बित्वा, वड्ढितब्बं असेक्खफले''' ति॥

२. पदुमङ्गपञ्हो

१२. ''भन्ते नागसेन, 'पदुमस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पदुमं उदके जातं उदके सम्बद्धं अनुपलित्तं उदकेन; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुले गणे लाभे यसे सक्कारे सम्माननाय परिभोगपच्चयेसु च सब्बत्थ अनुपलित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पदुमं उदका अच्चुग्गम्म ठाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बलोकं अभिभवित्वा अच्चुग्गम्म लोकुत्तरधम्मे ठातब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, पदुमं अप्पमत्तकेन पि अनिलेन ईरितं चलति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पमत्तकेसु पि किलेसेसु संयमो करणीयो, भयदस्साविना विहरितब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी समादाय सिक्खति सिक्खापदेसू'' ति। *(म०नि०, १–३३; दी०नि०, २–४३)*

३. बीजङ्गपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, 'बीजस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, बीजं अप्पकं पि समानं भद्दके खेत्ते वुत्तं देवे सम्मा धारं

'जैसे लौकी की लता घास, लकड़ी या किसी दूसरी लता पर चढ़कर फुनगियों को बढ़ा कर फैल जाती है। वैसे ही, अर्हत्–पद की इच्छा रखने वाले बुद्धपुत्र को ध्यान का आलम्बन कर अशैक्ष–फल तक पहुँच जाना चाहिये।।'

२. पद्माङ्गप्रश्न– १२. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कमल के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे कमल जल में पैदा होता है और जल में ही बढ़ता है, परन्तु वह जल से लिप्त नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी कुल, गण, लाभ, यश, सत्कार, सम्मान या किसी उपभोग्य पदार्थ से लिप्त नहीं होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कमल का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! जैसे कमल जल से ऊपर उठ कर आकाश में खड़ा रहता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को संसार छोड़कर लोकोत्तर–धर्म में खड़ा रहना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कमल का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे थोड़ी हवा चलने पर भी कमलनाल हिलने लगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश से भी हट जाना चाहिये, उसमें बड़ा भय देखना चाहिये! महाराज! भिक्षु में कमल का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है–

''अणुमात्र दोष में भी भय देखने वाला शिक्षापदों को सीखता है।'

पवेच्छन्ते सुबहूनि फलानि अनुदस्सति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यथा पटिपादितं सीलं केवलं सामञ्ञफलमनुदस्सति, एवं सम्मापटिपज्जितब्बं। इदं, महाराज, बीजस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, बीजं सुपरिसोधिते खेत्ते रोपितं खिप्पमेव संविरूहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसं सुपरिग्गहितं सुञ्ञागारे परिसोधितं सतिपट्ठानखेत्तवरे खित्तं खिप्पमेव विरूहति। इदं, महाराज, बीजस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

'यथा पि खेत्ते परिसुद्धं, बीजं चस्स पतिट्ठितं।
विपुलं तस्स फलं होति, अपि तोसेति कस्सकं॥
'तथेव योगिनो चित्तं, सुञ्ञागारे विसोधितं।
सतिपट्ठानखेत्तम्हि, खिप्पमेव विरूहती' " ति॥

४. सालकल्याणिकङ्गपञ्हो

१४. "भन्ते नागसेन, 'सालकल्याणिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, सालकल्याणिका नाम अन्तो पठवियं येव अभिवड्ढति हत्थसतं पि भिय्यो पि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चत्तारि सामञ्ञफलानि चतस्सो पटिसम्भिदा छळभिञ्ञायो केवलं च समणधम्मं सुञ्ञागारे येव परिपूरयितब्बं। इदं, महाराज, सालकल्याणिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *राहुलेन*—

'सालकल्याणिका नाम, पादपो धरणीरुहो।
अन्तोपठवियं येव, सततहत्थो पि वड्ढति॥

---

३. बीजाङ्गप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में बीज के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे केवल थोड़ा बीज अच्छे खेत में बोये जाने और पानी बरसने पर बहुत फल देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील का भलीभाँति पालन करने से श्रमण के सभी फल मिल जाते हैं। इसलिये उसे उचित रीति से शील का पालन करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में बीज का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे अच्छी तरह शुद्ध किये गये खेत में बीज रोपे जाने से शीघ्र ही जम जाता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु का एकान्त में शुद्ध और संयत किया हुआ चित्त स्मृतिप्रस्थान के उत्तम खेत में रोपे जाने से शीघ्र ही स्थिर हो जाता है। महाराज! स्थविर *अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'जैसे अच्छे जोते गये खेत में रोपने पर बीज खूब फलता है और कृषक को सन्तुष्ट कर देता है; वैसे ही एकान्त में शुद्ध किया गया योगी का चित्त स्मृतिप्रस्थान के खेत में शीघ्र ही लग जाता है।।'

४. शालकल्याणिकाङ्गप्रश्न— १४. "भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में शालवृक्ष का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे शालवृक्ष पृथ्वी के नीचे सौ हाथ या उससे कुछ अधिक भी बढ़ता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चारों श्रामण्यफल, चार प्रतिसंविदाएँ, छह अभिज्ञाएँ, श्रमण के सभी धर्म शून्यागार (एकान्त) में ही पूर्ण करने चाहिये। महाराज! शालवृक्ष का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर राहुल* ने भी कहा है—

'यथा कालम्हि सम्पत्ते, परिपाकेन सो दुमो।
उग्गच्छित्वान एकाहं, सतहत्थो पि वड्ढति॥
'एवमेवाहं महावीरं, सालकल्याणिका विय।
अब्भन्तरे सुञ्ञागारे, धम्मतो अभिवड्ढयिं' '' ति॥

५. नावङ्गपञ्हो

१५. ''भन्ते नागसेन, 'नावाय तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ' ति?

(१) ''यथा, महाराज, नावा बहुविधदारुसङ्घाटसमवायेन बहुं पि जनं तारयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिवत्तबहुविध-धम्मसङ्घाटसमवायेन सदेवको लोको तारयितब्बो। इदं, महाराज, नावाय पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, नावा बहुविधऊमित्थनितवेगविसटमावट्टवेगं सहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन बहुविधकिलेसऊमिवेगं लाभसक्कारयससिलोक-पूजनवन्दना परकुलेसु निन्दापसंसासुखदुक्खसम्माननविमाननबहुविधदोसऊमिवेगं च सहितब्बं। इदं, महाराज, नावाय दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, नावा अपरिमितमनन्तमपारमक्खोभितगम्भीरे महतिमहा-घोसे तिमितिमिङ्गलमकरमच्छगणाकुले महतिमहासमुद्दे चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन तिपरिवट्टद्वादसाकारचतुसच्चाभिसमयप्पटिवेधे मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, नावाय ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकाय*वरे

'पृथ्वी पर पैदा होने वाला शालकल्याणिका नामक वृक्ष पृथ्वी के भीतर ही भीतर सौ हाथ बढ़ जाता है। वह वृक्ष बढ़ते-बढ़ते, समय पा कर, एक दिन सौ हाथ बड़ा हो जाता है। हे भगवन्! उसी शालवृक्ष के समान शून्यागार में रह कर मैं धर्म में उन्नति पा गया।।'

५. नौकाङ्गप्रश्न— १५. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नाव के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे नाव अनेक प्रकार की लकड़ियों को जोड़कर निर्मित की जाती है, जो बहुत लोगों को किनारे लगा देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार, शील, व्रत, नियम इत्यादि अनेक धर्मों को मिला कर यह भवसागर पार करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे नाव गरजती हुई तरङ्गों और बड़े-बड़े भँवर के वेग सहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अनेक प्रकार के क्लेश, लाभ, सत्कार, यश, प्रशंसा, पूजा, वन्दना, दूसरे कुलों की निन्दा या प्रशंसा, सुख, दुःख, सम्मान, अपमान—यों और भी अनेक दोषों की तरङ्गों के वेग को सह लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे नाव अगाध समुद्र में तैरती है, जो अनन्त, अपार, गम्भीर, गहरा, जोरों से गजरता हुआ, तथा तिमि, तिमिङ्गिल, घड़ियाल और बड़ी-बड़ी मछलियों से भरा है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार आर्यसत्यों में, जो त्रिरावृत्त होने से बारह प्रकार के हो जाते हैं, मन लगाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* के 'सत्यसंयुक्त'

सच्चसंयुत्ते—'वितक्केन्ता च खो तुम्हे, भिक्खवे, इदं दुक्खं ति वितक्केय्याथ, अयं दुक्खसमुदयो ति वितक्केय्याथ, अयं दुक्खनिरोधो ति वितक्केय्याथ अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति वितक्केय्याथा' '' ति। *(सं० नि०, स० सं०)*

६. नावालग्गनकङ्गपञ्हो

१६. ''भन्ते नागसेन, 'नावालग्गनकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, नावालग्गनकं बहुऊमिजालाकुलविक्खोभितसलिलतले महतिमहासमुद्दे नावं लग्गेति ठपेति, न देति दिसाविदिसं हरितुं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमोहूमिजाले महतिमहावितक्कसम्पहारे चित्तं लग्गेतब्बं, न दातब्बं दिसाविदिसं हरितुं। इदं, महाराज, नावालग्गनकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, नावालग्गनकं न प्लवति, विसीदति, हत्थसते पि उदके नावं लग्गेति, ठानमुपनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभयससक्कार-माननवन्दनपूजनअपचितीसु लाभग्गयसग्गे पि न प्लवितब्बं, सरीरयापनमत्तके येव चित्तं ठपेतब्बं। इदं, महाराज, नावालग्गनकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'यथा समुद्दे लग्गनकं न प्लवति, विसीदति।
तथेव लाभसक्कारे, मा प्लवथ, विसीदथा' '' ति॥

७. कूपङ्गपञ्हो

१७. ''भन्ते नागसेन, 'कूपस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं

में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! वितर्क करते हुए तुम्हें यही वितर्क करना चाहिये कि यह दुःख है, यह दुःख का कारण है, यह दुःख का निरोध है और यह दुःखनिरोध करने का मार्ग है।''

६. नौकालग्नकाङ्गप्रश्न— १६. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नौकालग्नक (लंगर) के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?

(१) ''महाराज! जैसे महासमुद्र की चञ्चल तरङ्गों के नीचे लंगर बैठ जाता है, नाव को रोक देता है और इधर-उधर जाने नहीं देता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, की बड़ी-बड़ी तरङ्गों में अपने चित्त का लंगर डाल, अपने को स्थिर कर विचलित नहीं होने देना चाहिये। महाराज! लङ्गर का यह पहला गुण भिक्षु में होने चाहिये।

(२) ''फिर महाराज! जैसे लङ्गर जल के ऊपर नहीं आता, किन्तु सौ हाथ गहरे पानी में भी डूब कर बैठ जाता है और नाव को वहीं लगा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार, यश, प्रतिष्ठा, पूजा, वन्दना, आदर, यहाँ तक कि स्वर्ग मिल जाने पर भी गर्व नहीं करना चाहिये; किन्तु शरीर-निर्वाह भर करने में चित्त को स्थिर रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में लङ्गर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'जैसे समुद्र में लङ्गर उतराता नहीं किन्तु बैठ जाता है; वैसे ही लाभ सत्कार से गर्व न करो, अपने को गम्भीर और स्थिर रखो।।'

७. कूपाङ्गप्रश्न— १७. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि पतवार का एक गुण होना चाहिये, वह एक

गहेतब्बं' ति ?'' ''यथा, महाराज, कूपो रज्जुं च वरत्तं च लङ्कारं च धारेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सतिसम्पजञ्ञसमन्नागतेन भवितब्बं, अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते आलोकिते विलोकिते सम्मिञ्जिते पसारिते सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे असिते पीते खायिते सायिते उच्चारपस्सावकम्मे गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारिना भवितब्बं। इदं, महाराज, कूपस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन— 'सतो, भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी' '' ति। *(दी० नि०, महापरि० सु०)*

८. नियामकङ्गपञ्हो

१८. ''भन्ते नागसेन, 'नियामकस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति ?

(१) ''यथा, महाराज, नियामको रत्तिन्दिवं सततं समितं अप्पमत्तो यत्तप्पयत्तो नावं सारेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चित्तं नियामयमानेन रत्तिन्दिवं सततं समितं अप्पमत्तेन योनिसो मनसिकारेन चित्तं नियामेतब्बं। इदं, महाराज, नियामकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *धम्मपदे*—

'अप्पमादरता होथ, सचित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं, पङ्के सन्नो व कुञ्जरो'' ति॥ *(ध० प० ३२७)*

(२) ''पुन च परं, महाराज, नियामकस्स यं किञ्चि महासमुद्दे कल्याणं वा पापकं वा सब्बं तं विदितं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुसलाकुसलं सावज्जानवज्जं हीनप्पणीतं कण्हसुक्कसप्पटिभागं विजानितब्बं। इदं, महाराज, नियामकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

गुण क्या है? (१) ''महाराज! जैसे पतवार रस्सी, चमड़े का बन्धन और लङ्कार धारण करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा सचेत और सावधान रहना चाहिये— बाहर जाते, लौटते, देखते, भालते, समेटते, पसारते, सङ्घाटि, पात्र और चीवर धारण करते, खाते, पीते, चबाते, चखते, मल–विसर्जन करते, चलते, खड़ा रहते, बैठते, सोते, जागते, कहते या चुप रहते— कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! पतवार का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'भिक्षुओ! साधक–भिक्षु सचेत और सावधान हो कर ही विहार करे! यही मेरा उपदेश है'।''

८. नियामकाङ्गप्रश्न— १८. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि कर्णधार के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे कर्णधार रात–दिन, हमेशा लगातार अप्रमत्त हो तत्परता से नाव को रास्ते पर ले जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दिन–रात सदा, निरन्तर अप्रमत्त हो कर तत्परता से स्वचित्त को मार्ग पर ले चलना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कर्णधार का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज! *धम्मपद* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'सदा अप्रमत्त रहो, अपने चित्त को वश में करो। कीचड़ में पड़े बलवान् हाथी के समान अपने को पाप से निकाल लो।।''

(२) ''महाराज! फिर जैसे कर्णधार को यह बात ज्ञात रहती है कि कहाँ संकट है और कहाँ नहीं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को यह जानना चाहिये कि पाप क्या है और पुण्य क्या? सदोष क्या है और

(३) "पुन च परं, महाराज, नियामको यन्ते मुद्दिकं देति—'मा कोचि यन्तं आमसित्था' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चित्ते संवरमुद्दिका दातब्बा—'मा किञ्चि पापकं अकुसलवितक्कं वितक्केसी' ति। इदं, महाराज, नियामकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—'मा, भिक्खवे, पापके अकुसले वितक्के वितक्केय्याथ। सेय्यथीदं कामवितक्कं, ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं' " ति।

९. कम्मकारङ्गपञ्हो

१९. "भन्ते नागसेन, 'कम्मकारस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, कम्मकारो एवं चिन्तयति—'भतको अहं, इमाय नावाय कम्मं करोमि, इमायाहं नावाय वाहसा भत्तवेतनं लभामि, न मे पमादो करणीयो, अप्पमादेन मे अयं नावा वाहेतब्बा' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एवं चिन्तयितब्बं—'इमं खो अहं चातुम्महाभूतिकं कायं सम्मसन्तो सततं समितं अप्पमत्तो उपट्ठितसति सतो सम्पजानो समाहितो एकग्गचित्तो जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासेहि परिमुच्चिस्सामी ति अप्पमादो मे करणीयो' ति। इदं, महाराज, कम्मकारस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'कायं इमं सम्मसथ, परिजानाथ पुनप्पुनं।
काये सभावं दिस्वान, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा" ति। *(सं० नि०)*

१०. समुद्दङ्गपञ्हो

२०. "भन्ते नागसेन, 'समुद्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा,महाराज, महासमुद्दो मतेन कुणपेन सद्धिं न संवसति; एवमेव खो,

---

निर्दोष क्या? बुरा क्या है और भला क्या? तथा कृष्ण क्या है और शुक्ल क्या? महाराज! भिक्षु में कर्णधार का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

(३) "महाराज! फिर जैसे कर्णधार अपने कल-पुर्जे को ताला लगा कर रखता है कि कहीं कोई छेड़छाड़ न करे। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अपने चित्त में संयम का ताला लगाये रखना चाहिये—कहीं कोई पाप, बुरा विचार न चला आवे। महाराज! कर्णधार का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुत्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—"भिक्षुओ! पापमय विचारों को मन में न आने दो; जैसे, कामवितर्क, व्यापादवितर्क और विहिसावितर्क'।"

९. कर्मकाराङ्गप्रश्न— १९. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में केवट का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे केवट ऐसा विचारता है— 'मैं वेतन ले इस नाव पर काम करता हूँ। इसी नाव के सहारे मुझे खाना मिलता है। मुझे आलस्य व प्रमाद न कर नाव का काम सावधानी से करना चाहिये'; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ऐसा चिन्तन करना चाहिये— 'अरे! मेरा शरीर तो चार महाभूतों से मिल कर बना है'—यही मनन करते हुये बराबर अप्रमत्त रहना चाहिये, चित्त को एकाग्र करना चाहिये। और, यह सोचकर कि मुझे जन्म लेने....उपायास से छुटकारा पाना है, कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये'। महाराज! भिक्षु में केवट का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है—

महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमोहमानदिट्ठिमक्खपळासइस्सासमच्छरियमायासठकुटिल-विसमदुच्चरितकिलेसमलेहि सद्धिं न संवसितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो मुत्तामणिवेळुरियसङ्खसिलापवाळफळिकमणिविविधरतननिचयं धारेन्तो पिदहति, न बहि विकिरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मग्गफलझानविमोक्खसमाधिसमापत्तिविपस्सनाभिञ्ञाविविधगुणरतनानि अधिगन्त्वा पिदहितब्बानि, न बहि नीहरितब्बानि। इदं, महाराज, समुद्दस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तेहि महाभूतेहि सद्धिं संवसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पिच्छं सन्तुट्ठं धुतवादं सल्लेखवुत्तिं आचारसम्पन्नं लज्जिं पेसलं गरुं भावनीयं वत्तारं वचनक्खमं चोदकं पापगरहिं ओवादकं अनुसासकं विञ्ञापकं सन्दस्सकं समादपकं समुत्तेजकं सम्पहंसकं कल्याणमित्तं सब्रह्मचारिं उपनिस्साय वसितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो नवसलिलसम्पुण्णाहि गङ्गा-यमुना-अचिरवती-सरभू-महीआदीहि नदीसतसहस्सेहि अन्तलिक्खे सलिलधाराहि च पूरितो पि सकं वेलं नातिवत्तति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभसक्कारसिलोकवन्दनमाननपूजनकारणा जीवितहेतु पि सञ्चिच्च सिक्खापदवीतिक्कमो न करणीयो। इदं, महाराज, समुद्दस्स

'अपने शरीर का ही मनन करो, बार–बार जानो कि यह कैसा मलिन है। अपने शरीर की वास्तविकता जानकर ही दुःख का अन्त कर सकोगे।।"

१०. समुद्राङ्गप्रश्न– २०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में समुद्र के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे समुद्र अपने में मृत शव नहीं रहने देता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में राग, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि, डींग, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य, ठगी, कुटिलता, रूक्षता, दुराचार, और क्लेशमल नहीं रहने देने चाहिये। महाराज! भिक्षु में समुद्र का यही पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे समुद्र अपने में मोती, मणि, वैदूर्य, शङ्ख, शिला, मूँगा, स्फटिक इत्यादि नाना प्रकार के रत्न धारण करता है, उन्हें छिपाये रहता है, बाहर फैला नहीं देता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में मार्ग, फल, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, विपश्यना, अभिज्ञा इत्यादि विविध गुण–रत्नों को प्राप्त कर गुप्त रखना चाहिये, प्रकट नहीं होने देना चाहिये। महाराज! समुद्र का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! फिर जैसे समुद्र बड़े–बड़े जीवों के साथ रहता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, स्थिरभाषी, पवित्र आचरणों वाले, लज्जावान्, कोमल स्वभाव वाले, आदरणीय, वक्ता, बोलने में समर्थ, उत्साही, पाप की निन्दा करने वाले, दूसरे की सीख सुनने वाले, दूसरों को उपदेश देने वाले, अच्छी बातें बताने वाले सन्मार्ग दिखाने वाले, और धर्म का उपदेश देकर दूसरों में भाव पैदा कर उत्सुकता बढ़ा देने वाले उपकारक भिक्षु के साथ ही रहना चाहिये। महाराज! समुद्र का यह तीसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(४) "महाराज! फिर जैसे समुद्र गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही आदि अनेकानेक हजारों नदियों के गिरने तथा आकाश से गिरने वाली जलधाराओं से भर कर भी अपनी सीमा नहीं लाँघता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार, प्रशंसा, वन्दना, प्रतिष्ठा और पूजा मिलने या प्राण निकल जाने

चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'सेय्यथापि, महाराज, महासमुद्दो ठितधम्मो वेलं नातिक्कमति; एवमेव खो, महाराज, यं मया सावकानं सिक्खापदं पञ्ञत्तं, तं मम सावका जीवितहेतु पि नातिक्कमन्ती' ति।

(५) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो सब्बसवन्तीहि गंगायमुनाअचिरवतीसरभूमहीहि अन्तलिक्खे उदकधाराहि पि न परिपूरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उद्देसपरिपुच्छासवणधारणविनिच्छयअभिधम्मविनयगाळ्हसुत्तन्तविग्गहपदनिक्खेपपदसन्धि-पदविभत्तिनवङ्गजिनसासनवरं सुणन्तेनापि न तप्पितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुतसोमजातके*—

'अग्गि यथा तिणकट्ठं डहन्तो, न तप्पति सागरो वा नदीहि।
एवं पि चे पण्डिता राजसेट्ठ, सुत्वा न तप्पन्ति सुभासितेना' " ति॥

दुतियो समुद्दवग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

लाबुलता च पदुमं, बीजं सालकल्याणिका।
नावा च नावालग्गनं, कूपो नियामको तथा॥
कम्मकारो समुद्दो च, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

३. पथविवग्गो

१. पथविअङ्गपञ्हो

२१. "भन्ते नागसेन, 'पथविया पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

पर भी जानबूझकर शिक्षापदों को नहीं तोड़ना चाहिये। महाराज! समुद्र का यह चौथा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव *भगवान्* ने भी कहा है—महाराज! जैसे समुद्र स्थिर स्वभाव का होकर अपनी सीमा नहीं लाँघता; वैसे ही मेरे भिक्षु मुझसे कहे गये शिक्षापदों को प्राणसङ्कट के समय भी नहीं तोड़ते।

(५) "महाराज! फिर जैसे समुद्र गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही, आदि सभी नदियों के गिरने तथा आकाश से गिरने वाली जलधाराओं से भी पूरा-पूरा भर नहीं जाता; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को कभी भी सीखने, धार्मिक चर्चा करने, दूसरों की शिक्षा सुनने, उसका मनन करने, उसकी परीक्षा करने, अभिधर्म, विनय और सूत्र की गम्भीर बातों का अध्ययन करने, विग्रह, वाक्यविन्यास, सन्धि, पदविभक्ति और नौ अंगों वाले बुद्ध के वचन को सुनने से तृप्त (अघा जाना) नहीं होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में समुद्र का यही पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *सुतसोम-जातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अग्नि जैसे घास और लकड़ियों को जलाती हुई नहीं अघाती; समुद्र नदियों के जल से नहीं अघाता। हे राजश्रेष्ठ! वैसे ही, पण्डित लोग अच्छी बातों को सुनने से नहीं ऊबते'।।"

दूसरा समुद्रवर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में— लौकी की लता, पद्म, बीज, शालकल्याणिका, नौका, नौकालग्नक, कूप, नियामक, कर्मकार तथा समुद्र— ये इतने प्रश्न व्याख्यात हैं।।

(१) "यथा, महाराज, पठवी इट्ठानिट्ठानि कप्पूरागरु-तगरचन्दनकुङ्कमादीनि आकिरन्ते पि, पित्तसेम्हपुब्बरुधिरसेदमेदखेळसिङ्घाणिकलसिकमुत्तकरीसादीनि आकिरन्ते पि तादिसा येव; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इट्ठानिट्ठे लाभालाभे यसायसे निन्दापसंसाय सुखदुक्खे सब्बत्थ तादिना येव भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, पठवी मण्डनविभूसनापगता सकगन्धपरिभाविता; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विभूसनापगतेन सकसीलगन्धपरिभावितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, पठवी निरन्तरमखण्डच्छिद्दा असुसिरा बहला धना वित्थिण्णा; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निरन्तरमखण्डच्छिद्दमसुसिरबहलधन-वित्थिण्णसीलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, पठवी गामनिगमनगरजनपदरुक्खपब्बतनदीतळाक-पोक्खरणीमिगपक्खिमनुजनरनारीगणं धारेन्तो पि अकिलासु होति; एवमेव, खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ओवदन्तेन पि अनुसासन्तेन पि विञ्ञापेन्तेन पि सन्दस्सेन्तेन पि समादपेन्तेन पि समुत्तेजेन्तेन पि सम्पहंसेन्तेन पि धम्मदेसनासु अकिलासुना भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, पठवी अनुनयप्पटिघविप्पमुत्ता; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तेन पठवीसमेन चेतसा विहरितब्बं। इदं, महाराज,

---

३ : पृथ्वीवर्ग

१. पृथिव्यङ्गप्रश्न— २१. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में पृथ्वी के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे पृथ्वी अच्छे या बुरे कपूर, अगर, तगर, चन्दन, कुङ्कुम या पित्त, कफ, पूय, रुधिर, पसीना, चरबी, थूक, सिंघाणक, लसीका, मल, मूत्र आदि पड़ने पर भी एक ही समान रहती है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को इष्ट, अनिष्ट, लाभ, अलाभ, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख-दुःख सभी अवस्थाओं में समान रहना चाहिये। महाराज! पृथ्वी का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! जैसे पृथ्वी कोई साज-सज्जा न रख, अपने प्राकृतिक स्वभाव में ही बनी रहती है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को कोई ठाट-बाट न कर अपने शील-स्वभाव में ही बने रहना चाहिये! महाराज! पृथ्वी का यह दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी निरन्तर बिना कहीं टूटे-कटे घनी होकर फैली रहती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को निरन्तर अखण्ड, पुष्ट और गहन शील वाला होना चाहिये, जिससे कहीं भी कोई कमी न निकाल सके। महाराज! पृथ्वी का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी गाँव, कस्बा, शहर, जिला, वृक्ष, पहाड़, नदी, तालाब, बावड़ी और मृग, पक्षी, मनुष्य, नर-नारी सभी को धारण करती हुई भी नहीं थकती। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को उपदेश करते, सिखाते, धर्म की बातें बताते, सन्मार्ग दिखाते और दूसरों में भाव पैदा कर उत्सुकता जगाते हुए कभी नहीं थकना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पृथ्वी का यह चौथा गुण होना चाहिये।

(५) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी न तो किसी से अनुनय करती है और न किसी से द्वेष। वैसे

पठविया पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, उपासिकाय *चूळसुभद्दाय* सकसमणे परिकित्तयमानाय—

'एकं चे बाहं वासिया, तच्छे कुपितमानसा।
एकं चे बाहं गन्धेन, आलिम्पेय्य पमोदिता॥
अमुस्मिं पटिघो नत्थि, रागो अस्मिं न विज्जति।
पठवीसमचित्ता ते, तादिसा समणा ममा' ''ति॥

२. आपङ्गपञ्हो

२२. ''भन्ते नागसेन, 'आपस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, आपो सुसण्ठितमकम्पितमलुळितसभावपरिसुद्धो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुहनलपननेमित्तकनिप्पेसिकतं अपनेत्वा सुसण्ठितमकम्पित-मलुळितसभावपरिसुद्धाचारेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, आपो सीतलसभावसण्ठितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तेसु खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नेन हितेसिना अनुकम्पकेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, आपो असुचिं सुचिं करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामे वा अरञ्ञे वा उपज्झाये उपज्झायमत्तेसु आचरिये आचिरयमत्तेसु सब्बत्थ अनधिकरणेन भवितब्बं अनवकासकारिना। इदं, महाराज, आपस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

ही, योगसाधक भिक्षु को न किसी की अनुनय (चापलूसी) करनी चाहिये और न किसी से द्वेष रखना चाहिये, उसका चित्त सौम्य होना चाहिये। महाराज! पृथ्वी का यही पाँचवाँ गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! अपने भिक्षुओं की प्रशंसा करती हुई छोटी *सुभद्रा* ने कहा था—

'कोई क्रुद्ध हो उनकी एक बाँह को वासी (कुल्हाड़े), बसुले से काट दे या कोई प्रसन्न हो उनकी एक बाँह में चन्दन का लेप करे। तो भी, न वे उससे द्वेष करेंगे और न इससे प्रेम; उन भिक्षुओं का चित्त तो मानो पृथ्वी के समान है'।।''

२. आपङ्ग(जलाङ्ग)प्रश्न— २२. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि एक भिक्षु में जल के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे किसी पात्र में रखा गया जल निश्चल शान्त और शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कुहन, लपन, नैमित्तिक और निप्पेसिकता से रहित हो, स्थिर और शान्त स्वभाव का शुद्ध आचरण वाला होना चाहिये। महाराज! जल का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे जल शीतल स्वभाव होता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सभी जीवों के प्रति क्षमाशील, मैत्रीभाव वाला, दयालु, हितैषी और कृपापूर्ण होना चाहिये। महाराज! जल का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे जल किसी भी अपवित्र वस्तु को निर्मल कर देता है; वैसे ही, योग-साधक भिक्षु को गाँव, जंगल या और कहीं भी अपने उपाध्याय, आचार्य या गुरुजन से कभी कुछ कलह नहीं करना चाहिये, उनके प्रति कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! जल का यही तीसरा गुण....।

(४) "पुन च परं, महाराज, आपो बहुजनपत्थितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पिच्छसन्तुट्ठपविवित्तपटिसल्लानेन सततं सब्बालोकमभिपत्थितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, आपो न कस्सचि अहितमुपदहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परभण्डनकलहविग्गहविवादरित्तज्झानअरतिजननं कायवचीचित्तेहि पापकं न करणीयं। इदं, महाराज, आपस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *कण्डजातके*—

'वरं चे मे अदो सक्क, सब्बभूतानमिस्सर।
न मनो वा सरीरं वा, मं कते सक्क कस्सचि॥
कदाचि उपहञ्ञेथ, एतं सक्क वरं वरे' " ति॥

३. तेजङ्गपञ्हो

२३. "भन्ते नागसेन, 'तेजस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, तेजो तिणकट्ठसाखापलासं डहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ये ते अब्भन्तरा वा बाहिरा वा किलेसा इट्ठानिट्ठारम्मणानुभवना सब्बे ते ञाणग्गिना डहितब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, तेजो निद्दयो अकारुणिको; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकिलेसेसु कारुञ्ञानुद्दया न कातब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(४) "महाराज! फिर जैसे जल को सभी लोग चाहते हैं; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, एकान्तप्रिय और ध्यान करने का अभ्यासी बन, सदा सभी लोगों का प्रिय हो कर रहना चाहिये। महाराज! जल का यही चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे जल किसी का भी अहित नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरे से झगड़ा, कलह, विवाद या बहस नहीं करनी चाहिये, किसी को छोटा और तुच्छ नहीं समझना चाहिये। किसी के प्रति असन्तोष या क्रोध नहीं करना चाहिये। शरीर, वचन और मन से कोई पाप नहीं करना चाहिये। महाराज! जल का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! *कण्हजातक* में देवातिदेव भगवान् ने कहा है—

'सभी भूतों के ईश्वर हे शक्र! यदि मुझे वर देना चाहते हो, तो हे शक्र! मैं आप से 'मन और कर्म से कोई किसी को कहीं भी दुःख न दे' यही एक श्रेष्ठ वर माँगता हूँ'।"

३. अग्निअङ्गप्रश्न– २३. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अग्नि के पाँच गुण होने चाहिये, वे कौन से पाँच गुण हैं?"

(१) "महाराज! जैसे अग्नि घास, लकड़ी, डाल और पत्ते जला देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भीतर और बाहर के विषयों पर होने वाले इष्ट और अनिष्ट सभी क्लेशों को ज्ञान की अग्नि में जला देना चाहिये। महाराज! अग्नि का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे अग्नि निर्दय और कठोर होती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश दूर करने में कोई दया या करुणा नहीं दिखानी चाहिये। महाराज! अग्नि का यह दूसरा गुण....।

(३) "पुन च परं, महाराज, तेजो सीतं पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विरियसन्तापतेजं अभिजनेत्वा किलेसा पटिहन्तब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, तेजो अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तो उण्हमभिजनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तेन तेजोसमेन चेतसा विहरितब्बं। इदं, महाराज, तेजस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, तेजो अन्धकारं विधमति आलोकं दस्सयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अविज्जन्धकारं विधमित्वा ञाणालोकं दस्सयितब्बं। इदं, महाराज, तेजस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन सकं पुत्तं राहुलं ओवदन्तेन— 'तेजोसमं, राहुलं, भावनं भावेहि; तेजोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा पुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च अकुसला धम्मा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ती' "ति।

४. वायुङ्गपञ्हो

२४. "भन्ते नागसेन, 'वायुस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, वायु सुपुप्फितवनसण्डन्तरं अभिवायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विमुत्तिवरकुसुमपुप्फितारम्मणवनन्तरे रमितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वायु धरणीरुहपादपगणे मथयति; एवमेव खो, महाराज,

---

(३) "महाराज! फिर जैसे अग्नि ठण्ढ दूर करती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने उत्साह की अग्नि से क्लेश दूर कर देना चाहिये। महाराज! अग्नि का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! जैसे अग्नि न तो किसी की चापलूसी करती है और न किसी से द्वेष, सभी को समान रूप से गर्मी देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अग्नि के समान तेजस्वी हो कर रहना चाहिये— किसी की न तो अनुनय करनी चाहिये और न किसी से द्वेष। महाराज! अग्नि का यही चौथा गुण....।

(५) "फिर जैसे अग्नि अन्धकार को दूर करती है और प्रकाश फैलाती है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अज्ञान दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहिये। महाराज! अग्नि का यही पाँचवा गुण....। महाराज! अपने पुत्र राहुल को शिक्षा देते हुए देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'राहुल! तेज (=अग्नि) के समान भावना का अभ्यास कर। इस के समान भावना करने से अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल चित्त में ठहर नहीं पाते'।"

४. वायु–अङ्गप्रश्न— "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में वायु के पाँच गुण होने चाहियें, वे कौन से पाँच गुण हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वायु पुष्पित–पल्लवित प्रदेश (षण्ड) के जङ्गल–झाड़ से हो कर बहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को विमुक्ति के पुष्पित–पल्लवित ध्यान के झाड़–जंगल में रमण करना चाहिये। महाराज! वायु का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे वायु पृथ्वी पर उगने वाले सभी वृक्षों को धुनती रहती है; वैसे ही

योगिना योगावचरेन वनन्तरगतेन सङ्खारे विचिनन्तेन किलेसा मथयितब्बा। इदं, महाराज, वायुस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, वायु आकासे चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लोकुत्तरधम्मेसु मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, वायु गन्धं अनुभवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अत्तनो सीलसुरभिगन्धो अनुभवितब्बो। इदं, महाराज, वायुस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, वायु निरालयो अनिकेतवासी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निरालयमनिकेतमसन्थवेन सब्बत्थ विमुत्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते*—

'सन्थवतो भयं जातं, निकेता जायती रजो।
अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं' " ति॥ *(सु० नि०, १.१२.१)*

५. पब्बतङ्गपञ्हो

२५. "भन्ते नागसेन, 'पब्बतस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, पब्बतो अचलो अकम्पितो असम्पवेधी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सम्मानने विमानने सक्कारे असक्कारे गरुकारे अगरुकारे यसे अयसे निन्दाय पसंसाय सुखे दुक्खे इट्ठानिट्ठेसु सब्बत्थ रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्बधम्मेसु रजनीयेसु न मुय्हितब्बं; न कम्पितब्बं न चलितब्बं, पब्बतेन विय अचलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पब्बतस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

योगी भिक्षु को जंगल में रह संसार की अनित्यता का मनन करते हुये क्लेश धुन-धुन कर झाड़ देने चाहियें।

(३) "महाराज! फिर जैसे वायु आकाश में चलती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लोकात्तर धर्मों में ही लगा रहना चाहिये। महाराज! वायु का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे वायु अपने गन्ध को उड़ा कर ले जाती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने शील की गन्ध उड़ानी चाहिये। महाराज! वायु का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! फिर जैसे वायु विना किसी घर-द्वार की होती है, कहीं एक जगह घर नहीं बनाती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घर-द्वार छोड़, विना किसी बन्धु-बान्धव के स्वच्छन्द रहना चाहिये। महाराज! वायु का यह पाँचवाँ गुण....। महाराज! *सुत्तनिपात* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'आत्मस्तुति सुनने से चिन्ता होती है, गृहस्थ में राग उत्पन्न होता है। अतः न आत्मस्तुति सुने और न घर में रहे। साधुजनों की यही परम्परा है'।।"

५. पर्वताङ्गप्रश्न— २५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु को पर्वत के पाँच गुण ग्रहण करना चाहिये, वे कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे पहाड़ अचल, अकम्प्य और स्थिर होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सम्मान, अपमान, सत्कार, तिरस्कार, प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख-दुःख, इष्ट, अनिष्ट और सभी रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श के लुभाने वाले धर्मों में, राग, द्वेष पैदा करने वाले धर्मों

'सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता' ति॥ *(ध०प०, ८१)*

(२) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो थद्धो न केनचि संसट्ठो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थद्धेन असंसट्ठेन भवितब्बं। न केनचि संसग्गो करणीयो। इदं, महाराज, पब्बतस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं' ति॥ *(सु०नि०, ३.९.९५)*

(३) ''पुन च परं, महाराज, पब्बते बीजं न विरूहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सकमानसे किलेसा न विरूहापेतब्बा। इदं, महाराज, पब्बतस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन सुभूतिना*—

'रागूपसंहितं चित्तं, यदा उप्पज्जते मम।
सयमेव पच्चवेक्खित्वा, एकग्गो तं दमेमहं॥
'रज्जसे रजनीयेसु, दुस्सनीयेसु दुस्ससे।
मुय्हसे मोहनीयेसु, निक्खमस्सु वनातुरं॥
'विसुद्धानं अयं वासो, निम्मलानं तपस्सिनं।
मा खो विसुद्धं दूसेसि, निक्खमस्सु वनातुरं' ति॥

(४) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो अच्चुग्गतो ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना

में द्वेष और मोह पैदा करने वाले धर्मों में मोह नहीं करना चाहिये। उनसे कभी भी विचलित नहीं होना चाहिये। पर्वत के समान अचल और स्थिर होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पर्वत का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'सर्वथा घना पर्वत वायु से हिल नहीं सकता; वैसे ही, निन्दा और प्रशंसा के पण्डित विचलित नहीं होते'।।''

(२) ''महाराज! फिर जैसे कठोर पर्वत किसी से संसर्ग नहीं रखता, अकेला रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कठोर होकर बहुत मिलना जुलना नहीं चाहिये, किसी से संसर्ग नहीं रखना चाहिये। महाराज! पर्वत का यही दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से संसर्गरहित अकेले चलने वाले अल्पेच्छ प्रव्रजित को मैं ब्राह्मण कहता हूँ'।''

(३) ''महाराज! फिर जैसे पर्वत पर बीज नहीं जम पाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में क्लेश जमने नहीं देना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पर्वत का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *स्थविर सुभूति* ने भी यही कहा है—

'मेरे चित्त में जब राग उत्पन्न होता है, स्वयं उसे देख कर अकेला ही दबा देता हूँ।।

'यदि राग करने वाले धर्मों में तुम राग करते हो, द्वेष करने वाले धर्मों में द्वेष और मोहने वाले धर्मों से मूढ़ हो जाते हो तो इस वन से निकल जाओ।।

'यह स्थान निर्मल एवं विशुद्ध तपस्वियों का है, इस पवित्र स्थान को दूषित न करो, इस वन से निकल जाओ।।'

योगावचरेन ञाणच्चुग्गतेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पब्बतस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे, धीरो बाले अवेक्खती'' ' ति॥ *(ध०प०, २८)*

(५) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो अनुन्नतो अनोनतो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उन्नतावनति न करणीया। इदं, महाराज, पब्बतस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, उपासिकाय *चूळसुभद्दाय* सकसमणे परिकित्तयमानाय—

'लाभेन उन्नतो लोको, अलाभेन च ओनतो।
लाभालाभेन एकट्ठा, तादिसा समणा ममा' '' ति॥

६. आकासङ्गपञ्हो

२६. ''भन्ते नागसेन, 'आकासस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, आकासो सब्बसो अगम्यो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसो किलेसेहि अगय्हेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, आकासो इसितापसभूतदिजगणानुसञ्चरितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन 'अनिच्चं, दुक्खं, अनत्ता' ति सङ्खारेसु मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(४) ''महाराज! फिर जैसे पर्वत की चोटी ऊपर उठी रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ज्ञान से ऊँचा उठे रहना चाहिये। महाराज! पर्वत का यही चौथा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से दूर कर देता है, तब प्रज्ञा की अटारी (प्रासाद) पर चढ़, अपने शोक से रहित हो पर्वत पर चढ़ा जैसे नीचे के लोगों को देखता है; वैसे ही वह विज्ञ संसार में शोकमग्न पड़े अज्ञ लोगों को देखता है।'

(५) ''महाराज! जैसे पर्वत न तो उठाया जा सकता है और न झुकाया; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरों की अपेक्षा न चढ़ जाना चाहिये और न गिर जाना। महाराज! पर्वत का यही पाँचवाँ गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! भगवान् ने अपने श्रमणों की प्रशंसा करती हुई छोटी भिक्षुणी *सुभद्रा* को कहा था—

'संसार लाभ से उठ जाता है और अलाभ से गिर जाता है, किन्तु मेरे श्रमण लाभ और अलाभ दोनों में समान रहते हैं'।।''

६. आकाशङ्गप्रश्न— २६. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में आकाश के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे आकाश किसी तरह पकड़ा नहीं जा सकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों से किसी तरह भी बँधना नहीं चाहिये। महाराज! आकाश का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे आकाश में ऋषि, तपस्वी, देव और पक्षी विचरण करते हैं; वैसे ही

(३) ''पुन च परं, महाराज, आकासो सन्तासनीयो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बभवपटिसन्धिसु मानसं उब्बेजयितब्बं। अस्सादो न कातब्बो। इदं, महाराज, आकासस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, आकासो अनन्तो अप्पमाणो अपरिमेय्यो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनन्तसीलेन अपरिमितञाणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) ''पुन च परं, महाराज, आकासो अलग्गो असत्तो अपतिट्ठितो अपलिबुद्धो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुले गणे लाभे आवासे पलिबोधे पच्चये सब्बकिलेसेसु च सब्बत्थ अलग्गेन भवितब्बं, अनासत्तेन अपतिट्ठितेन अपलिबुद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन सकपुत्तं *राहुलं* ओवदन्तेन– 'सेय्यथापि, राहुल, आकासो न कत्थचि पतिट्ठितो, एवमेव खो त्वं, राहुल, आकाससमं भावनं भावेहि। आकाससमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्नुप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ती' '' ति। *(म०नि०)*

७. चन्दङ्गपञ्हो

२७. ''भन्ते नागसेन, 'चन्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, चन्दो सुक्कपक्खे उदयन्तो उत्तरुत्तरिं वड्ढति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिया आगमाधिगमे पटिसल्लाने सतिपट्ठाने

योगसाधक भिक्षु को संस्कारों के प्रति अनित्य, दुःख और अनात्म भाव ही मन में बनाये रखना चाहिये। महाराज! आकाश का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे खुला आकाश भयानक लगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को संसार में पुनर्जन्म से डरना चाहिये, संसार की स्थिति में कोई स्वाद नहीं लेना चाहिये। महाराज! आकश का यह तीसरा गुण....।

(४) ''महाराज! फिर जैसे आकाश अनन्त, अप्रमाण और अपरिमेय है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अनन्त, शीलवान् और अपरिमित ज्ञानी होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में आकाश का यह चौथा गुण....।

(५) ''महाराज! फिर जैसे आकाश किसी के सहारे लटका नहीं होता, किसी से जुटा नहीं होता, किसी पर ठहरा नहीं होता और न किसी से रुका होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थ कुल, गण, लाभ, आवास, किसी बाधा, प्रत्यय या सभी क्लेशों में अलग्न, अनासक्त, अप्रतिष्ठित और अलिप्त हो कर रहना चाहिये। महाराज! आकाश का यही पाँचवा गुण....। महाराज! अपने पुत्र *राहुल* को उपदेश देते हुये देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है– 'राहुल! जैसे आकाश कहीं भी प्रतिष्ठि तनहीं होता; वैसे ही तुम भी भावना करो। आकाश के समान भावना करने से आये–गये, अच्छे बुरे स्पर्श चित्त में नहीं लगते'।''

७. चन्द्राङ्गप्रश्न– २७. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में चन्द्रमा के पाँच गुण होने चाहियें, ये पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा धीरे–धीरे बढ़ता ही जाता है; वैसे ही योगसाधक

इन्द्रियेसु गुत्तद्वारताय भोजने मत्तञ्ञुताय जागरियानुयोगे उत्तरुत्तरिं वड्ढितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, चन्दो उळाराधिपति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उळारच्छन्दाधिपतिना भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, चन्दो निसाय चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पविवित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, चन्दो विमानकेतु; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलकेतुना भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, चन्दो आयाचितपत्थियो उदेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आयाचितपत्थितेन कुलानि उपसङ्कमितब्बानि। इदं, महाराज, चन्दस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*— 'चन्दूपमा, भिक्खवे, कुलानि उपसङ्कमथ। अपकस्सेव कायं अपकस्स चित्तं निच्चनवता कुलेसु अप्पगब्भा' " ति।

८. सुरियङ्गपञ्हो

२८. "भन्ते नागसेन, 'सुरियस्स सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, सुरियो सब्बं उदकं परिसोसेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकिलेसा अनवसेसं परिसोसेतब्बा। इदं, महाराज, सुरियस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

भिक्षु को अचार, शील, गुण, व्रतपरायणता, धर्म—ग्रन्थों के अध्ययन, ध्यान, स्मृतिप्रस्थान, इन्द्रियसंयम, भोजन में मात्रज्ञता और जागरूकता में बढ़ते जाना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे चन्द्रमा बड़ा भारी उदार अधिपति है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपनी इच्छाओं का समर्थ अधिपति होना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे चन्द्रमा रात्रि में चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में अभ्यास करना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! जैसे चन्द्रमा विमान के ध्वज पर अङ्कित रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील का ध्वज गाड़ देना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे चन्द्रमा विना किसी के प्रार्थना करने पर उगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी की प्रार्थना के विना ही गृहस्थों के कुल में जाना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! संयुक्तनिकाय में भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! चन्द्रमा के समान गृहस्थों के घर जाओ, अपरिचित के समान शरीर और मन से सङ्कोच करते हुए जाओ और चले आओ'।"

८. सूर्याङ्गप्रश्न— २८. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु के सात गुण होने चाहियें, वे सात गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सूर्य जल को सुखा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भी अपने सभी क्लेश सुखा देने चाहिये। महाराज! सूर्य का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "पुन च परं, महाराज, सुरियो तमन्धकारं विधमति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बं रागतमं दोसतमं मोहतमं मानतमं दिट्ठितमं किलेसतमं सब्बं दुच्चरिततमं विधमयितब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) पुन च परं, महाराज, सुरियो अभिक्खणं चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अभिक्खणं योनिसोमनसिकारो कातब्बो। इदं, महाराज, सुरियस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, सुरियो रंसिमाली; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणमालिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, सुरियो महाजनकायं सन्तापेन्तो चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिया झानविमोक्खसमाधिसमापत्ति-इन्द्रियबलबोज्झङ्गसतिपट्ठानसम्मप्पधानइद्धिपादेहि सदेवको लोको सन्तापयितब्बो। इदं, महाराज, सुरियस्स पञ्चमं अङ्गं वेदितब्बं।

(६) "पुन च परं, महाराज, सुरियो राहुभया भीतो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दुच्चरितदुग्गतिविसमकन्तारविपाकविनिपातकिलेसजालजटिते दिट्ठिसङ्घात-पटिमुत्ते कुपथपक्खन्दे कुम्मग्गपटिपन्ने सत्ते दिस्वा महता संवेगभयेन मानसं संवेजेतब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स छट्ठं अङ्गं गहेतब्बं।

(७) "पुन च परं, महाराज, सुरियो कल्याणपापके दस्सेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इन्द्रिय-बल-बोज्झङ्ग-सतिपट्ठान-सम्मप्पधान-इद्धिपाद-लोकियलोकुत्तर-

---

(२) "महाराज! फिर जैसे सूर्य घने अन्धकार को दूर कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, मान, आत्मदृष्टि, क्लेश और सभी अकुशल आचरणों का अन्धकार दूर कर देना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे सूर्य बराबर चलता रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा मन को संयत करते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे सूर्य किरणों वाला है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को ध्यानभावना वाला होना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह चौथा गुण....।

(५) महाराज! फिर जैसे, सूर्य संसार के सभी प्राणियों को तपाता हुआ चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार, शील, गुण, व्रतचर्या, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, इन्द्रियबल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान और ऋद्धिपाद से देवताओं तथा मनुष्यों के साथ समग्र संसार को तपाते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह पाँचवाँ गुण....।

(६) "महाराज! फिर जैसे, सूर्य सदा केतु से डरते हुए चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने कर्मों के बुरे फल, नरक और क्लेश की घनी झाड़ियों से भरे दुराचार और दुर्गति के बीहड़ जंगल में आत्मदृष्टि के बहकावे में पड़, बुरे रास्ते पर लोगों को चलते हुए देख कर अपने मन में संवेग उत्पन्न करना चाहिये और सदा डरते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह छठा गुण....।

(७) "महाराज! जैसे सूर्य (अपने प्रकाश में) अच्छे और बुरे को दिखा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को इन्द्रिय बल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, लौकिक और लोकोत्तर

धम्मा दस्सेतब्बा। इदं, महाराज, सुरियस्स सत्तमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन वङ्गसेनेन*—

'यथापि सुरियो उदयन्तो, रूपं दस्सेति पाणिनं।
सुचिं च असुचिं चापि, कल्याणं चापि पापकं॥
तथा भिक्खु धम्मधरो, अविज्जापिहितं जनं।
पथं दस्सेति विविधं, आदिच्चोवुदयं यथा' '' ति॥

९. सक्कङ्गपञ्हो

२९. '' भन्ते नागसेन, 'सक्कस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, सक्को एकन्तसुखसमप्पितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एकन्तपविवेकसुखाभिरतेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सक्कस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, सक्को देवे दिस्वा पग्गण्हाति, हासमभिजनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुसलेसु धम्मेसु अलीनमतन्दितं सन्तं मानसं पग्गहेतब्बं, हासमभिजनेतब्बं, उट्ठहितब्बं घटितब्बं वायमितब्बं। इदं, महाराज, सक्कस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, सक्कस्स अनभिरति नुप्पज्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुञ्ञागारे अनभिरति न उप्पादेतब्बा। इदं, महाराज, सक्कस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन सुभूतिना—

'सासने ते महावीर, यतो पब्बजितो अहं।
नाभिजानामि उप्पन्नं, मानसं कामसंहितं' '' ति॥

१०. चक्कवत्तिङ्गपञ्हो

धर्म–सभी दिखा देना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह सातवाँ गुण....। महाराज! स्थविर वङ्गीश ने भी कहा है–

'जैसे सूर्य उदय होकर प्राणियों को सभी पदार्थ दिखा देता है– शुचि और अशुचि को भी, अच्छे और बुरे को भी। वैसे ही, धर्म जानने वाला भिक्षु अविद्या से ढके संसार को सूर्योदय की तरह सभी मार्ग दिखा देता है'।''

९. शक्राङ्गप्रश्न– २९. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में इन्द्र के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे इन्द्र केवल सुख ही सुख भोगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को परम एकान्त का सुख भोगना चाहिये। महाराज! इन्द्र का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे इन्द्र देवों को प्रसन्न कर अपने वश में रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कुशल (पुण्य) धर्मों में अपने मन को शान्त, उत्साहशील और तत्पर बनाये रखना चाहिये, उन्हें पालन करने में प्रसन्न रहना चाहिये, उत्साह के साथ उनमें डटे और लगे रहना चाहिये। महाराज! इन्द्र का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे इन्द्र को कभी असन्तोष नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त से भी ऊबना नहीं चाहिये। महाराज! इन्द्र का तीसरा गुण....। महाराज! *स्थविर सुभूति* ने भी कहा है–

३०. ''भन्ते नागसेन, 'चक्कवत्तिस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, चक्कवत्ती बहूहि सङ्गहवत्थूहि जनं सङ्गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चतस्सन्नं परिसानं मानसं सङ्गहेतब्बं अनुग्गहेतब्बं सम्पहंसेतब्बं। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, चक्कवत्तिस्स विजिते चोरा न उट्ठहन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कामरागब्यापादविहिंसावितक्का न उप्पादेतब्बा। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन—

'वितक्कूपसमे च यो रतो, असुभं भावयते सदा सतो।
एस खो ब्यन्तिकाहिति, एस छेच्छति मारबन्धनं' ति॥ *(ध०प०, ३५०)*

(३) ''पुन च परं, महाराज, चक्कवत्ती दिवसे समुद्दपरियन्तं महापठविं अनुयाति कल्याणपापकानि विचिनमानो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कायकम्मं वचीकम्मं मनोकम्मं दिवसे दिवसे पच्चवेक्खितब्बं— 'किन्नु खो मे इमेहि तीहि ठानेहि अनुपवज्जस्स दिवसो वीतिवत्तती' ति। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *अङ्गुत्तरनिकायवरे*— 'कथम्भूतस्स मे रत्तिन्दिवा वीतिवत्तन्ती ति पब्बजितेन अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं' ति।

(४) ''पुन च परं, महाराज, चक्कवत्तिस्स अब्भन्तरबाहिरा रक्खा सुसंविहिता होति;

'हे भगवान् बुद्ध! जब से आप के शासन में प्रव्रजित हुआ हूँ, मुझे ध्यान नहीं कि मेरे मन में कभी काम उत्पन्न हुआ हो'।।''

१०. चक्रवर्ती–अङ्गप्रश्न— ३०. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में चक्रवर्ती राजा के चार गुण होने चाहियें, वे कौन से चार गुण हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे चक्रवर्ती राजा चार संग्रहवस्तुओं से अपनी प्रजा को अपनी ओर किये रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार प्रकार के लोगों को अपनी ओर करके प्रसन्न रखना चाहिये। चक्रवर्ती राजा का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे, चक्रवर्ती राजा के राज्य में चोर–लुटेरे नहीं उठ पाते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मन में काम, राग, व्यापाद और विहिंसा के बुरे विचार नहीं उठने देने चाहिये। महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो अपने अशुभ विचारों को दबाने में लगा रहता है, सावधान होकर सांसारिक पदार्थों में दोष देखता है, जिसे संसार सुन्दर समझता है, उसे दूर करता है, वही मार के बन्धनों को छिन्न–भिन्न करने में समर्थ होता है।।'

(३) ''महाराज! फिर जैसे, चक्रवर्ती राजा सदा अच्छे बुरे की जाँच करते हुये समुद्रपर्यन्त महापृथ्वी पर चक्कर लगाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निरन्तर अपने मन, वचन और कर्म की जाँच करनी चाहिये— 'आज का दिन मैं तीनों प्रकार से निर्दोष कैसे बिताऊँ!' महाराज! चक्रवर्ती राजा का यह तीसरा गुण....। महाराज! *अङ्गुत्तरनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'मेरे दिन–रात कैसे बीतते हैं–यह बात प्रव्रजित को निरन्तर ध्यान रखनी चाहिये।''

एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अब्भन्तरानं बाहिरानं किलेसानं आरक्खाय सतिदोवारिको ठपेतब्बो। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन— 'सतिदोवारिको, भिक्खवे, अरियसावको अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति, सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति, सुद्धमत्तानं परिहरती' '' ति॥

ततियो पथविवग्गो निट्ठितो।।

तस्सुद्दानं

पथवी आपो च तेजो च, वायो पब्बतेन च।
आकासो चन्दसुरियो च, सक्को च चक्कवत्तिना ति॥

४. उपचिकावग्गो

१. उपचिकङ्गपञ्हो

३१. ''भन्ते नागसेन, 'उपचिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, उपचिका उपरिच्छदनं कत्वा अत्तानं पिदहित्वा गोचराय चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलसंवरछदनं कत्वा मानसं पिदहित्वा पिण्डाय चरितब्बं। सीलसंवरच्छदनं कत्वा मानसं पिण्डाय चरितब्बं। सीलसंवरच्छदनेन खो, महाराज, योगी योगावचरो सब्बभयसमतिक्कन्तो होति। इदं, महाराज, उपचिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

---

(४) ''महाराज! फिर जैसे चक्रवर्ती राजा के यहाँ बाहर और भीतर कठोर व्यवस्था रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बाहर और भीतर के क्लेशों से रक्षा करने के लिये स्मृति का रक्षक (पहरेदार) बैठा देना चाहिये। महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही चौथा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'भिक्षुओ! आर्यश्रावक अकुशल (पाप) को स्वयं से दूर रखने के लिये स्मृति का रक्षक बैठा देता है। कुशल की भावना करता है। सदोष को छोड़ देता है, निर्दोष को बनाये रखता है। स्वयं को शुद्ध और पवित्र बनाता है'।।''

तीसरा पृथ्वीवर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, पर्वत, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, चक्रवर्ती राजा—ये दस प्रश्न हैं।।

४. उपचिकावर्ग

१. उपचिकाङ्गप्रश्न— ३१. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में उपचिका (दीमक) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे दीमक (उपचिका) अपने को ऊपर से ढक कर नीचे छिप कर रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील और संयम से अपना मन ढक कर भिक्षाटन करना चाहिये। महाराज! इस तरह अपना मन शील और संवर से ढका रखने से भिक्षु सब प्रकार के भय से बचा रहता है। महाराज! दीमक का यही एक गुण....। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'सीलसंवरछदनं, योगी कत्वान मानसं।

अनूपलित्तो लोकेन, भया च परिमुच्चती' " ति॥

२. बिळारङ्गपञ्हो

३२. "भन्ते नागसेन, 'बिळारस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, बिळारो गुहागतो पि सुसिरगतो पि हम्मियन्तरगतो पि उन्दूरं येव परियेसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामगतेनापि अरञ्ञगतेनापि रुक्खमूलगतेनापि सुञ्ञागारगतेनापि सततं समितं अप्पमत्तेन कायगतासतिभोजनं येव परियेसितब्बं। इदं, महाराज, बिळारस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, बिळारो आसन्ने येव गोचरं परियेसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमेसु येव पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिना विहरितब्बं— 'इति रूपं', 'इति रूपस्स समुदयो', 'इति रूपस्स अत्थङ्गमो'; 'इति वेदना', 'इति वेदनाय समुदयो', 'इति वेदनाय निरोधो'; 'इति सञ्ञा', 'इति सञ्ञाय समुदयो', 'इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो'; 'इति सङ्खारा', 'इति सङ्खारानं समुदयो', 'इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो'; 'इति विञ्ञाणं', 'इति विञ्ञाणस्स समुदयो', 'इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। इदं, महाराज, बिळारस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'न इतो दूरे भवितब्बं, भवग्गं किं करिस्सति।

पच्चुप्पन्नम्हि वोहारे, सके कायम्हि विन्दथा' " ति॥

३. उन्दुरङ्गपञ्हो

३३. "भन्ते नागसेन, 'उन्दुरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा महाराज, उन्दुरो इतो चितो च विचरन्तो आहारूपसीसको येव

'योगी अपने मन को शील और संवर से ढक, संसार से लिप्त न हो, भय से छूट जाता है'।।"

२. बिड़लाङ्गप्रश्न— ३२. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बिल्ली के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे बिल्ली गुहा, बिल या घर में कहीं भी रहकर सदा चूहे की ही खोज में रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गाँव, जंगल, वृत्तमूल या शून्यागार में कहीं भी जा कर निरन्तर 'कायगतास्मृति' रूपी भोजन की खोज में ही रहना चाहिये। महाराज! बिल्ली का यही पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे बिल्ली आसपास में ही शिकार ढूँढ़ती है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने इन्हीं पाँच उपादानस्कन्धों के उदय और नष्ट हो जाने के स्वभाव का मनन करना चाहिये— १. यह रूप है, यह रूप का उदय होना है, यह रूप का नाश हो जाना है; २. यह वेदना है...., ३. यह संज्ञा है...., ४. ये संस्कार हैं...., ५. यह विज्ञान है....। महाराज! बिल्ली का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'यहाँ से दूर जाने की आवश्यकता नहीं, आगे की बातों को सोचने से क्या लाभ! वर्तमान काल के ही व्यवहार में देखो कि अपने शरीर में क्या है!'।।"

३. मूषकाङ्गप्रश्न— ३३. "भन्ते! आप कहते हैं कि भिक्षु में चूहे का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण

चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इतो चितो च विचरन्तेन योनिसो मनसिकारूपसीसकेनेव भवितब्बं। इदं, महाराज, उन्दुरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'धम्मासीसं करित्वान, विहरन्तो विपस्सको।
अनोलीनो विहरति, उपसन्तो सदा सतो' '' ति॥

४. विच्छिकङ्गपञ्हो

३४. ''भन्ते नागसेन, 'विच्छिकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, विच्छिको नङ्गुलावुधो, नङ्गुलं उस्सापेत्वा चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ञाणावुधेन भवितब्बं, ञाणं उस्सापेत्वा विहरितब्बं। इदं, महाराज, विच्छिकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'ञाणखग्गं गहेत्वान, विहरन्तो विपस्सको।
परिमुच्चति सब्बभया, दुप्पसहो च सो भवे' '' ति॥

५. नकुलङ्गपञ्हो

३५. ''भन्ते नागसेन, 'नकुलस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, नकुलो उरगमुपगच्छन्तो भेसज्जेन कायं परिभावेत्वा उरग-मुपगच्छति गहेतुं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कोधाघातबहुलं कलहविग्गह-विवादविरोधाभिभूतं लोकमुपगच्छन्तेन मेत्ताभेसज्जेन मानसं अनुलिम्पितब्बं। इदं, महाराज, नकुलस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे चूहा आहार की गन्ध लेने के लिये ही इधर-उधर दौड़ता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सर्वत्र मन को वश में कर के ही जाना चाहिये। महाराज! चूहे का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'ज्ञानी धर्म को लक्ष्य बना कर ही साधना करता है, वह शान्त चित्त से स्मृतिमान् और उत्साहशील हो विहार करता है।।'''

४. वृश्चिकाङ्गप्रश्न— ३४. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में बिच्छू का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?''

(१) ''महाराज! जैसे बिच्छू की पूँछ ही उसका हथियार है, इसलिये वह उसे उठा कर चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना ज्ञानरूपी शस्त्र उठाये चलना चाहिये। महाराज! बिच्छू का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! बङ्गपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'ज्ञानी ज्ञान-तलवार उठाये विहार करता है, यों वह सभी भयों से छूट जाता है, उसे कोई परास्त नहीं कर सकता'।।''

५. नकुलाङ्गप्रश्न— ३५. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नेवले का एक गुण चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे नेवला एक विशेष जड़ी-बूटी पर लोट लेने के बाद ही सर्प पकड़ने जाता है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्रोध, वैर, कलह, झगड़ा-विवाद और विरोध में लिप्त

'तस्मा सकं परेसं पि, कातब्बा मेत्तभावना।
मेत्तचित्तेन फरितब्बं, एतं बुद्धानसासनं' '' ति॥

६. जरसिङ्गालपञ्हो

३६. ''भन्ते नागसेन, 'जरसिङ्गालस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, जरसिङ्गालो भोजनं पटिलभित्वा अजिगुच्छमानो यावदत्थं आहरियति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भोजनं पटिलभित्वा अजिगुच्छमानेन सरीरयापनमत्तमेव परिभुञ्जितब्बं। इदं, महाराज, जरसिङ्गालस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन महाकस्सपेन*—

'सेनासनम्हा ओरुय्ह, गामं पिण्डाय पाविसिं।
भुञ्जन्तं पुरिसं कुट्ठिं, सक्कच्च नं उपट्ठिहिं॥
'सो मे पक्केन हत्थेन, आलोपं उपनामयि।
कुड्डमूलं च निस्साय, आलोपं तं अभुञ्जिसं।
भुञ्जमाने वा भुत्ते वा, जेगुच्छं मे न विज्जती' ति॥ (थे० गा० १०५४-५६)

(२) ''पुन च परं, महाराज, जरसिङ्गालो भोजनं पटिलभित्वा न विचिनाति लूखं वा पणीतं वा ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भोजनं पटिलभित्वा न विचिनितब्बं— लूखं वा पणीतं वा सम्पन्नं वा असम्पन्नं वा' ति। यथालद्धेन सन्तुस्सितब्बं। इदं, महाराज, जरसिङ्गालस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन* वङ्गन्तपुत्तेन—

संसार के पास अपने मन को मैत्री की जड़ी-बूटी में लपेट कर ही जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नेवले का यही गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'इसलिये, अपने और दूसरे लोगों के प्रति भी मैत्री-भावना करनी चाहिये। मैत्री-चित्त से संसार को भर देना चाहिये, यही बुद्धों का उपदेश है'।।''

६. वृद्धशृगालाङ्गप्रश्न—३६. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते है कि भिक्षु में बूढ़े सियार के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे बूढ़ा सियार जो भी भोजन पाता है, विना घृणा किये मन भर खा लेता है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जो भोजन मिले, विना उसमें दोष निकाले उतना खा लेना चाहिये, जितने से शरीर बना रहे। महाराज! बूढ़े सियार का यही पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर महाकाश्यप* ने भी कहा है—

'अपने आश्रम से निकल कर भिक्षाटन के लिये गाँव में गया, भोजन करते हुए एक कोढ़ी के सामने यथाक्रम भिक्षा के लिये खड़ा हो गया। उसने अपने पके हाथ से कुछ भात ला कर दिया। किन्तु उसके भात देते समय उसकी अंगुली से बहता हुआ खून भी भात में गिर गया।।

'दीवाल के पास बैठ कर मैंने उस भिक्षा को भी खा लिया, खाते समय या बाद में मुझे कुछ भी घृणा नहीं हुई।।'

(२) ''महाराज! फिर जैसे बूढ़ा सियार भोजन पाकर यह नहीं देखता कि भोजन रूखा है या स्वादिष्ठ; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भोजन पा कर यह नहीं देखना चाहिये कि वह रूखा है या स्वादिष्ठ,

'लूखेन पि च सन्तुस्से, नाञ्ञं पत्थे रसं बहुं।
रसेसु अनुगिद्धस्स, झाने न रमते मनो॥
इतरीतरेन सन्तुट्ठे, सामञ्ञं परिपूरती' '' ति॥ *(थे० गा० ५८०)*

७. मिगङ्गपञ्हो

३७. ''भन्ते नागसेन, 'मिगस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानी'' ति ?

(१) ''यथा, महाराज, मिगो दिवा अरञ्ञे चरति, रत्तिं अब्भोकासे; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दिवा अरञ्ञे विहरितब्बं, रत्तिं अब्भोकासे। इदं, महाराज, मिगस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *लोमहंसनपरियाये*— 'सो खो अहं, सारिपुत्त, या ता रत्तियो सीता हेमन्तिका अन्तरट्ठके हिमपातसमये तथारूपासु रत्तिसु रत्तिं अब्भोकासे विहरामि, दिवा वनसण्डे। गिम्हानं पच्छिमे मासे दिवा अब्भोकासे विहरामि रत्तिं वनसण्डे' ति।

(२) ''पुन च परं, महाराज, मिगो सत्तिम्हि वा सरे वा ओपतन्ते वञ्चेति पलायति, न कायमुपनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेसेसु ओपतन्तेसु वञ्चयितब्बं पलायितब्बं, न चित्तमुपनेतब्बं। इदं, महाराज, मिगस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, मिगो मनुस्से दिस्वा येन वा तेन वा पलायति—'मा मे ते अद्दसंसू' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भण्डनकलहविग्गहविवादसीले पुरिसे दुस्सीले कुसीते सङ्गणिकारामे दिस्वा येन वा तेन वा पलायितब्बं—'मा मं ते अद्दसंसू,

---

यह उसे सत्कार से दिया गया है या विना सत्कार के। जैसा भी भोजन मिले उसे सन्तुष्ट हो कर खा लेना चाहिये। महाराज! बूढ़े सियार का यही दूसरा गुण....। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने कहा है—

'रूखा-सूखा भोजन खा कर सन्तुष्ट रहना चाहिये, उससे स्वादिष्ट की खोज नहीं करनी चाहिये। जीभ के लालच में जो पड़ा रहता है, उसका मन ध्यान में नहीं लगता। जो कुछ मिले उसी में प्रसन्न रहने वाला भिक्षु ही श्रमण-व्रत पूरा कर सकता है।। '''

७. मृगाङ्गप्रश्न—३७. ''भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में हरिण के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे हरिण दिन भर जङ्गल में घूमता रहता है और रात में किसी खुले जगह पर सो जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का दिन भर जंगल में और रात में खुली जगह पर विहार करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में हरिण का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! *लोमहंसकपरियाय*-सूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—'हे शारिपुत्र! जाड़े की उन ठण्ढी रातों में जब कड़ी सर्दी पड़ती थी, मैं खुली जगह में रहता था, दिन होने पर जंगल में चला जाता था, गर्मी के पिछले महीनों में दिन के समय खुली जगह में साधना करता था और रात होने पर जंगल में घुस जाता था।'

(२) ''महाराज! फिर जैसे हरिण भाला या तीर चलाये जाने पर देह संकुचित कर चौकड़ी मारते हुंए भाग निकलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों के आने पर मन बचा कर हट जाना चाहिये, दूर हो जाना चाहिये। महाराज! हरिण का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) ''महाराज! जैसे हरिण मनुष्यों को देखते ही भाग खड़ा होता है कि 'वे मुझे देख न लें', वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कलह और विवाद करने वाले और समूह में रहने वाले दुःशील लोगों को देख

अहं च ते मा अद्दसं' ति। इदं, महाराज, ततियं अङ्गं गहेतब्बं ति। भासितं पेतं, महाराज, *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'मा मे कदाचि पापिच्छो, कुसीतो हीनवीरियो।
अप्पस्सुतो अनाचारो, समेतो कत्थची अहू' '' ति॥ *(थे० गा०, ९८७)*

८. गोरूपङ्गपञ्हो

३८. ''भन्ते नागसेन, 'गोरूपस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, गोरूपो सकं गेहं न विजहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सको कायो न विजहितब्बो—'अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविकिरण-विद्धंसनधम्मो अयं कायो' ति। इदं, महाराज, गोरूपस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो आदिण्णधुरो सुखदुक्खेन धुरं वहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आदिण्णब्रह्मचरियेन सुखदुक्खेन याव जीवितपरियादाना आपाणकोटिकं ब्रह्मचरियं चरितब्बं। इदं, महाराज, गोरूपस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो छन्देन घायमानो पानीयं पिबति; एवमेव खो, महाराज, योगिनो योगावचरेन आचरियुपज्झायानं अनुसिट्ठि छन्देन पेमेन पसादेन घायमानेन पटिग्गहेतब्बा। इदं, महाराज, गोरूपस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो येन केनचि वाहियमानो वहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थेरनवमज्झिमभिक्खूनं पि गिहिउपासकस्सापि ओवादानुसासनी सिरसा सम्पटिच्छितब्बा। इदं, महाराज, गोरूपस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

कर हट जाना चाहिये—'वे मुझे न देखें और मैं उन्हें न देखूँ'। महाराज! हरिण का यही तीसरा गुण ....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'पापी, आलसी, उत्साहहीन, मूर्ख, और दुराचारी से मेरा कभी साथ न हो पावे'।।''

८. गोरूपाङ्गप्रश्न — ३८. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बैल के चार गुण होने चाहिये, वे चार गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे बैल अपना घर छोड़ कर कहीं नहीं जाता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना शरीर नहीं छोड़ना चाहिये; क्योंकि वह अनित्य और .... नाशवान् है। महाराज! बैल का यह पहला गुण ....।

(२) ''महाराज! जैसे बैल एक बार गाड़ी में जुत जाता है तो सुख या दुःख से उसे ढोता ही है; वैसे ही योगसाधकभिक्षु को एक बार ब्रह्मचर्यव्रत लेने पर सुख या दुःख सहकर भी उसे जीवनपर्यन्त प्राणपण से निभाना ही चाहिये। महाराज! बैल का यह दूसरा गुण ....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे बैल साँस ले ले कर पानी पीता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार्य और उपाध्याय का उपदेश मन लगा कर प्रेम से ग्रहण करना चाहिये। महाराज! बैल का यही तीसरा गुण ....।

(४) ''महाराज! फिर जैसे बैल किसी के द्वारा जोतने से गाड़ी खींचता है; वैसे ही योगसाधक

'तदहु पब्बजितो सन्तो, जातिया सत्तवस्सिको।
सो पि मं अनुसासेय्य, सम्पटिच्छामि मत्थके॥
'तिब्बं छन्दं च पेमं च, तस्मिं दिस्वा उपट्ठपे।
ठपेय्याचरियट्ठाने, सक्कच्च नं पुनप्पुनं' " ति॥

९. वराहङ्गपञ्हो

३९. "भन्ते नागसेन, 'वराहस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, वराहो सन्तत्तकठिने गिम्हसमये सम्पत्ते उदकं उपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दोसेन चित्ते आलुळितखलितविब्भन्तसन्तत्ते सीतलामतपणीतमेत्ताभावनं उपगन्तब्बं। इदं, महाराज, वराहस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वराहो चिखल्लमुदकमुपगन्त्वा नासिकाय पठविं खणित्वा दोणिं कत्वा दोणिकाय सयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसे कायं निक्खिपित्वा आरम्मणन्तरगतेन सयितब्बं। इदं, महाराज, वराहस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *पिण्डोलभारद्वाजेन*—

'काये सभावं दिस्वान, विचिनित्वा विपस्सको।
एकाकियो अदुतियो, सेति आरम्मणन्तरे' " ति॥

१०. हत्थिङ्गपञ्हो

४०. "भन्ते नागसेन, 'हत्थिस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

भिक्षु को स्थविर, मध्यम, नव भिक्षु और उपासकों का स्वागत और सत्कार भी शिर झुका कर स्वीकार कर लेना चाहिये। महाराज! बैल का यह चौथा गुण.... । धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'आज ही प्रव्रजित हुआ सात वर्ष का श्रामणेर, यदि वह भी मुझे कुछ सिखावे तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।।

'बड़े प्रेम और स्वागत (आवभगत) से उसे देखते हुए, उसका स्वागत करूँगा, बार-बार आचार्य के स्थान पर उसे सत्कारपूर्वक बैठाऊँगा'।"

९. वराहाङ्गप्रश्न—३९. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु सूअर के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सूअर गर्मी के दिनों में गर्मी पड़ने पर जल में पैठ जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को द्वेष से जल-भुन कर चित्त के तपते रहने पर शीतल, अमृत और प्रणीत मैत्रीभावना करने में लग जाना चाहिये। महाराज! सूअर का यही पहला गुण....।

(२) "महाराज! जैसे सूअर कीचड़ में अपनी थूथन घुसा-घुसा कर गड़हा बनाता है और उसी में पड़ा रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना मन संयत कर ध्यानमग्न रहना चाहिये। महाराज! सूअर का यही दूसरा गुण ....।

महाराज! स्थविर *पिण्डोल भारद्वाज* ने भी कहा है—

'ज्ञानी पुरुष शरीर के विनश्वर को देख उसका मनन करता है। एकान्त में अकेला रह ध्यान में डूबा रहता है'।"

(१) ''यथा, महाराज, हत्थी नाम चरन्तो येव पठविं दालेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कायं सम्मसमानेनेव सब्बे किलेसा दालेतब्बा। इदं, महाराज, हत्थिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, हत्थी सब्बकायेनेव अपलोकेति, उजुकं येव पेक्खति, न दिसाविदिसा विलोकेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकायेन अपलोकिना भवितब्बं, न दिसाविदिसा विलोकेतब्बा, न उद्धं उल्लोकेतब्बं न अधो ओलोकेतब्बं, युगमत्तं पेक्खिना भवितब्बं। इदं, महाराज, हत्थिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, हत्थी अनिबद्धसयनो गोचरायानुगन्त्वा न तमेव देसं वासत्थमुपगच्छति, न धुवपतिट्ठालयो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनिबद्ध-सयनेन भवितब्बं, निरालयेन पिण्डाय गन्तब्बं। यदि पस्सति विपस्सको मनुञ्ञं पतिरूपं रुचिरदेसे भवं मण्डपं वा रुक्खमूलं वा गुहं वा पब्भारं वा, तत्थेव वासमुपगन्तब्बं, धुवप्पतिट्ठालयो न कातब्बो। इदं, महाराज, हत्थिस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, हत्थी उदकं ओगाहेत्वा सुचिविमलसीतलसलिलपरिपुण्णं कुमुदुप्पलपदुमपुण्डरीकसञ्छन्नं महतिमहन्तं पदुमसरं ओगाहित्वा कीळति गजवरकीळं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुचिविमलविप्पसन्नमनाविलधम्मवरवारिपुण्णं विमुत्ति-कुसुमसञ्छन्नं महासतिपट्ठानपोक्खरणिं ओगाहित्वा ञाणेन सङ्खारा ओधुनितब्बा विधुनितब्बा, योगावचरकीळा कीळितब्बा। इदं, महाराज, हत्थिस्स चतुत्थं अङ्गं गहतेब्बं।

(५) ''पुन च परं, महाराज, हत्थी सतो पादं उद्धरति, सतो पादं निक्खपति; एवमेव

---

१०. हस्ति-अङ्गप्रश्न-४०. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में हाथी के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे हाथी चलते हुए पृथ्वी का मानो विदारण कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने-अपने शरीर पर मनन करते हुए सभी केशों को विदारित कर देना चाहिये। महाराज! हाथी का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे हाथी शरीर को घुमाते हुए भी सीधा ही देखता है, इधर-उधर नहीं, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घूम कर देखते हुए भी अगल-बगल ऊपर-नीचे आँख नहीं चलानी चाहिये, केवल दो हाथ आगे तक देखना चाहिये। महाराज! हाथी का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! जैसे जंगली हाथी अपने वास के लिये कोई विशेष स्थान निश्चित नहीं करता, जहाँ अवसर पाता है वहीं रहता है और सोता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बेघर होना चाहिये, अपना कोई स्थान नियत किये विना भिक्षाटन के लिये बाहर निकल जाना चाहिये। जहाँ कोई अच्छा, सुन्दर, रम्य और अनुकूल स्थान, मण्डप, वृक्षमूल, गुहा या पहाड़ का किनारा दीखे, वहीं कुछ समय के लिये टिक जाना चाहिये। महाराज! हाथी का यही तीसरा गुण....।

(४) ''महाराज! जैसे हाथी कमल और कुमुद के फूल खिले हुए, निर्मल शीतल जल वाले सरोवर में पैठ कर आनन्द के साथ जलक्रीड़ा करता है; वैसे ही भिक्षु को पवित्र और निर्मल धर्मरूपी जल से भरे, विमुक्ति के खिले फूलों से युक्त, स्मृतिप्रस्थान के सरोवर में प्रविष्ट होकर, ज्ञान से संस्कारों को धुन-धुनकर तोड़ देना चाहिये। यही योगियों की योगक्रीड़ा है। महाराज! हाथी का यह चौथा गुण....।

खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सतेन सम्पजानेन पादं उद्धरितब्बं, सतेन सम्पजानेन पादं निक्खिपितब्बं, अभिक्कमपटिक्कमे सम्मिञ्जनपसारणे सब्बत्थ सतेन सम्पजानेन भवितब्बं। *(दी० नि०, महासति०)* इदं, महाराज, हत्थिस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—

'कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ सवंरो॥
सब्बत्थ संवुतो लज्जी, रक्खितो ति पवुच्चती' '' ति। *(ध० प० ३६१)*

चतुत्थो उपचिकावग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

उपचिका बिलारो च, उन्दुरो विच्छिकेन च।
नकुलो सिङ्गालो मिगो, गोरूपो वराहो हत्थिना दसा ति॥

५. सीहवग्गो

१. सीहङ्गपञ्हो

४१. ''भन्ते नागसेन, 'सीहस्स सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, सीहो नाम सेतविमलपरिसुद्धपण्डरो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सेतविमलपरिसुद्धपण्डरचित्तेन ब्यगतकुक्कुच्चेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(५) "महाराज! फिर जैसे हाथी ध्यान करके ही पैर उठाता है और ध्यान करके ही पैर रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ध्यान करके ही पैर उठाना और रखना चाहिये। जाने, लौटने, समेटने, पसारने सभी में ध्यान रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में हाथी का यह पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* में देवातिदेव भगवनान् ने भी कहा है—

'शरीर का संयम, वचन का संयम, मन का संयम, सभी का संयम करना अच्छा है। सब प्रकार से वही संयमशील होता है ऽ जो प्रज्ञावान् हो अपने को वश में रखता है'।।"

चतुर्थ उपचिकावर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में—१. उपचिका, २. बिडाल, ३. उन्दुरक, ४. बिच्छू, ५. नकुल, ६. शृगाल, ७. मृग, ८. गोरूप, ९. वराह एवं १०. हाथी—ये दस प्रश्न हैं।।

५. सिंहवर्ग

१. सिंहाङ्गप्रश्न—४१. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में सिंह के सात गुण होने चाहियें, वे सात गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सिंह विना किसी दाग या धब्बे का साफ सुथरा भूरा होता है वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निर्मल, पवित्र और स्थिर चित्त होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह पहला गुण....।

(२) "पुन च परं, महाराज, सीहो चतुचरणो विक्कन्तचारी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चतुरिद्धिपादचरणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, सीहो अभिरूपरुचिरकेसरी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अभिरूपरुचिरसीलकेसरिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, सीहो जीवितपरियादाने पि न कस्सचि ओनमति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्ज-परिक्खारपरियादाने पि न कस्सचि ओनमितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, सीहो सपदानभक्खो यस्मिं ओकासे निपतति, तत्थेव यावदत्थं भक्खयति, न वरमंसं विचिनाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सपदानभक्खेन भवितब्बं, न कुलानि विचिनितब्बानि, न पुब्बगेहं हित्वा कुलानि उपसङ्कमितब्बानि, न भोजनं विचिनितब्बं, यस्मिं ओकासे कबळं आदियति तस्मिं येव ओकासे भुञ्जितब्बं सरीरयापनत्थं, न वरभोजनं विचिनितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं।

(६) "पुन च परं, महाराज, सीहो असन्निधिभक्खो, सकिं गोचरं भक्खयित्वा न पुन तं उपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन असन्निधिकारपरिभोगिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स छट्ठं अङ्गं गहतेब्बं।

(७) "पुन च परं, महाराज, सीहो भोजनं अलद्धा न परितस्सति, लद्धा पि भोजनं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो परिभुञ्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन

---

(२) "महाराज! और जैसे सिंह अपने चार पैरों पर ही बड़ी तेजी से दौड़ता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार ऋद्धियों वाला होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह दूसरा गुण.... ।

(३) "महाराज! फिर जैसे सिंह बड़े सुहावने केशर (जटा) वाला होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सुन्दर शीलरूपी केशर से युक्त होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे सिंह अपने प्राण निकल जाने पर भी किसी के आगे नहीं झुकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चीवर, पिण्डपात, शयनसान और ग्लानप्रत्यय प्राप्त न होने पर भी किसी के सामने झुकना नहीं चाहिये। महाराज! सिंह का यह चौथा गुण ....।

(५) "महाराज! जैसे जहाँ सिंह पञ्जा मारता है, वहीं का मांस खा लेता है, अच्छा मांस कहाँ मिलेगा इसकी चिन्ता नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को विना घर छोड़े क्रमशः भिक्षा माँगते चला जाना चाहिये। कुलों में चुन–चुन कर नहीं जाना चाहिये। मिली हुई भिक्षा में जो ग्रास में आवे उसी को खाना चाहिये, न कि क्या स्वादिष्ठ है? इसकी खोज नहीं करनी चाहिये। शरीर–यात्रा करने भर खाना चाहिये, खूब ठूँसकर नहीं। महाराज! सिंह का यह पाँचवा गुण ....।

(६) "महाराज! फिर जैसे सिंह अपने शिकार में से कुछ बचा कर नहीं रखता। जिसे एक बार खाता है उसके पास दुबारा नहीं जाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को परिग्रह नहीं करना चाहिये। महाराज! सिंह का यह छठा गुण....।

(७) "महाराज! फिर जैसे सिंह शिकार न मिलने पर भी त्रास नहीं करता और मिलने पर

भोजनं अलद्धा न परितस्सितब्बं, लद्धा पि भोजनं अगधितेन अमुच्छितेन अनज्झापन्नेन आदीनवदस्साविना निस्सरणपञ्ञेन परिभुञ्जितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स सत्तमं अङ्गं गहेतब्बं।

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे थेरं महाकस्सपं* परिकित्तयमानेन—'सन्तुट्ठोयं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपात-सन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति, अलद्धा च पिण्डपातं न परितस्सति, लद्धा पिण्डपातं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जती' " ति। *(सं० नि०, १६.१३)*

२. चक्कवाकङ्गपञ्हो

४२. "भन्ते नागसेन, 'चक्कवाकस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, चक्कवाको याव जीवितपरियादाना दुतियिकं न विजहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन याव जीवितपरियादाना योनिसो मनसिकारो न विजहितब्बो। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स पठमं अङ्गं गहतेब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, चक्कवाको सेवालपणकभक्खो, तेन च सन्तुट्ठिमापज्जति, ताय च सन्तुट्ठिया बलेन च वण्णेन च न परिहायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यथालाभसन्तोसो करणीयो। यथालाभसन्तुट्ठो खो, महाराज, योगी योगावचरो न परिहायति सीलेन, न परिहायति समाधिना, न परिहायति पञ्ञाय, न परिहायति विमुत्तिया, न परिहायति विमुत्तिञाणदस्सनेन, न परिहायति सब्बेहि कुसलेहि धम्मेहि। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

अधिक नहीं खाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भोजन न मिलने पर त्रास नहीं करना चाहिये और मिलने पर बहुत सँभल कर, भोजन के दोषों का विचार करते हुये, शरीर–धारणमात्र खाना चाहिये। महाराज! सिंह का यही सातवाँ गुण....।

"महाराज! *स्थविर महाकाश्यप* की प्रशंसा करते हुये स्वयं देवातिदेव भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! काश्यप जैसे तैसे प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने वाला है। जैसे तैसे प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। पिण्डपात करने में कोई दोष नहीं होने देता। कुछ भी भिक्षा न मिलने पर त्रास नहीं मानता। मिलने पर बहुत ढंग से, उसके आदीनवों (दोषों) का विचार करते हुये शरीर धारण–मात्र के लिये थोड़ा खा लेता है'।"

२. चक्रवाकाङ्गप्रश्न—४२. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में चकवा के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?

(१) "महाराज! जैसे चकवा जीवन भर मिथुन (जोड़े) को नहीं छोड़ता; वैसे ही योगसाधक को जीवन भर मनन का अभ्यास नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज! चकवा का यह पहला गुण भिक्षु में....।

(२) "महाराज! फिर जैसे चकवा सेवाल और पानी के दूसरे पौधों को खाकर सन्तुष्ट रहता है, उस सन्तोष से उसका बल और सौन्दर्य कभी नहीं कम होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिये। जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहने वाला भिक्षु शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्तिज्ञानदर्शन और सभी पुण्य धर्मों से क्षीण नहीं होता। महाराज! चकवा का यह दूसरा गुण....।

(३) ''पुन च परं, महाराज, चक्कवाको पाणे न विहेठयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निहितदण्डेन निहितसत्थेन लज्जिना दयापन्नेन सब्बपाणभूतहितानुकम्पिना भवितब्बं। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चक्कवाकजातके*—

'यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति, न जापये।
मेत्तंसो सब्बभूतेसू, वेरं तस्स न केनची' '' ति॥

३. पेणाहिकङ्गपञ्हो

४३. ''भन्ते नागसेन, 'पेणाहिकाय द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पेणाहिका सकपतिम्हि उसूयाय छापके न पोसयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सकमने किलेसे उप्पन्ने उसूयायितब्बं, सतिपट्ठानेन सम्मासंवरसुसिरे पक्खिपित्वा मनोद्वारे कायगतासति भावेतब्बा। इदं, महाराज, पेणाहिकाय पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पेणाहिका पवने दिवसं गोचरं चरित्वा सायं पक्खिगणं उपेति अत्तनो गुत्तिया; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एककेन पविवेकं सेवितब्बं संयोजनपरिमुत्तिया। तत्र रतिं अलभमानेन उपवादभयपरिरक्खणाय सङ्घं ओसरित्वा सङ्घरक्खितेन वसितब्बं। इदं, महाराज, पेणाहिकाय दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *ब्रह्मुना सहम्पतिना* भगवतो सन्तिके—

---

(३) ''महाराज! फिर जैसे चकवा किसी जीव को नहीं सताता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी को मारना–पीटना नहीं चाहिये। उसे लज्जावान्, दयालु और सभी प्राणियों के प्रति करुणाशील होना चाहिये। महाराज! चकवा का यह तीसरा गुण....। महाराज! *चक्रवाकजातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो न वध करता है और न करवाता है, न हराता है और न हरवाता है, सभी जीवों के प्रति अहिंसा रखता है; उसका किसी के साथ वैर नहीं रहता'।।''

३. पेणाहिकाङ्गप्रश्न— ४३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में पेणाहिका (सारस?) पक्षी के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?'' (१) ''महाराज! जैसे पेणाहिका नाम की चिड़िया अपने पति की ईर्ष्या में अपने बच्चों तक को नहीं पोसती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में उत्पन्न हुये क्लेशों के प्रति ईर्ष्या रखनी चाहिये। स्मृतिप्रस्थान से संयमरूपी बिल में उन्हें डाल कर मन के द्वार पर कायगतास्मृति की भावना करनी चाहिये। महाराज! पेणाहिका पक्षी का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे पेणाहिका पक्षी दिन भर जंगल में चारा खाकर सायङ्काल अपनी रक्षा के लिये झुण्ड में आ कर मिल जाती है; वैसे ही योगसाधक योगी को अपने भीतर की गाँठ सुलझाने के लिये अकेले एकान्त का सेवन करना चाहिये। यदि वहाँ मन न लगे तो अपयश से बचने के लिये सङ्घ में आकर मिल जाना चाहिये, सङ्घ के संरक्षण में रहना चाहिये। महाराज! पेणाहिका पक्षी का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् के सामने कहा था—

'सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, चरेय्य संयोजनविप्पमोक्खो।
सचे रतिं नाधिगच्छेय्य तत्थ, सङ्घे पसे रक्खितत्तो सतीमा' ''ति। *(थे० गा०,१४२)*

४. घरकपोतकङ्गपञ्हो

४४. ''भन्ते नागसेन, 'घरकपोतस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, घरकपोतो परगेहे वसमानो न तेसं किञ्चि भण्डस्स निमित्तं गण्हाति, मज्झत्तो वसति सञ्ञाबहुलो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परकुलं उपगतेन तस्मिं कुले इत्थीनं वा पुरिसानं वा मञ्चे वा पीठे वा वत्थे वा अलङ्कारे वा उपभोगे वा भोजनविकतीसु वा न निमित्तं गहेतब्बं, मज्झत्तेन भवितब्बं, समणसञ्ञा पच्चुपट्ठपेतब्बा। इदं, महाराज, घरकपोतस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चुल्लनारदजातके*—

'पविसित्वा परकुलं, पानेसु भोजनेसु वा।
मितं खादे, मितं भुञ्जे, न च रूपे मनं करे' '' ति॥

५. उलूकङ्गपञ्हो

४५. ''भन्ते नागसेन, 'उलूकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, उलूको काकेहि पटिविरुद्धो रत्तिं काकसङ्घं गन्त्वा बहू पि काके हनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अञ्ञाणेन पटिविरोधो कातब्बो, एकेन रहो निसीदित्वा अञ्ञाणं सम्पमद्दितब्बं, मूलतो छिन्दितब्बं। इदं, महाराज, उलूकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

''पुन च परं, महाराज, उलूको सुपटिसल्लीनो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना

'जंगल में दूर हट कर रहे, लोक–जंजाल से मुक्त हो कर रहे, यदि वहाँ मन न लगे तो वह स्मृतिमान् सङ्घ के संरक्षण में आ कर रहे'।। ''

४. गृहकपोताङ्गप्रश्न—४४. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कबूतर का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे कबूतर दूसरे के घर में बसते हुये वहाँ की किसी चीज को देख ललच नहीं जाता, किन्तु उनके प्रति अनासक्त हो कर रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थों के घर जा परिवार के पुरुष–स्त्री, कुर्सी, खाट, कपड़े, अलङ्कार, भोजन या अन्य भोग–सामग्रियाँ देख कर ललच नहीं जाना चाना चाहिये, उनके प्रति अनासक्त और अन्यमनस्क हो कर रहना चाहिये। 'मैं भिक्षु हूँ'—इस बात का ध्यान रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कबूतर का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! *चुल्लनारद–जातक* में देवातिदेव ने भगवान् ने भी कहा है—

'गृहस्थ–कुलों में जाकर खाना पीना मिलने पर मात्रा में खाये पीये, सौन्दर्य की ओर मन न दौड़ाये।।''

५. उलूकाङ्गप्रश्न— ४५. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में उल्लू के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे उल्लू और कौवे में स्वाभाविक शत्रुता है, और उल्लू रात के समय कौओं के झुण्ड में जा कर बहुत से कौवों को मार देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अज्ञान से शत्रुता कर

योगावचरेन पटिसल्लानारामेन भवितब्बं पटिसल्लानरतेन। इदं, महाराज, उलूकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—'इध, भिक्खवे, भिक्खु पटिसल्लानरतो—'इदं, दुक्खं' ति यथाभूतं पजानति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाती' " ति।

६. सतपत्तङ्गपञ्हो

४६. "भन्ते नागसेन, 'सतपत्तस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, सतपत्तो रवित्वा परेसं खेमं वा भयं वा आचिक्खति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परेसं धम्मं देसयमानेन विनिपातं भयतो दस्सयितब्बं, निब्बानं खेमतो दस्सयितब्बं। इदं, महाराज, सतपत्तस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, थेरेन *पिण्डोलभारद्वाजेन*—

'निरये भयसन्तासं, निब्बाने विपुलं सुखं।
उभयानेतानि अत्थानि, दस्सेतब्बानि योगिना' " ति॥ *(दी०नि०, सिगा०सु०)*

७. वग्गुलिङ्गपञ्हो

४७. "भन्ते नागसेन, 'वग्गुलिस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, वग्गुलिगेहं पविसित्वा विचरित्वा निक्खमति, न तत्थ पलिबुज्झति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामे पिण्डाय पविसित्वा सपदानं

अकेला बैठ, उसे सर्वथा नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। महाराज! उल्लू का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे उल्लू एकान्त में कहीं छिप कर झपकियाँ लेता रहता है; वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में ध्यान लगा कर मग्न रहना चाहिये। महाराज! उल्लू का यही दूसरा गुण....। महाराज! *संयुक्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! भिक्षु एकान्त में ध्यान लगा कर मनन करता है कि यह दुःख है, यह दुःख का हेतु है, यह दुःखनिरोध है और यह दुःखनिरोध की तरफ ले जाने वाला मार्ग है'।"

६. शतपत्राङ्गप्रश्न— ४६. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में सारस पक्षी का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे सारस का शब्द बता देता है कि शुभ होगा या अशुभ; वैसे ही योगसाधक भिक्षु धर्म-देशना करते हुए लोगों में यह प्रकट कर दे कि नरक कितना भयावह है और निर्वाण कितना क्षेमङ्कर। महाराज! सारस का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर पिण्डोलभारद्वाज* ने भी कहा है—

'नरक में भय और त्रास तथा निर्वाण में सुख ही सुख है— ये दोनों बातें योगी को साफ-साफ समझा देनी चाहिये'।।"

७. बागुरिकाङ्गप्रश्न— ४७. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बागुर (पक्षी) के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे बागुर घर के भीतर आकर इधर-उधर उड़ विना कहीं ठहरे निकल

विचरित्वा पटिलद्धलाभेन खिप्पमेव निक्खमितब्बं। न तत्थ पलिबुद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, वग्गुलिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वग्गुलि परगेहे वसमानो न तेसं परिहानिं करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुलानि उपसङ्कमित्वा अतियाचनाय विञ्ञत्तिबहुलताय वा कायदोसबहुलताय वा अतिभाणिताय वा समानसुखदुक्खताय वा न तेसं कोचि विप्पटिसारो करणीयो, न पि तेसं मूलकम्मं परिहापेतब्बं, सब्बथा वड्ढि येव इच्छितब्बा। इदं, महाराज, वग्गुलिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *दीघनिकायवरे लक्खणसुत्तन्ते*—

'सद्धाय सीलेन बुद्धिया, चागेन धम्मेन बहूहि साधुहि।
धनेन धञ्ञेन च खेत्तवत्थुना, पुत्तेहि दारेहि चतुप्पदेहि च॥
ञातीहि मित्तेहि च बन्धवेहि, बलेन वण्णेन सुखेन चूभयं।
'कथं न हायेय्युं परे' ति इच्छति, अत्थस्समिद्धिं च पनाभिकङ्खती' " ति॥

(दी० नि० सु० ३१)

८. जलूकपञ्हो

४८. "भन्ते नागसेन, 'जलूकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, जलूका यत्थ अल्लीयति तत्थेव दळ्हं अल्लीयित्वा रुधिरं पिवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यस्मिं आरम्मणे चित्तं अल्लीयति, तं आरम्मणं वण्णतो च सण्ठानतो च दिसतो च ओकासतो च परिच्छेदतो च लिङ्गतो च निमित्ततो च दळ्हं पतिट्ठापेत्वा तेनेवारम्मणेन विमुत्तरसमसेचनकं पातब्बं। इदं, महाराज, जलूकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भिक्षाटन के लिये गाँव में प्रवेश कर भिक्षा लेते हुये सीधे निकल जाना चाहिये, कहीं रुकना नहीं चाहिये। महाराज! भिक्षु में बागुर का यही पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे बागुर दूसरों के घर में रहते हुये उनकी कोई हानि नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थों के घर जा उन्हें बार–बार याचना करके तंग नहीं करना चाहिये, कोई बुरा हाव–भाव नहीं दिखाना चाहिये, कुछ प्रलाप नहीं करना चाहिये, उनके साथ सुख–दुःख नहीं दिखाना चाहिये, उनका कोई पश्चात्ताप भी नहीं करना चाहिये और न उनके कार्य में विघ्न डालना चाहिये। किन्तु सदा उनकी वृद्धि की कामना करनी चाहिये। महाराज! बागुर का यही दूसरा गुण....। महाराज! *दीघनिकाय* के *लक्षणसूत्र* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है–

'श्रद्धा, शील, विद्या, बुद्धि, त्याग, अनेक प्रकार के अच्छे धर्मों, धन–धान्य, खेत, पुत्र, स्त्री और पशु, जात–बिरादरी, मित्र, बान्धवों, बल, सौन्दर्य और सुख से लोग किसी भी तरह न घटें! –वह यही चाहता है सभी के लाभ और वृद्धि की शुभ इच्छा करता है'।।"

८. जलौकाङ्गप्रश्न– ४८. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में जोंक का एक गुण होना चाहिये, यह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे जोंक जहाँ पकड़ती है, वहीं अच्छी तरह रक्त पीती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु जिस विषय पर ध्यान लगाता है, उसमें पूर्णतः तल्लीन हो जाता है–उसके रूप, रङ्ग, स्थान, फैलाव, घेराव, पहचान, चिह्न सभी को जानता है। इस तरह ध्यान लगाकर वह विमुक्तिरस का

'परिसुद्धेन चित्तेन, आरम्मणे पतिट्ठाय।
तेन चित्तेन पातब्बं, विमुत्तिरससेचनं''' ति॥ *(थे०गा० ५५, म० नि० ११४)*

९. सप्पङ्गपञ्हो

४९. ''भन्ते नागसेन, 'सप्पस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, सप्पो उरेन गच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पञ्ञाय चरितब्बं। पञ्ञाय चरमानस्स खो, महाराज, योगिनो चित्तं ञाये चरति, विलक्खणं विवज्जेति, सलक्खणं भावेति। इदं, महाराज, सप्पस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, सप्पो चरमानो ओसधं परिवज्जेन्तो चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दुच्चरितं परिवज्जन्तेन चरितब्बं। इदं, महाराज, सप्पस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, सप्पो मनुस्से दिस्वा तप्पति सोचति चिन्तयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुवितक्के वितक्केत्वा अरतिं उप्पादयित्वा तप्पितब्बं सोचितब्बं चिन्तयितब्बं—'पमादेन मे दिवसो वीतिनामितो, न सो पुन सक्का लद्धुं' ति। इदं, महाराज, सप्पस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भल्लाटियजातके* द्विन्नं किन्नरानं—

'मयेकरत्तिं विप्पवसिम्ह लुद्द, अकामका अञ्ञमञ्ञं सरन्ता।
तमेकरत्तिं अनुतप्पमाना, सोचाम सा रत्ति पुनं न हेस्सती' '' ति॥

१०. अजगरङ्गपञ्हो

५०. ''भन्ते नागसेन, 'अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं गहेतब्बं'' ति।

पान करता है। महाराज! जोंक का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'ध्यानस्थ होकर परिशुद्ध चित्त से विमुक्ति—रस पीना चाहिये'।''

९. सर्पाङ्गप्रश्न— ४९. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में साँप के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे सर्प पेट के बल चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रज्ञा के बल पर चलना चाहिये। महाराज! प्रज्ञा के बल पर चलने पर उसे सत्यज्ञान प्राप्त होता है। वह भिक्षु के अनुकूल चीजें ग्रहण करता है, प्रतिकूल चीजें छोड़ देता है। महाराज! भिक्षु में सर्प का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे सर्प चलते हुये जड़ी—बूटी से बच कर चलता है; वैसे ही योगसाधक को दुराचार से बच कर चलना चाहिये। महाराज! सर्प का यही दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे सर्प मनुष्य को देखते ही डर जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुरे विचारों में पड़ अपने को ब्रह्मचर्य जीवन से ऊबते या डरते रहना चाहिये—'अरे! आज तो मैं धोखा खा गया, यह हानि पूरी नहीं की जा सकती'। महाराज! सर्प का यह तीसरा गुण....। महाराज! दो किन्नरों के विषय में *भल्लाटिय जातक* में कहा गया है—

(१) "यथा, महाराज, अजगरो महतिमहाकायो बहू पि दिवसे ऊनूदरो दीनतरो कुच्छिपूरं आहारं न लभति, अपरिपुण्णो येव यावदेव सरीरयापनमत्तकेन यापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सिक्खाचरियप्पसुतस्स परपिण्डमुपगतस्स परदिन्न-पाटिकङ्खिस्स सयङ्गाहपटिविरतस्स दुल्लभं उदरपरिपूरं आहारं, अपि च अत्थवसिकेन कुलपुत्तेन चत्तारो पञ्च आलोपे अभुञ्जित्वा अवसेसं उदकेन परिपूरेतब्बं। इदं, महाराज, अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'अल्लं सुक्खं च भुञ्जन्तो, न बाळ्हं सुहितो सिया।
ऊनूदरो मिताहारो, सतो भिक्खु परिब्बजे॥
'चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदकं पिवे।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो' " ति॥ *(थे०गा० ९८२-८३)*

पञ्चमो सीहवग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

केसरी चक्कवाको च, पेणाहि घरकपोतको।
उलूको सतपत्तो च, वग्गुली च जलूपिका।
सप्पो अजगरो चेव, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

६. मक्कटवग्गो

१. पन्थमक्कटपञ्हो

५१. "भन्ते नागसेन, 'पन्थमक्कटकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं

'हे शिकारी! जो हम दोनों ने एक रात बितायी अपनी इच्छा के विरुद्ध, एक दूसरे के ध्यान में, उसी एक रात का पश्चात्ताप करते हुए हम शोक करते हैं– वह रात फिर न आवे'।"

१०. अजगराङ्गप्रश्न– ५०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अजगर का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे विशाल शरीर वाला बेचारा अजगर बहुत दिनों तक पेट भर आहार न मिलने से भूखा पड़ा रहता है, तो भी थोड़ा बहुत खाकर जीता रहता है; वैसे ही भिक्षाटन कर दूसरे के पिण्डपात से पेट पालने वाले, स्वयं कुछ भी न लेने वाले भिक्षु को बराबर पेट भर आहार मिलना दुर्लभ हो, अच्छे कुलपुत्र को तब चार पाँच कौर भोजन करके ही अवशिष्ट पेट को जल से भर लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में अजगर का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है–

'गीला या सूखा कुछ भी खाते हुये भर पेट नहीं खाना चाहिये। खाली पेट या थोड़ा खा कर रहने वाला बनकर भिक्षु प्रव्रजित होवे।।'

'चार पाँच कौर खाने के बाद कुछ न मिले तो पानी पी कर पेट भर ले, आत्मसंयत भिक्षु के लिये बस यही पर्याप्त है'।।"

पाँचवाँ सिंहवर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में–सिंह, चक्रवाक, पेणाहिक, गृहकपोत, उलूक, शतपत्र, बागुरिका, जलौका, सर्प और अजगर के गुण– इन दश प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।।

एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, पन्थमक्कटको पन्थे मक्कटकजालवितानं कत्वा यदि तत्थ जालके लग्गति—किमी वा मक्खिका वा पतङ्गो वा, तं गहेत्वा भक्खयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन छसु द्वारेसु सतिपट्ठानजालवितानं कत्वा यदि तत्थ किलेसमक्खिका बज्झन्ति, तत्थेव घातेतब्बा। इदं, महाराज, पन्थमक्कटकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

'चित्तं नियमे छसु द्वारेसु, सतिपट्ठानवरुत्तमे।
किलेसा तत्थ लग्गा चे, हन्तब्बा ते विपस्सिना' '' ति॥

२. थनस्सितदारकङ्गपञ्हो

५२. ''भन्ते नागसेन, 'थनस्सितदारकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, थनस्सितदारको सदत्थे लग्गति, खीरत्थिको रोदति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगाचरेन सदत्थे लग्गितब्बं, सब्बत्थ धम्मञाणेन भवितब्बं, उद्देसे परिपुच्छाय सम्मप्पयोगे पविवेके गरुसंवासे कल्याणमित्तसेवने। इदं, महाराज, थनस्सितदारकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *दीघनिकायवरे परिनिब्बान-सुत्तन्ते*— 'इङ्घ तुम्हे, आनन्द, सदत्थे घटथ, सदत्थे अनुयुञ्जथ, सदत्थे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा' '' ति।

३. चित्तकधरकुम्मङ्गपञ्हो

५३. ''भन्ते नागसेन, चित्तकधरकुम्मस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं

---

६. मर्कटकवर्ग

१. पथ-मर्कटकाङ्गप्रश्न— ५१. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में मकड़े का एक गुण होना चाहिये, वह एक क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे मकड़ा रास्ते में अपना जाल फैला कर बैठा रहता है। यदि कोई कीड़ा, मक्खी या पतङ्ग जाल में फँस जाता है तो वह उसे पकड़ कर खा जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को छह द्वारों में स्मृतिप्रस्थान का जाल फैला कर बैठे रहना चाहिये— यदि उसमें कोई क्लेश बँध जाय तो झट उसे पकड़ कर वहीं नष्ट कर देना चाहिये। महाराज! मकड़े का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'श्रेष्ठ और उत्तम स्मृतिप्रस्थान के द्वारा छह द्वारों से चित्त को रोके रखना चाहिये। यदि उसमें कोई क्लेश पड़ जाय तो ज्ञानी को उसे नष्ट कर देना चाहिये'।।''

२. स्तन्यपायिबालाङ्गप्रश्न— ५२. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में दूध पीते बच्चे का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे दूध पीते बच्चे को बस केवल अपनी ही अपेक्षा (परवाह) रहती है, वह दूध पीने के लिये रोता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को केवल शुभ उद्देश्य का ही ध्यान होना चाहिये। उपदेश, धर्मचर्चा, चालचलन, एकान्तसेवन, गुरुजनों का सहवास, सत्सङ्ग आदि ऊँचा धर्म-ज्ञान प्राप्त करने का ही एक उद्देश्य रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में दूध पीते बच्चे का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! *दीघनिकाय* के *परिनिर्वाणसूत्र* में देवातिदेव भगवान् ने कहा है— 'आनन्द! सुनो, शुभ उद्देश्य के प्रति चेष्टा करो, उसी में लग जाओ! विना प्रमाद किये, संयत हो; अपने आप को वश में कर ऊँचे और अच्छे उद्देश्य की धुन में लगा रहना चाहिये'।''

३. चित्रकधरकूर्माङ्गप्रश्न— ५३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में चित्रकधर (चित्तकबरे)

एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, चित्तकधरकुम्मो उदकभया उदकं परिवज्जेत्वा विचरति, ताय च पन उदकं परिवज्जनाय आयुना न परिहायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पमादे भयदस्साविना भवितब्बं, अप्पमादे गुणविसेसदस्साविना, ताय च पन भयदस्साविताय न परिहायति सामञ्ञा, निब्बानस्स सन्तिके उपेति। इदं, महाराज, चित्तकधरकुम्मस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं ति। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन *धम्मपदे*—

'अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके'' 'ति॥ *(ध०प०, अ०व० ३२)*

४. पवनङ्गपञ्हो

५४. ''भन्ते नागसेन, 'पवनस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पवनं नाम असुचिजनं पटिच्छादेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परेसं अपरद्धं खलितं पटिच्छादेतब्बं, न विवरितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पवनं सुञ्ञं पचुरजनेहि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोससमोहमानदिट्ठिजालेहि सब्बेहि च किलेसेहि सुञ्ञेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, पवनं विवित्तं जनसम्बाधरहितं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अनरियेहि पविवित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

कछुये का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे चित्रकधर कछुआ जल में होने वाले भय के कारण जल से बाहर निकल कर घूमता है, उससे उसकी आयु कम नहीं होती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रमाद में भय देखना चाहिये और अप्रमाद में गुण। उस तरह, वह अपने भिक्षुभाव में कम नहीं होता, वह निर्वाण के पास पहुँच जाता है। महाराज! भिक्षु में चित्रकधर कछुये का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! *धर्मपद* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अप्रमाद से लगा हुआ भिक्षु प्रमाद में भय देखे तो वह पतित नहीं होता, निर्वाण तक पहुँच जाता है'।।"

४. उपवनाङ्गप्रश्न— ५४. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में जंगल के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे जंगल दुष्टों के छिपने की जगह है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरों के अपराध या दोष को छिपा देना चाहिये, उसे प्रकट नहीं करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में जंगल का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे जंगल निर्जन रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का मन राग, द्वेष, मोह, क्लेश और आत्मदृष्टि के जंजाल से मुक्त होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह दूसरा....।

(३) "महाराज! फिर जैसे जंगल एकान्त स्थान होता है, लोगों के कोलाहल से रहित होता है। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को पाप, बुरे और नीच धर्मों से रहित होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह तीसरा गुण....।

(४) "पुन च परं, महाराज, पवनं सन्तं परिसुद्धं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सन्तेन परिसुद्धेन भवितब्बं, निब्बुतेन पहीनमानेन पहीनमक्खेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, पवनं अरियजनसंसेवितं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अरियजनसंसेवितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—

'पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायिहि।
निच्चं आरद्धविरियेहि, पण्डितेहि सहावसे' " ति॥

५. रुक्खङ्गपञ्हो

५५. "भन्ते नागसेन, 'रुक्खस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानी' ति ?

(१) "यथा, महाराज, रुक्खो नाम पुप्फफलधरो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विमुत्तिपुप्फसामञ्ञफलधारिना भवितब्बं। इदं, महाराज, रुक्खस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज रुक्खो उपगतानं अनुप्पविट्ठानं जनानं छायं देति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उपगतानं अनुप्पविट्ठानं पुग्गलानं आमिसपटिसन्थारेन वा धम्मपटिसन्थारेन वा पटिसन्थरितब्बं। इदं, महाराज, रुक्खस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, रुक्खो छायावेमत्तं न करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तेसु वेमत्तता न कातब्बा, चोरवधकपच्चत्थिकेसु पि अत्तनि पि

---

(४) "महाराज! फिर जैसे जंगल शान्त और शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शान्त, शुद्ध, नम्र और अभिमानरहित होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! फिर जैसे जंगल साधु-मुनियों के रहने का स्थान है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को साधु-सन्तों की सङ्गति में रहना चाहिये। महाराज! जंगल का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! *संयुक्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'एकान्त में रहने वाले सत्पुरुषों के साथ, जो संयमशील और ध्यान करने वाले उत्साही और पण्डित हों, सदा उनका सङ्ग करें'।।"

५. वृक्षाङ्गप्रश्न— ५५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में वृक्ष के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वृक्ष में फूल और फल लगते हैं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में विमुक्ति के फूल और श्रामण्य के फल लगाने चाहिये। महाराज! वृक्ष का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे वृक्ष अपने नीचे बैठे हुए लोगों को छाया देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने पास आये हुए लोगों को सत्कारपूर्वक उनके योग्य वस्तु देना और धर्म सुनाना चाहिये। महाराज! वृक्ष का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! जैसे वृक्ष अपनी छाया देने में कोई भेद-भाव नहीं रखता; वैसे ही योगसाधक

समसमा मेत्ताभावना कातब्बा— 'किन्ति इमे सत्ता अवेरा अब्यापज्जा अनीघा सुखी अत्तानं परिहरेय्युं' ति। इदं, महाराज, रुक्खस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'वधके देवदत्तम्हि, चोरे अङ्गुलिमालके।
धनपाले राहुले च, सब्बत्थ समको मुनी' '' ति॥

६. मेघङ्गपञ्हो

५६. ''भन्ते नागसेन, मेघस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, मेघो उप्पन्नं रजोजल्लं वूपसमेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उप्पन्नं किलेसरजोजल्लं वूपसमेतब्बं। इदं, महाराज, मेघस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, मेघो पठविया उण्हं निब्बापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मेत्ताभावनाय सदेवको लोको निब्बापेतब्बो। इदं, महाराज, मेघस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं महाराज, मेघो सब्बबीजानि विरूहापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तानं सद्धं उप्पादेत्वा तं सद्धाबीजं तीसु सम्पत्तीसु रोपेतब्बं, दिब्बमानुसिकासु सुखसम्पत्तिसु याव परमत्थं निब्बानसुखसम्पत्ति। इदं, महाराज, मेघस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, मेघो उतुतो समुट्ठहित्वा धरणितलरुहे तिणरुक्खलता-

---

भिक्षु को सभी लोगों के प्रति भेद–भाव के विना समान रूप से व्यवहार करना चाहिये। चोर, वधक, शत्रु और अपने लोगों के प्रति समान रूप से मैत्री–भावना करनी चाहिये कि 'ये लोग बैर, हिंसा, क्रोध और पापविचारों से छूट जाँय'। महाराज! वृक्ष का यह तीसरा गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'अपनी हत्या करने पर तुले देवदत्त, चोर, अंगुलिमाल, धनपाल हाथी तथा पुत्र राहुल–सभी के प्रति भगवान् समान थे'।।"

६. मेघाङ्गप्रश्न— ५६. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में मेघ (बादल) के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे मेघ बरस कर धूल गर्दे को बैठा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में उठे क्लेश दबा देने चाहिये। महाराज! मेघ का यही पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे मेघ बरस कर जमीन की गर्मी ठंढा कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मैत्री–भावना से देवताओं और मनुष्यों के साथ इस संसार को शीतल बनाये रखना चाहिये। महाराज! मेघ का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे मेघ बरस कर बीज उगा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लोगों में श्रद्धा का बीज बोकर उस से तीन सम्पत्तियों को उगा देना चाहिये— दिव्यसम्पत्ति, मनुष्यसम्पत्ति और परमार्थयुक्त निर्वाणसम्पत्ति। महाराज! मेघ का यह तीसरा गुण....।

गुम्बओसधिवनप्पतयो परिरक्खति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन योनिसो मनसिकारं निब्बत्तेत्वा तेन योनिसो मनसिकारेन समणधम्मो परिरक्खितब्बो, योनिसो मनसिकारमूला सब्बे कुसला धम्मा। इदं, महाराज, मेघस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, मेघो वस्समानो नदीतळाकपोक्खरणियो कन्दरपदरसरसोब्भउदपानानि च परिपूरेति उदकधाराहि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आगमपरियत्तिया धम्ममेघमभिवस्सयित्वा अधिगमकामानं मानसं परिपूरयितब्बं। इदं, महाराज, मेघस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। "भासितं पेतं, महाराज थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'बोधनेय्यं जनं दिस्वा, सतसहस्से पि योजने।
खणेन उपगन्त्वान, बोधेति तं महामुनी' " ति॥

७. मणिरतनङ्गपञ्हो

५७, "भन्ते नागसेन, 'मणिरतनस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, मणिरतनं एकन्तपरिसुद्धं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एकन्तपरिसुद्धाजीवेन भवितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, मणिरतनं न केनचि सद्धिं मिस्सीयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पापेहि पापसहायेहि सद्धिं न मिस्सितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, मणिरतनं जातिरतनेहि योगीयति; एवमेव खो, महाराज,

---

(४) "महाराज! फिर जैसे मेघ अपने ठीक समय से उठकर जमीन पर होने वाले घास, वृक्ष, लता, झाड़, जड़ी–बूटी और वनस्पतियों की रक्षा करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मनन करते हुये भिक्षु–व्रत पालन करना चाहिये। मनन करने के अभ्यास पर ही सभी पुण्यधर्म टिके रहते हैं। महाराज! मेघ का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे मेघ बरसने पर जलधारा चलने से नदी, तालाब, बावड़ी, कन्दरा, गर्त, सरोवर, बिल, कूए सभी पूर्णतः भर जाते हैं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को धर्ममेघ बरसा कर जिज्ञासुओं के मन को पूरा भर देना चाहिये। महाराज! मेघ का यह पाँचवाँ गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'सौ हजार योजन दूर भी किसी जिज्ञासुजन को देख उसी क्षण वहाँ जाकर महामुनि उसे धर्मोपदेश देते हैं'।"

७. मणिरत्नाङ्गप्रश्न— ५७. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में मणिरत्न के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! मणिरत्न सर्वथा शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु की जीविका शुद्ध होनी चाहिये। महाराज! भिक्षु में मणिरत्न का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे मणिरत्न किसी दूसरे पदार्थ में नहीं मिलाया जा सकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुरे मित्रों में नहीं मिलना चाहिये। महाराज! मणिरत्न का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे मणिरत्न दूसरे बहुमूल्य रत्नों के साथ ही रखा जाता है; वैसे ही

योगिना योगावचरेन उत्तमवरजातिमन्तेहि सद्धिं संवसितब्बं, पटिपन्नकफलट्ठसेखपलसमङ्गीहि, सोतापन्नसकदागामिअनागामिअरहन्ततेविज्जछळभिञ्ञसमणमणिरतनेहि सद्धिं संवसितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते*—

'सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा' '' ति॥ *(सु०नि०, २८२)*

८. मागविकङ्गपञ्हो

५८. ''भन्ते नागसेन, 'मागविकस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, मागविको अप्पमिद्धो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पमिद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, मागविकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, मागविको मिगेसु येव चित्तं उपनिबन्धति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणेसु येव चित्तं उपनिबन्धितब्बं। इदं, महाराज, मागविकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, मागविको कालं कम्मस्स जानाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पटिसल्लानस्स कालो जानितब्बो— 'अयं कालो पटिसल्लानस्स, अयं कालो निक्खमनाया' ति। इदं, महाराज, मागविकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, मागविको मिगं दिस्वा हासमभिजनेति— 'इमं लच्छामी' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणे अभिरमितब्बं हासमभिजनेतब्बं—

योगसाधक भिक्षु को उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ वास करना चाहिये—जिन्होंने सन्मार्ग पकड़ लिया है, जो फल पर स्थिर हो गये हैं, जो शैक्ष हो चुके हैं, जो स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी या अर्हत्पद पर पहुँच चुके हैं, जो तीनों विद्या, छह अभिज्ञा, भिक्षुभाव इत्यादि रत्नों से युक्त हैं। महाराज! मणिरत्न का यह तीसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने *सुत्तनिपात* में कहा है—

'सदा ध्यान बनाये रख शुद्ध पुरुषों को शुद्ध पुरुषों के साथ ही रहना चाहिये, वे ज्ञानी के साथ रह कर अपने दुःखों का अन्त कर लेंगे'।।''

८. मृगयु—अङ्गप्रश्न—५८. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में व्याध के चार गुण होने चाहियें, वे चार गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे व्याध जल्दी थकता नहीं है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को थकना नहीं चाहिये। महाराज! भिक्षु में व्याध का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे व्याध मृगों की ही ताक में अपने चित्त को लगाये रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने ध्यान में ही चित्त लगाये रहना चाहिये। महाराज! व्याध का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे व्याध अपने काम का उचित अवसर जानता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में आसन लगाने का उचित अवसर जानना चाहिये—यह आसन लगाने का अवसर है और यह आसन से उठ जाने का। महाराज! व्याध का यही तीसरा गुण....।

(४) ''महाराज! फिर जैसे व्याध मृग को देख कर प्रसन्न हो जाता है—'इसे पकडूँगा'; वैसे ही

'उत्तरिं विसेसमभिगच्छामी' ति। इदं, महाराज, मागविकस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *मोघराजेन*—

'आरम्मणे लभित्वान, पहितत्तेन भिक्खुना।
भिय्यो हासो जनेतब्बो अधिगच्छिस्सामि उत्तरिं' '' ति।

९. बाळिसिकङ्गपञ्हो

५९. ''भन्ते नागसेन, 'बाळिसिकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, बाळिसिको बळिसेन मच्छे उद्धरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ञाणेन उत्तरिं सामञ्ञफलानि उद्धरितब्बानि। इदं, महाराज, बाळिसिकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, बाळिसिको परित्तकं वधित्वा विपुलं लाभमधिगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परित्तलोकामिसमत्तं परिच्चजितब्बं। लोकामिसमत्तं, महाराज, परिच्चजित्वा योगी योगावचरो विपुलं सामञ्ञफलं अधिगच्छति। इदं, महाराज, बाळिसिकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *राहुलेन*—

'सुञ्ञतं चानिमित्तं च, विमोक्खं चाप्पणिहितं।
चतुरो फले छळभिञ्ञा, चजित्वा लोकामिसं लभे' '' ति॥

१०. तच्छकङ्गपञ्हो

६०. ''भन्ते नागसेन, 'तच्छकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

योगसाधक भिक्षु को ध्यान करने के आलम्बन को देख कर आध्यात्मिक प्रसन्नता होनी चाहिये—'इस पर अभ्यास कर मैं आगे की अवस्था प्राप्त करूँगा'। महाराज! व्याध का यह चौथा गुण....। महाराज! स्थविर मोघराज ने भी कहा है—

'आलम्बन पा कर ध्यानरत रहने वाला भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न होता है कि इससे ऊपर की अवस्था प्राप्त करूँगा'।।''

९. बाड़िसिकाङ्गप्रश्न—५९. ''भन्ते! आप कहते हैं कि भिक्षु में मछुये के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! मछुआ बंसी फेंक कर मछली फाँस लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ऊपर के श्रामण्य का फल अपने ज्ञान की बंसी से फाँस लेना चाहिये। महाराज! मछुये का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! जैसे मछुआ थोड़ा सा चारा फेंक कर बड़ी-बड़ी मछलियाँ पकड़ लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निकृष्ट सांसारिक उपभोगों का त्याग कर देना चाहिये। इन निकृष्ट सांसारिक उपभोगों का त्याग कर वह उत्कृष्ट श्रामण्यफल पा लेता है। महाराज! मछुये का यह दूसरा गुण....। महाराज! *स्थविर राहुल* ने भी कहा है—

'संसार के उपभोगों को छोड़, वह चार फल और छह अभिज्ञा तथा निर्वाण भी पा लेता है, जो अनिमित्त, अप्रणिहित और शून्य है'।।''

१०. तक्षकाङ्गप्रश्न— ६०. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बढ़ई (तक्षक) के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) "यथा, महाराज, तच्छको कालसुत्तं अनुलोमेत्वा रुक्खं तच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन जिनसासनमनुलोमयित्वा सीलपठवियं पतिट्ठहित्वा सद्धाहत्थेन पञ्ञावासिं गहेत्वा किलेसा तच्छेतब्बा। इदं, महाराज तच्छकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, तच्छको फेग्गुं अपहरित्वा सारमादियति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सस्सतं, उच्छेदं, तं जीवं तं सरीरं, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, तदुत्तमं अञ्ञदुत्तमं, अकतमभब्बं, अपुरिसकारं, अब्रह्मचरियवासं, सत्तविनासं, नवसत्त-पादुभावं सङ्खारसस्सतभावं, यो करोति सो पटिसंवेदेति, अञ्ञो करोति अञ्ञो पटिसंवेदेति, कम्मफलदस्सना च किरियफलदिट्ठि च—इति एवरूपानि चेव अञ्ञानि च विवादपथानि अपनेत्वा सङ्खारानं सभावं परमसुञ्ञतं निरीहनिज्जीवतं अच्चन्तं सुञ्ञतं आदियितब्बं। इदं, महाराज, तच्छकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन **सुत्तनिपाते**—

'कारण्डवं निद्धमथ, कसम्बुं चापकस्सथ।
ततो पलापे वाहेथ, अस्समणे समणमानिने॥
'निद्धमित्वान पापिच्छे, पापआचारगोचरे।
सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता॥
ततो समग्गा नियका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा' ति।"

छट्ठो मक्कटवग्गो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं

मक्कटो दारको कुम्भो, वनं रुक्खो च पञ्चमो।
मेघो मणि मागविको, बालिसो तच्छकेन चा ति॥

---

(१) "महाराज! जैसे बढ़ई काले तागे से चिह्न दे कर लकड़ी काटता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुद्ध के उपदेश का चिह्न दे, शेल की भूमि पर खड़े हो, श्रद्धा के हाथ में प्रज्ञा का बंसुला लेकर, क्लेश–वृक्ष काट देने चाहिये। महाराज! बढ़ई का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! जैसे बढ़ई वृक्ष के दुर्बल काष्ठ को हटा कर दृढ़काष्ठ ले लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को इन व्यर्थ विवादों में नहीं पड़ना चाहिये—'शाश्वतवाद ठीक है या उच्छेदवाद; या जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है; यह अच्छा है या वह अच्छा है, बिना किसी से बना हुआ है, यह नहीं हो सकता, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, ब्रह्मचर्य व्रत का कोई लाभ नहीं हैं, जीव नष्ट हो जाता है, फिर नया जीव उत्पन्न होता है, संस्कार नित्य है, जो कर्ता है वही भोक्ता है, कर्ता दूसरा है और भोक्ता दूसरा, या कर्म के विषय में और भी दूसरी मिथ्या धारणायें' इत्यादि! ये और इसी प्रकार के दूसरे व्यर्थ विवादों को हटा कर संस्कारों के अत्यन्त शून्य और निःसार स्वभाव को पकड़ लेना चाहिये। महाराज! बढ़ई का यह दूसरा गुण...। महाराज! सुत्तनिपात में देवातिदेव भगवान ने भी कहा है—

'भूसी (तुष) को फटक कर निकाल दो, कंकर चुन–चुन कर बाहर कर दो। अपने को श्रमण बताने वाले ढोंगी साधु को, और व्यर्थ विवाद को दूर करो। पापी लोगों और बुरे विचारों का हटा, शुद्ध पुरुषों को स्मृतिमान् हो कर शुद्ध पुरुषों के साथ ही रहना चाहिये'।।"

छठा मर्कटवर्ग समाप्त।।

७. कुम्भवग्गो

१. कुम्भङ्गपञ्हो

६१. "भन्ते नागसेन, 'कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, कुम्भो सम्पुण्णो न सणति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आगमे अधिगमे परियत्तियं सामञ्ञे पारमिं पत्वा न सणितब्बं, न तेन मानो करणीयो, न दप्पो दस्सेतब्बो, निहतमानेन निहतदप्पेन भवितब्बं, उजुकेन अमुखरेन अविकत्थिना। इदं, महाराज, कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन सुत्तनिपाते—

'यदूनकं तं सणति, यह पूरं सन्तमेव तं।
रित्तकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो व पण्डितो' " ति॥ (सु० नि० पृ०१३७)

२. कालायसङ्गपञ्हो

६२. "भन्ते नागसेन, 'कालायसस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, कालायसो सुपीतो वमति, एवमेव खो महाराज, योगिनो योगावचरस्स मानसं योनिसो मनसिकारेन अपीतं वमति। इदं, महाराज कालायसस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।"

(२) "पुन च परं, महाराज, कालायसो सकिं पीतं उदकं न वमति; एवमेव खो,

---

उदान

इस वर्ग में—पथमर्कटक, स्तनपायिबाल, चित्रकधरकर्म, उपवन, वृक्ष, मेघ, मणिरत्न, मृगयु, वाड़िसिक, तक्षक—ये दश प्रश्न व्याख्यात हैं।

७. कुम्भवर्ग

१. कुम्भाङ्गप्रश्न—"भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में घड़े का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे भरें रहने पर घड़ा शब्द नहीं करता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को श्रमणभाव की चरम सीमा तक पहुँच और धर्म का धुरन्धर विद्वान् बनकर भी गर्व नहीं करना चाहिये, उसे अभिमान नहीं करना चाहिये, डीगें नहीं मारनी चाहिये; किन्तु सरल, शान्त और कम बोलने वाला होना चाहिये। महाराज! घोड़े का यह गुण ....। महाराज! सुत्तनिपात में भगवान् ने भी कहा है—

'खाली घड़ा ही बजता है और भरा चुप। मूर्ख खाली घड़े के समान है और पण्डित भरे हुए सरोवर के समान।।"

२. कालायसाङ्गप्रश्न—६२. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कलहंस के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं? "

(१) "महाराज! कलहंस सोने पर भी अपने शरीर को सम्हाले खड़ा रहता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा तत्परता से मनन करते रहना चाहिये। महाराज! कलहंस का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे कलहंस एक बार जो पानी पी लेता है उसे नहीं उगलता, वैसे

महाराज, योगिना योगावचरेन यो सकिं उप्पन्नो पसादो न पुन सो वमितब्बो—'उलारो सो भगवा सम्मासम्बुद्धो, स्वाक्खातो धम्मो, सुप्पटिपन्नो सङ्घो' ति। रूपं अनिच्चं, वेदना अनिच्चा, सञ्ञा अनिच्चा, सङ्खारा अनिच्चा, विञ्ञाणं अनिच्चं ति यं सकिं उप्पन्नं ञाणं न पुन तं वमितब्बं। इदं, महाराज, कालायसस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'दस्सनम्हि परिसोधितो नरो अरियधम्मे नियतो विसगू।
नप्पवेधति अनेकभागसो, सब्बसो च मुखभावनमेव सो' '' ति॥

३. छत्तङ्गपञ्हो

६३. ''भन्ते नागसेन, छत्तस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज छत्तं उपरिमुद्धनि चरति; एवमेव खो महाराज, योगिना योगा-वचरेन किलेसानं उपरिमुद्धनि चरणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, दत्तस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, छत्तं मुद्धनुपत्थम्भं होति, एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन योनिसो मनसिकारुपत्थम्भेन भवितब्बं। इदं, महाराज, छत्तस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं महाराज, छत्तं वातातपमेघवुट्ठियो पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, यागिना योगावचरेन नानाविधदिट्ठिपुथुसमणब्राह्मणानं मतवाततिविधिग्गिसन्तापकिलेसवुट्ठियो पटिहन्तब्बा। इदं, महाराज, छत्तस्सं ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, धम्मसेनापतिना थेरेन *सारिपुत्तेन*—

ही योगसाधक भिक्षु को एक बार जो श्रद्धा हो गयी उसे कभी नहीं जाने देना चाहिये—'वे सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बड़े महान् हैं, धर्म स्वाख्यात हैं, सङ्घ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है;रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान अनित्य है'—ऐसा ज्ञान जो एक बार उत्पन्न हो गया, उसे फिर कभी नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज! कलहंस का यह दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो पुरुष ज्ञानदर्शन कर परिशुद्ध हो गया है, वह बुद्धधर्म के अनुसार चल कर जो लक्ष्य तक पहुँचा है परम पद का केवल एक बड़ा भाग नहीं, अपितु वह सर्वांशतः पा लेता है।।'

३. छत्राङ्गप्रश्न—६३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में छत्र के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे छत्र मस्तक पर रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों के ऊपर ही रहना चाहिये। महाराज! भिक्षु में छत्र का यह पला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे छत्र दण्ड के सहारे मस्तक पर रुका रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को उचित रूप से मनन करते हुए अभ्यास से अपने को सम्हाले रहना चाहिये। महाराज! छत्र का यह दूसरा गुण .....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे छत्र वायु, गर्मी और पानी को रोकता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भिन्न भिन्न श्रमण और ब्राह्मणों के अनेकानेक सिद्धान्त की वायु को, तीन प्रकार (राग, द्वेष, मोह) की अग्नि के सन्ताप को और क्लेश की वर्षा को रोकना चाहिये। महाराज! छत्र का यह तीसरा गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'यथापि छत्तं विपुलं, अच्छिद्दं थिरसंहितं।
वातातपं निवारेति, महती मेघवुट्ठियो।
'तथेव बुद्धपुत्तो पि, सीलछत्तधरो सुचि।
किलेसवुट्ठिं वारेति, सन्तापतिविधग्गयो' '' ति॥

४. खेत्तङ्गपञ्हो

६४. ''भन्ते नागसेन, 'खेत्तस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१)''यथा, महाराज, खेत्तं मातिकासम्पन्नं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुचरितवत्तपटिवत्तमातिकासम्पन्नेन भवितब्बं। इदं, महाराज, खेत्तस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, खेत्तं मरियादासम्पन्नं होति, ताय च मरियादाय उदकं रक्खित्वा धञ्ञं परिपाचेन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलहिरिमरियादासम्पन्ने भवितब्बं, ताय च सीलहिरिमरियादाय सामञ्ञं रक्खित्वा चत्तारि सामञ्ञफलानि गहेतब्बानि। इदं महाराज, खेत्तस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, खेत्तं उट्ठानसम्पन्नं होति, कस्सकस्स हासजनकं, अप्पं पि बीजं वुत्तं करोति, बहु वुतत्तं बहुतरं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उट्ठानसम्पन्नेन विपुलफलदायिना भवितब्बं, दायकानं हासजनकेन भवितब्बं, यथा अप्पं दिन्नं बहु होति, बहु दिन्नं बहुतरं होति। इदं महाराज, खेत्तस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपालिना* विनयधरेन—

'जैसे विना छिद्र वाला, दृढ स्तम्भयुक्त, बड़ा छत्र वायु, गर्मी और वर्षा रोकता है; वैसे ही पवित्रात्मा बुद्धपुत्र शील का छत्र धारण करता है, जो क्लेश की वर्षा को और तीन प्रकार के अग्नि के सन्ताप को रोकता है।।''

४. क्षेत्राङ्गप्रश्न—६४. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में 'खेत के तीन गुण होने चाहिये', वे तीन गुण कौन हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे खेत नालियों से युक्त होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने व्रतनियमों का पालन करते हुए मातृकारूपी नालियों से युक्त होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे खेत में क्यारियाँ बँधी रहती हैं, उन क्यारियों से जल रोक कर धान पुष्ट किया जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील और लज्जा की मर्यादा से बँधा होना चाहिये। उस बाँध में भिक्षुभाव को रोक कर श्रामण्यफल पुष्ट कर लेना चाहिये। महाराज! खेत का यह दूसरा गुण है।

(३) ''महाराज! जैसे खेत धान की बालों से लद जाता है, उसे देख किसान आनन्द से घर जाता है—'थोड़ा बीज होने से बहुत धान होता है, बहुत बोने से भी बहुत'; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का उत्साहपूर्वक अच्छे अच्छे गुण अपने में उत्पन्न कर लेने चाहिये, दायकों को प्रसन्न रखना चाहिये—'थोड़ा दिया बहुत होता है, बहुत दिया उससे भी अधिक होगा'। महाराज! खेत का यह तीसरा गुण है। महाराज! विनयपिटक के ज्ञाता आर्य स्थविर उपालि ने भी कहा है—

'खेत्तूपमेन भवितब्बं, उट्ठानविपुलदायिना ।
एस खेत्तवरो नाम, यो ददाति विपुलं फलं''' ति॥

५. अगदङ्गपञ्हो

६५. "भन्ते नागसेन, 'अगदस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) "यथा, महाराज, अगदे किमी न सण्ठहन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसे किलेसा न सण्ठपेतब्बा। इदं महाराज, अगदस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, अगदो दट्ठफुट्ठदिट्ठअसितपीतखायितसायितं सब्बं विसं पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमाहमानदिट्ठिविसं सब्बं पटिहनितब्बं। इदं, महाराज, अगदस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन भगवता—

'सङ्खारानं सभावत्थं दट्ठुकामेन योगिना ।
अगदेनेव होतब्बं, किलेसविसनासने' '' ति॥

६. भोजनङ्गपञ्हो

६६. "भन्ते नागसेन, 'भोजनस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) "यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं उपत्थम्भो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तानं मग्गुपत्थम्भेन भवितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं बलं वड्ढेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पुञ्ञवड्ढिया वड्ढितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

"भिक्षु को बहुत फल लगने वाले खेत के समान होना चाहिये। यही सब से उत्तम खेत है, थोड़ा बोने से बहुत फ़ल देता है'।।"

५. अगदाङ्गप्रश्न—६५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में अगद (विषनाशक औषध) के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! अगद में कीड़े नहीं पड़ते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मन में क्लेश नहीं पड़ने देना चाहिये। महाराज! अगद का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "फिर जैसे अगद डँसे गये, छूदिये, देखे, खाये, पीये, निगले या चाटे सभी तरह का विष दूर करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, अभिमान और आत्मदृष्टि—सभी का विष मार देना चाहिये। महाराज! अगद का यह दूसरा गुण है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो योगी संस्कारों के स्वभाव को देखने की इच्छा रखता हो, उसे क्लेश—विष को पहले नष्ट कर देना चाहिये'।।"

६. भोजनाङ्गप्रश्न—६६. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में भोजन के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे भोजन सभी जीवों का आधार है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी जीवों के निर्वाणमार्ग में आधार बनना चाहिये। महाराज! भोजन का यह पहला गुण भिक्षु को.....।

(३) ''पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं अभिपत्थितं; एवमेव खो महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बलोकाभिपत्थितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *मोग्गल्लानेन*—

'संयमेन नियमेन, सीलेन पटिपत्तिया।
पत्थितेन भवितब्बं, सब्बलोकस्य योगिना' '' ति॥

७. इस्साङ्गपञ्हो

६७. ''भन्ते नागसेन, 'इस्सासस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, इस्सासो सरे पातयन्तो उभो पादे पठवियं दळ्हं पतिट्ठापेति, जण्णु अवेकल्लं करोति, सरकलापं कटिसन्धिम्हि ठपेति, कायं उपत्थद्धं करोति, द्वे हत्थे सन्धिट्ठानं आरोपेति, मुट्ठिं पीळयति, अङ्गुलियो निरन्तरं करोति, गीवं पग्गण्हाति, चक्खूनि मुखं च पिदहति, निमित्तं उजुं करोति, हासमुप्पादेति—'विज्झिस्सामी' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलपठवियं विरियपादे पतिट्ठापेतब्बं, खन्तिसोरच्चं अवेकल्लं कातब्बं, संवरे चित्तं ठपेतब्बं, संयमनियमे अत्ता उपनेतब्बो, इच्छा मुच्छा पीळयितब्बा, योनिसो मनसिकारे चित्तं निरन्तरं कातब्बं, विरियं पग्गहेतब्बं, छ द्वारा पिदहितब्बा, सति उपट्ठापेतब्बा, हासमुप्पादेतब्बं—'सब्बकिलेसे ञाणनाराचेन विज्झिस्सामी' ति। इदं, महाराज, इस्सासस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(२) ''महाराज! फिर जैसे भोजन जीवों के बल की वृद्धि करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को पुण्यवृद्धि करना चाहिये। महाराज! भोजन का यह दूसरा गुण है।

(३) ''महाराज! फिर जैसे भोजन सभी लोगों को प्रिय होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी लोगों का प्रिय होना चाहिये। महाराज! भोजन का यह तीसरा गुण है। महाराज! *स्थविर महामोग्गल्लान* ने भी कहा है—

'संयम, नियम, शील और व्रत के पालन से योगी को सभी लोगों का प्रिय बन कर रहना चाहिये'।।''

७. इष्वासाङ्गप्रश्न—६७. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में धनुर्धर के चार गुण होने चाहिये, वे चार गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे धनुर्धर तीर चलाने के लिए अपने पैरों को भूमि पर ठीक से जमाता है, घुटनों को सीधा करता है, तूणीर को कमर से आड़ देकर स्थिर रखता है, स्थिर शरीर को कर लेता है, एक हाथ से धनुष पकड़ता है और दूसरे से तीर चढ़ाता है, मुट्ठी को कस कर दबाता है, अंगुलियों को सटा लेता है, गला खींच लेता है, मुँह बन्द कर लेता है, एक आँख लगा लक्ष्यसाधन करता है और विश्वास करता है कि 'वेध ही दूँगा'; महाराज! वैसे ही योगसाधक योगी शील की पृथ्वी पर वीर्य के पैरों को जमाता है, क्षमाशीलता और दया को सीधा करता है, संयम से चित्त को रोकता है, यम-नियमों से अपने को रोके रखता है, इच्छा और उत्कण्ठा दबा देता है, मनन करने के अभ्यास से चित्त लगा देता है, छह दरवाजे (इन्द्रियाँ) बन्द कर देता है, ध्यान जमा लेता है और विश्वास करता है कि 'ज्ञान के तीर से क्लेशों को बेध ही दूँगा'। महाराज! भिक्षु में धनुर्धर का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो आळकं परिहरति वङ्कजिम्हकुटिनाराचस्स उजुकरणाय; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये सतिपट्ठानआळकं परिहरितब्बं, वङ्कजिम्हकुटिलचित्तस्स उजुकरणाय। इदं, महाराज, इस्सत्थस्स दुतियं अङ्गं गेहतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो लक्खे उपासेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं। कथं, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं? अनिच्चतो उपासितब्बं, दुक्खतो उपासितब्बं, अनत्ततो उपासितब्बं, रोगतो ....पे०.... गण्डतो, सल्लतो, अघतो, आबाधतो, परतो, पलोकतो, ईतितो, उपद्दवतो, भयतो, उपसग्गतो, चलतो, पभङ्गुतो, अद्धुवतो, अत्ताणतो, अलेणतो, असरणतो, असरणीभूततो, रित्ततो, तुच्छतो, सुञ्ञतो, आदीनवतो, विपरिणामधम्मतो, असारतो, अघमूलतो, वधकतो, विभवतो, सासवतो, सङ्खततो, मारामिसतो, जातिधम्मतो, जराधम्मतो, ब्याधिधम्मतो, मरणधम्मतो, सोकधम्मतो, परिदेवधम्मतो, उपायासधम्मतो, सङ्किलेसधम्मतो। एवं खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं। इदं, महाराज, इस्सासस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो सायं पातं उपासति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सायम्पातं आरम्मणे उपासितब्बं। इदं, महाराज, इस्सत्थस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना*—

'यथा इस्सासको नाम, सायम्पातं उपासति।
उपासनं अरिञ्चन्तो, लभते भत्तवेतनं॥

---

(२) "महाराज! फिर जैसे धनुर्धर अपने पास एक आलक रखता है, जिस से टेढ़े मेढ़े तीर को सीधा कर लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने टेढ़े मेढ़े चित्त को सीधा करने के लिये, स्मृतिप्रस्थान का आलक साथ में बराबर रखना चाहिये। महाराज! धनुर्धर का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) "महाराज! जैसे धनुर्धर लक्ष्य बना कर उसी पर अभ्यास करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास करे। महाराज! शरीर पर मनन करने का अभ्यास कैसे करना चाहिये? यह शरीर अनित्य, दुःख, अनात्म है, रोग का घर है, कष्ट पीड़ाजनक, पापी, बाधाबहुल अपना बनकर रहने वाला नहीं है, विघ्नों से भरा है, इसमें बड़े बड़े उपद्रव होते हैं, इस में भय ही भय है, अशुभ है, चञ्चल है, क्षणभंगुर है, अध्रुव है, असहाय है, अशरण है, निःसार है, शून्य है, दोषों वाला है, असार है, मारने वाला है, संस्कार है, उत्पन्न होने वाला है, बूढ़ा होने वाला है बीमार पड़ने वाला है, मर जाने वाला है, शोक देने वाला है, परिदेव वाला है, केवल दुःख देने वाला है, क्लेश देने वाला है—ऐसा मनन करना चाहिये। महाराज! योगसाधक भिक्षु इसी तरह मनन करे। महाराज! धनुर्धर का यह तीसरा गुण है।

(४) "महाराज! जैसे धनुर्धर सायं और प्रातः अभ्यास करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रातः सायं ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज! धनुर्धर का यह चौथा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'तथेव बुद्धपत्तो पि, करोति कायुपासनं ।
कायुपासनं अरिञ्चन्तो, अरहत्तमधिगच्छती' ।'' ति[१] ॥

सत्तमो कुम्भवग्गतो निट्ठितो ॥

॥ ओपम्मकथापञ्हो समत्तो ॥

'जैसे धनुर्धर प्रातः सायं अभ्यास करता है, अभ्यास न छोड़ने से वेतन और भत्ता पाता है; वैसे ही बुद्धपुत्र भी अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास न छोड़ कर वह अर्हत्-पद पाता है ॥'

सातवाँ कुम्भवर्ग समाप्त ॥

॥ औपम्यकथाप्रश्न सम्पन्न ॥

---

१. इतो परं रापञ्हादिका (अट्ठतिंस) पञ्हा विनट्ठा। येहि ते कत्थपि दिट्ठा, तेहि ते अम्हे आरोचेतब्बा पुन मुद्दापनकाले इध पक्खिपनत्थाया ति निवेदनं सम्पादकस्स।

निगमनं

इति छसु कण्डेसु बीवीसतिवग्गपटिमण्डितेसु द्वासट्ठि-अधिका द्वे सत्ता इमस्मिं पोत्थके आगता मिलिन्दपञ्हा समत्ता। अनागता च पन द्वाचत्ताळीसा होन्ति, आगता च अनागता च सब्बा समोधानेत्वा चतूहि अधिका तिसतपञ्हा होन्ति, सब्बा व मिलिन्दपञ्हा ति सङ्खं गच्छन्ति।

१. रञ्ञो च थेरस्स च पुच्छाविस्सज्जानावसाने चतुरासीतिसतसहस्सयोजनबहला उदक-परियन्तं कत्वा अयं महापठवी छधा कम्पित्थ, विज्जुल्लता निच्छरिंसु, देवता दिब्बपुप्फवस्सं पवस्सिंसु, महाब्रह्मा साधुकारं अदासि। महासमुद्दकुच्छियं मेघत्थनितनिग्घोसो विय महाघोसो अहोसि। इति सो मिलिन्दो राजा ओरोधगणा च सिरसा अञ्जलिं पणामेत्वा वन्दिंसु।

२. मिलिन्दो राजा अतिविय पमुदितहदयो सुमथितमानहदयो बुद्धसासने सारमतिनो रतनत्तये सुनिक्कङ्खो निग्गुम्बो नित्थद्धो हुत्वा थेरस्स गुणेसु पब्बज्जासु पटिपदाइरियापथेसु च अतिविय पसन्नो विस्सत्थो निरालयो निहतमानदप्पो उद्धटदाठो विय भुजङ्गो एवमाह—"साधु, भन्ते नागसेन, बुद्धविसयो पञ्हो तया विस्सज्जितो, इमस्मिं बुद्धसासने ठपेत्वा धम्मसेनापतिं सारिपुत्तं अञ्ञो तया सदिसो पञ्हविस्सज्जने नत्थि। खमथ, भन्ते, नागसेन, मम अच्चयं। उपासकं मं, भन्ते नागसेन, धारेथ अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

(३) तदा राजा बलकायेहि नागसेनथेरं पयिरुपासित्वा मिलिन्दं नाम विहारं कारेत्वा थेरस्स

निगमन

इस ग्रन्थ के २२ वर्गों में विभक्त छह काण्डों में राजा मिलिन्द के दो सौ बासठ (२६२) प्रश्नों का उत्तर आया है। बयालीस (४२)– प्रश्न ऐसे हैं, जो लुप्त हो गये हैं। जो मिलते हैं तथा जो लुप्त हो गये हैं—दोनों को मिला देने से तीन सौ चार (२६२+४२=३०४) प्रश्न होते हैं। ये सभी 'मिलिन्दप्रश्न' के नाम से कहे जाते हैं।

१. राजा और स्थविर के प्रश्नोत्तर समाप्त हो जाने पर, चौरासी लाख योजन फैली हुई, समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी छह बार काँप उठी, बिजली चमक उठी, देवताओं ने दिव्यपुष्प बरसाये, महाब्रह्मा साधुवाद देने लगे और महासमुद्र के उदर में बादल गरजने की सी गड़गड़ाहट आने लगी। यह कौतूहल देख कर राजा मिलिन्द ने अपने परिवार के साथ स्थविर नागसेन को हाथ जोड़ कर और शिर झुका कर प्रणाम किया।

२. राजा मिलिन्द का हृदय अन्तविभोर हो गया, उसका सम्पूर्ण अभिमान चूर चूर हो गया, 'बुद्धधर्म कितना उच्च है और सत्य है'—इसका ज्ञान हो गया। त्रिरत्न (बुद्ध–धर्म–सङ्घ) के विषय में जितनी शङ्काएं थी, सभी मिट गयीं, सब उलझनें सुलझ गयीं, त्रिरत्न पर पूर्ण विश्वास हो गया। स्थविर के गुण, प्रवज्या और आधार–विचार देख गद्‌गद हो गया। उसके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और अतीव नम्रता आ गयी। दाँत टूटे साँप की तरह राजा बोला—"साधु साधु, भन्ते नागसेन! स्वयं बुद्ध के पूछे जाने योग्य प्रश्नों का भी आपने उत्तर दे दिया। इस बुद्ध–शासन में धर्मसेनापति शारिपुत्र को छोड़ कर दूसरा कोई भी आपकी तरह धर्म के विषय में पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता हो। भन्ते नागसेन! मेरा अपराध क्षमा कर दें। भन्ते नागसेन! आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

निय्यादेत्वा चतूहि पच्चयेहि नागसेनं कोटिसतसहस्सभिक्खूहि सद्धिं परिचरि। पुन पि थेरस्स पञ्ञाय पसीदित्वा पुत्तस्स रज्जं निय्यादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजित्वा विपस्सनं बड्ढेत्वा अरहत्तं पापुणि। तेन वुत्तं—

'पञ्ञा पसत्था लोकस्मिं, कथा सद्धम्मट्ठितिया।
पञ्ञाय विमतिं हन्त्वा, सन्ति पप्पोन्ति पण्डिता॥
'यस्मिं खन्धे ठिता पञ्ञा, सति तत्थ अनूनका।
पूजा विसेसस्सधारो, अग्गो सेट्ठो अनुत्तरो॥
'तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं हितमत्तनो।
पञ्ञवन्तं हि पूजेय्य, चेतियं विय सादरो' '' ति॥

★ ★ ★

लङ्कायं दोणिनगरे, वसता दोणिनामिना।
महाथेरेन लेखित्वा, सुट्ठपितं यथासुतं॥
मिलिन्दराजपञ्हो च, नागसेनविसज्जनं।
मिलिन्दो हि महापञ्ञो, नागसेना सुपण्डितो॥
इमिना पञ्हकम्मेन, इतो गच्छामि तुस्सितं।
मेत्तेयं नागते पस्से, सुणेय्यं धम्ममुत्तमं ति॥

मिलिन्दपञ्हो निट्ठितो॥

✿ ✿ ✿

---

३. तब राजा ने अपने अमात्यों के साथ नागसेन की अत्यधिक पूजा–प्रतिष्ठा की। 'मिलिन्द' नाम का वहाँ एक विहार बनवा दिया। उसे स्थविर नागसेन को भेंट कर उसमें करोड़ों क्षीणाश्रवों को ठहरा, उनकी चारों प्रत्ययों से सेवा करने लगा। इसके बाद, स्थविर की प्रज्ञा में उस की श्रद्धा और भी बढ़ गयी। अन्त में राज्य का भार अपने पुत्र को सौंप कर, राजा मिलिन्द घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो गया और उसने विपश्यना बढ़ाते हुए अर्हत्पद पा लिया। इसलिये कहा गया है—

'संसार में प्रज्ञा ही प्रशस्त है और धर्म में स्थिर कर देने वाला उपदेश भी प्रशस्त। प्रज्ञा से समग्र-सन्देह मिट जाते हैं, उससे सभी बुद्धिमान् शान्तपद पा लेते हैं।

'जिस पुद्‌गल में प्रज्ञा अंकुरित हो गयी और स्मृति भी कम नहीं है, वह विशेष पूजा पाने योग्य है, वह श्रेष्ठ और अलौकिक है।

'इसलिये अपना हित दृष्टि में रख कर पण्डित की सेवा करनी चाहिये। देवमन्दिर की तरह प्रशस्त मान कर ही ज्ञानी की पूजा और सेवा करनी चाहिये।।

राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर सम्पन्न।।

✿ ✿ ✿

गाथा-सूची

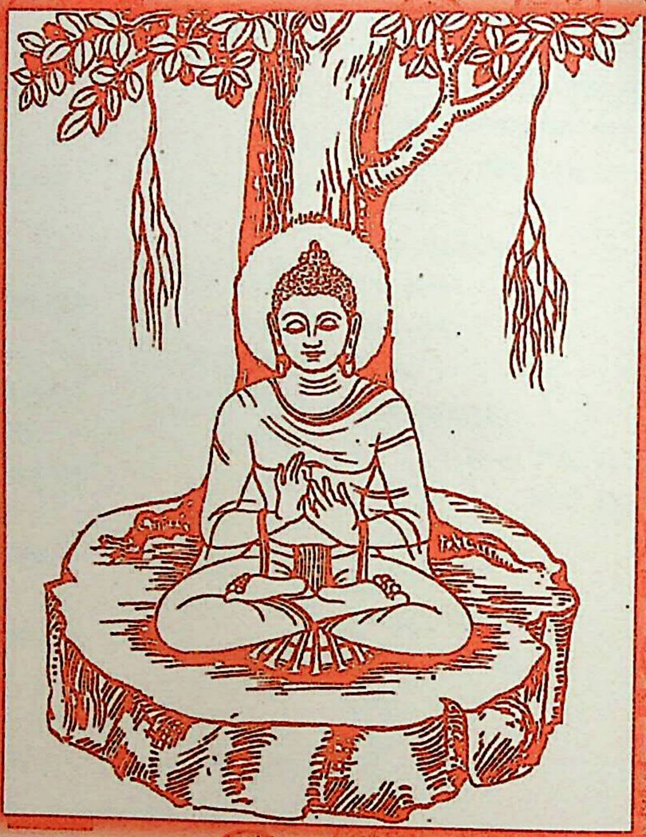
मिलिन्दपञ्हगन्थम्हि या या गाथा इधुद्धटा।
सका वा परका वा थ तासं सूची पतायति॥

✿

सञ्ञासद्दसूची

बुद्धानमथ थेरानं राजूनं सहचारिनं।
गन्थानं देस-गामानं सञ्ञानं गणना अयं॥

✿







नाम : स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

(महामहिमराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित)

जन्मतिथि : 9.9.1922 ई.

जन्मस्थान : राजपुरा, भिवानी (हरियाणा)

शिक्षा : व्याकरण, पालि, बौद्धदर्शन एवं आयुर्वेद आचार्य

भाषाज्ञान : हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं सान्ध्यभाष

अध्यापन : सं. सं. वि. वि., तिब्बती उच्च शिक्षासंस्थ साधुवेला सं. महाविद्यालय, वाराणसी।

संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन : काशिकावृत्ति, माधवं धातुवृत्ति, भाषावृत्ति, महाभाष्य, तत्त्वसंग्रह, अभि धर्मकोष, प्रमाणवार्त्तिक, श्लोकवार्त्तिक, मध्यमव शास्त्र, गुह्यसमाजतन्त्र, अपोहवाद, महायानसूत्रालङ्का सम्बन्धपरीक्षा, तत्त्वोपप्लवसिंह, 28 उपनिष सांख्यसूत्रवृत्ति।

संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद : न्यायबिन्दु, विग्र व्यावर्तनी, मध्यान्तविभाग, सुहृल्लेख, बोधिचर्यावत वादन्याय, न्यायदर्शन, बुद्धचरित।

पालि ग्रन्थों का सम्पादन : त्रिपिटक के 41 ग्रन् कच्चायन व्याकरण, समन्तपासादिका, पञ्चप्पक अट्ठकथा, अभिधम्मत्थसंगहो।

पालि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद : भिक्खुपातिमोक्खसु मिलिन्दपञ्ह, विसुद्धिमग्ग, बालावतार, अभिधानप दीपिका, महावग्ग, चुल्लवग्ग, दीघनिकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय, खुद्दकपा उदान, इतिवुत्तक, चरियापिटक, थेरगाथा, थेरीगाथ विमानवत्थु, पेतवत्थु, बुद्धवंस, महावंस, दीपवं धम्मपद अट्ठकथा, सुत्तनिपात, धम्मपद।

पालिग्रन्थ : अनुवादक्रम में : खुद्दकनिकाय के अवशि ग्रन्थ तथा अभिधम्मपिटक के समस्त ग्रन्थ।

संस्कृत ग्रन्थ : सम्पादनक्रम में : बौद्ध संस्कृत वैपुल्यसू

बौद्धभारती

मकबूल आलम रोड (जिला जेल के सामने), वाराणसी-

बौद्धभारती ग्रन्थमाला में प्रकाशित

पालि-साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

1. पालिव्याकरण (बालावतार) [हिन्दी अनुवाद सहित]
2. मिलिन्दपञ्हपालि (हिन्दी अनुवाद, विस्तृत भूमिका सहित)
3. अभिधानप्पदीपिका (हिन्दी-संस्कृत अर्थ स[illegible]) पालिशब्द कोष
4. विसुद्धिमग्ग (हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत [illegible] 1-3 भाग
5. पातिमोक्खसुत्त (भिक्षु प्रातिमोक्ष) हिन्दी [illegible] सहित
6. मज्झिमनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी [illegible] सहित)
   (सम्पूर्ण, 3 जिल्दों में) 1-5 [illegible]
7. दीघनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनु[illegible] सहित)
   सम्पूर्ण, 1-3 भाग
8. महावग्गपालि (विनयपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) सम्पूर्ण
9. संयुत्तनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
   सम्पूर्ण, 1-4 भाग
10. धम्मपदपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी-संस्कृत अनुवाद,
    विस्तृत भूमिका एवं अनेक परिशिष्ट) सम्पूर्ण
11. अङ्गुत्तरनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद, विस्तृत शब्दसूची)
    सम्पूर्ण, 1-4 भाग
12. खुद्दकपाठपालि, उदानपालि, इतिवुत्तकपालि, चरियापिटकपालि
    [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
13. थेरगाथापालि, थेरीगाथापालि [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक)
    (हिन्दी अनुवाद सहित)
14. सुत्तनिपातपालि [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक)
    (हिन्दी अनुवाद सहित)

Printed by : Sadhana Press, Vns. 9336912547

बौद्धभारती

पञ्चशील, एस. 10/6 ए-2ए, मकबूल आलम रोड (जिला जेल के सामने), वाराणसी-221 002

E-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in. फोन : 0542-3298044, 09336912547

पोस्ट बाक्स नं. : 1049, वाराणसी-221 001. (भारत)